वैशाख माहात्म्य

(हिन्दी टीका सहित)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

अथ

वैशाख माहात्म्य

(हिन्दी टीका सहित)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

मूल्य ७५ रुपये मात्र।

संस्करण : जनवरी २००८, सम्वत् २०६४

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

श्रीगणेशाय नमः॥ मनुष्योंमें उत्तम नरनारायण, सरस्वतीदेवी और व्यासजीको नमस्कार करके जयशब्दका उच्चारण करै ॥ १ ॥ सूतजी कहने लगे कि राजा अंबरीषने परमेष्ठी ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीसे फिर वैशाखमाहात्म्यका प्रश्न किया॥२॥अंबरीष बोले कि हे ब्रह्मन्! जैसे जैसे आपने सम्पूर्ण महीनाओंके माहात्म्य वर्णन किये सो सब मैंने पहिले सुनलिये हैं॥३॥ इन सबमें वैशाखमास निश्चयही सर्वोत्तम है, इससे वैशाखमाहात्म्यको

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ भूयोऽप्यम्बरसुतं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत ॥२॥ अम्बरीष उवाच॥ सर्वेषामपि मासानां त्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा । श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन् यदा चोक्तं तदा त्वया ॥ ३ ॥ वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् । इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च ॥ ४ ॥ श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन् कथं विष्णुमयो ह्यसौ । के च विष्णुप्रिया धर्मा मासे माधववल्लभे ॥ ५ ॥ तत्राप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः । किं दानं किं फलं तस्य किमुद्दिश्याचरेदिमान् ॥ ६ ॥

विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है, हे ब्रह्मन्! यह मास विष्णु भगवान्‌को ऐसा प्रिय क्यों है, इस मासमें विष्णुप्रिय कौन कौनसे धर्म हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ इनमेंसेभी कौन कौनसे धर्म कर्त्तव्य हैं जो विष्णुको प्यारे हैं कौनसा दान कर्त्तव्य है और उसका फलभी क्या है तथा इस मासमें कौनसे देवताकी उपासना करनी चाहिये ? ॥ ६ ॥

वैशाखमासमें माधव भगवान्‌की पूजाकी सामग्री कौनकौनसी है? हे नारदजी! ये सब मेरे सामने विस्तारपूर्वक कहो मैं श्रद्धा करके सुनूं हूं ॥७॥ श्री नारदजी बोले कि, मैंनेभी ब्रह्माजीसे यही प्रश्न किया और प्रथम भगवान्‌ने लक्ष्मीजीसे मासमाहात्म्य कहे सोई ब्रह्माजीने मेरे प्रति कहे ॥८॥ इन बारह मासोंमें कार्त्तिक, माघ और वैशाख ये तीनमास उत्तम हैं और इन तीनोंमेंभी वैशाखमास परमोत्तम है॥९॥ यह माताकी तरह सब जीवोंको

कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे। एतन्नारद विस्तार्य मह्यं श्रद्धावते वद ॥ ७ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ मया पृष्टः पुरा ब्रह्मा मासधर्मान् पुरातनान्। व्याजहार पुरा प्रोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना ॥ ८ ॥ ततो मासा विशिष्टोक्ताः कार्तिको माघ एव च। माधवस्तेषु वैशाखं मासानामुत्तमं व्यधात् ॥ ९ ॥ मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टप्रदायकः। दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ॥ १० ॥ धर्मयज्ञक्रियासारस्तपःसारः सुरार्चितः। विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवो यथा ॥ ११ ॥ भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत्। शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ॥ १२ ॥

सदाही अभीष्ट पदार्थोंका दाता है, इस महीनामें दान, यज्ञ, व्रत और स्नानकरनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होय जाय हैं॥१०॥ यह महीना धर्म, यज्ञ और आह्लिक कर्मोंका सार रूप है, तपोंका सार हैं और देवताओं करके अर्चित है सब विद्याओंमें वेद विद्यारूपहै मन्त्रोंमें प्रणव जो ओंकार उसकेसमान है ॥११॥ वृक्षोंमें कल्पवृक्ष और गौओंमें कामधेनुके समान है नागोंमें शेषनाग और पक्षियोंमें गरुडके समान है ॥ १२ ॥

देवगणोंमें विष्णुके समान और वर्णोंमें ब्राह्मणोंके समान है, प्रियवस्तुओंमें प्राणके समान और सुहृद्वर्गमें भार्याके समान हितकारी है॥१३॥नदियोंमें गंगाके समान और तेजवान् पदार्थोंमें सूर्यके समान है, आयुधोंमें सुदर्शनचक्र और धातुओंमें सुवर्णके समानहै ॥१४॥ वैष्णवोंमें शिवजीके समान और रत्नोंमें कौस्तुभमणिके समान है ऐसेहि धर्मके हेतु संपूर्ण महिनोंमें वैशाखमास उत्तम है ॥ १५ ॥ संसारमें इसके समान विष्णुका प्रीतिपात्र

देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा । प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येव सुहृदां यथा ॥ १३ ॥ आपगानां यथा गङ्गा तेजसा तु रविर्यथा । आयुधानां यथा चक्रं धातूनां काञ्चनं यथा ॥ १४ ॥ वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा । मासानां धर्म-हेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ॥ १५ ॥ नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः । वैशाखस्नाननिरतो मेषे प्रागर्यमोदयात् ॥ १६ ॥ लक्ष्मीसहायो भगवान्न प्रीतिं तस्मिन् करोत्यलम् । जन्तूनां प्रीणनं यद्वदन्नेनैव हि जायते ॥ १७ ॥ तद्वद्वैशाखस्ना-नेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयः । वैशाखस्नाननिरताञ्जनान् दृष्ट्वानुमोदते ॥ १८ ॥ तावतापि विमुक्तोऽघैर्विष्णुलोके महीयते । सकृत्स्नात्वा मेषसंस्थे सूर्य्ये प्रातः कृताह्निकः ॥ १९ ॥

कोई नहीं है जो मनुष्य सूर्योदयसे पहले वैशाख मासमें नित्य नियमसे स्नान करे है उस मनुष्यपर लक्ष्मीसहित भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होय हैं जैसे अन्नसे प्राणी प्रसन्न होवे हैं ॥१६।१७॥ वैसेही वैशाखमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् निस्संदेह प्रसन्न होयहैं और स्नान करनेमें निरत मनुष्यको देखकर अनुमोदन करते हैं ॥१८॥ और वह प्राणी संपूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको जायहैं,जो मनुष्य मेषकी संक्रांतिमें प्रातःकाल स्नान करके

नित्यकर्म करताहै वह संपूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णु भगवान्‌की सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होयहैजो मनुष्य वैशाखमें स्नानकरनेके निमित्तएकपांवभरजाय है॥१९॥२०॥ उसे दशसहस्र अश्वमेधयज्ञका फल निश्चय प्राप्त होय है अथवा एकाग्रचित्तसे जो कोई संकल्पमात्र करै है॥२१॥उसे भी निश्चय सौ यज्ञका फल मिलै है, जो कोई मेषकी संक्रांतिमें धनुषकी मर्यादा (चार हस्त प्रमाण)तक जायहै॥२२॥वह सर्व बंधनसे छूटकर विष्णुकी सायुज्यताको

महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् । स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि ॥ २० ॥ सोऽश्वमेधायुतानां च फलं प्राप्नोत्यसंशयः । अथवा कूटचित्तस्तु कुर्यात्संकल्पमात्रकम् ॥ २१ ॥ सोऽपि क्रतुशतं पुण्यं लभेदेव न संशयः । यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषं गते रवौ॥२२॥सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् । त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च ॥ २३ ॥ तानि सर्वाणि राजेन्द्र सन्ति बाह्येऽल्पके जले ॥ तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ॥ २४ ॥ यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि । तीर्थाधिदेवताः सर्वा वैशाखे मासि भूमिप ॥ २५ ॥ बहिर्जलं समाश्रित्य सदा सन्निहिता नृप । सूर्योदयं समारभ्य यावत् षड्घटिकावधि ॥ २६ ॥

प्राप्त होय है॥ब्रह्मांडके अन्तर्गत जितने तीर्थ हैं, हे राजेन्द्र! वे सब तीर्थ बाहर थोडेही जलमें आजाते हैं। यमकी आज्ञासे लिखित पाप उस समयतक प्रकट रहते हैं जबतक प्राणी वैशाखमें स्नान नहीं करै है। हे राजन्! तीर्थोंके अधिष्ठाता संपूर्ण देवता वैशाखके महीनामें ॥ २३–२५ ॥ जलके बाहर सूर्योदयसे छः घडी दिन चढे तक ॥ २६ ॥

विष्णुभगवान्की आज्ञासे मनुष्योंके हितकी कामनासे आयके ठहरे रहे हैं और जो पुरुष उस समयतकभी स्नान करनेको नहीं आते हैं उन्हें दारुण शाप देकर अपने २ स्थानको चलेजाय हैं इससे हे राजन्! सूर्योदयसे छः घडी दिन चढके भीतर स्नान अवश्यही करना चाहिये ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादो नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ नारदजी बोले–हे राजन्! वैशाखके समान कोई महीना नहींहै सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं ॥ १ ॥ जलके समान कोई दान नहीं है, भार्याके

तिष्ठन्ति चाज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया। तावन्नगच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥ २७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ छ ॥ नारद उवाच ॥ न माधवसमो मासो न कृतेन समं युगम्। न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥ १ ॥ न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम्। न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः ॥२॥ न तपोऽनशनात्तुल्यं न दानात्परमं सुखम्। न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम्॥३॥न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम्। न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥४॥

समान कोई सुख नहीं है खेतीके समान कोई धन नहीं है और जीवके समान कोई लाभ नहीं है ॥ २ ॥ उपवाससे अधिक कोई तप नहीं है दानसे अधिक कोई सुख नहीं है दयाके समान कोई धर्म नहीं है नेत्रके समान कोई ज्योति नहीं है ॥३॥ भोजनके समान कोई तृप्ति नहीं है खेतीके समान कोई व्यापार नहीं है, धर्मके समान कोई हितकारी मित्र नहीं है, सत्यके समान कोई यश नहीं है ॥ ४ ॥

नीरोगताके समान कोई हर्ष नहीं है, केशवके समान कोई रक्षक नहीं है, माधवके समान संसारमें कोई पवित्र नहीं है ॥५॥ ऐसाही वैशाखमास परमोत्तम है और शेषशायी भगवान्‌को सदा प्यारा है, जो मनुष्य भगवान्‌के प्यारे इस महीनाको विनाव्रत किये व्यतीत करै हैं ॥ ६ ॥ वह संपूर्ण धर्मोंसे बहिष्कृत होकर शीघ्रही पशुयोनि पावै है, जो मनुष्य विनाव्रत किये इस मासको खोयदेवे हैं उनका कूआ बनवाना, बावडी बनवाना, बगीचा लगवाना आदि जितने धर्म हैं वे सब वृथाही हैं उनका कुछ फल नहीं होताहै जो मनुष्य नियमपूर्वक वैशखमासमें भोजनादि करैं वे अवश्यही विष्णुभगवान्‌की

नारोग्यसमसुत्थानं न त्राता केशवात्परः । न माधवसमं लोके पवित्रं कवयो विदुः ॥ ५॥ माधवः परमो मासः शेषशायिप्रियः सदा । अव्रतेन क्षपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम् ॥ ६ ॥ तिर्यग्योनिं स यात्याशु सर्वधर्मबहिष्कृतः । अव्रतेन गतो येषां माधवो मर्त्यधर्मिणाम् ॥७॥ इष्टापूर्तं वृथा तेषां धर्मो धर्मभृतां वरः । प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणां माधवे नियमे कृते ॥८॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं प्राप्नोत्येव न संशयः । सन्तीह बहुवित्तानि व्रतानि विविधानि च ॥९॥ देहायासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च । वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥१०॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः॥११॥

सायुज्यमुक्तिको प्राप्तहो इसमें सन्देह नहीं है संसारमें अनेकों प्रकारके दानादि और अनेकों प्रकारके व्रत हैं परंतु उन सबके करनेसे शरीरको अत्यन्त परिश्रम होय है और संसारमें वारंवार जन्मलेना पडैहै, परंतु वैशाखमासमें केवल स्नान करलेनेसेही प्राणी आवागमनसे छूटजाय है ॥७-१०॥ सब प्रकारके दान करनेसे जो पुण्य होय है और सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल होय है वह सब फल वैशाखमें केवल जलदान करनेसे मिलजायहै ११

जो स्वयं जलदान करनेकी सामर्थ्य न हो तौ ऐश्वर्यकी इच्छाकरनेवाले पुरुषोंको उचित है कि औरोंको प्रेरणा करके जलदान करावै, यह कर्मभी संपूर्ण दानोंसे अधिक है ॥ १२ ॥ तराजूके पलडामें सब प्रकारके दान धरे और दूसरे पलडामें जलदान धरके तोले तौ जलदानकाही पुण्य विशेष निकलैगा ॥ १३ ॥ जो रस्तागीर यात्रियोंके लिये प्याऊ लगायकै जलदान करे हैं वे अपने करोडों कुलका उद्धार करके विष्णुलोकको

जलदानासमर्थेन परस्यापि प्रबोधनम्। कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हि तत् ॥ १२ ॥ एकतः सर्वदानानि जलदानं हि चैकतः। तुलामारोपितं पूर्वं जलदानं विशिष्यते ॥ १३ ॥ मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यःप्रपादानं करोति हि। स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ १४ ॥ देवानां च पितॄणां च ऋषीणां राजसत्तम। अत्यन्तप्रीतिदं सत्यं प्रपादानं न संशयः ॥ १५ ॥ प्रपादानेन संतुष्टा येनाध्वश्रमकर्शिताः। तोषितास्तेन देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥१६॥ सलिलं सलिलाकांक्षी छायां छायाम-पीच्छताम्। व्यजनं व्यजनाकांक्षी वैशाखे मासि भूमिप ॥ १७ ॥

चले जांय हैं ॥ १४ ॥ हे राजन्! प्याऊ लगाकर जलदान करनेसे देवता, पितर और ऋषि सब अत्यन्तही प्रसन्न होय हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥१५॥ जो प्याऊ लगायके मार्गके थके हुए यात्रियोंको संतुष्ट करे हैं उससे सम्पूर्ण देवता, ब्रह्मा, विष्णु और शिव सब प्रसन्न होय हैं ॥ १६ ॥ जो जलकी इच्छा होय तौ जलका दान करै और छायाकी इच्छा होय तो छत्री दे और हे राजन्! जो वैशाखमासमें बीजनाकी इच्छा होय तो पंखा दे ॥१७॥

जितने दान कहे हैं उनमें सबसे जलदान, छत्रदान, और पंखादान है सबमें उत्तम इन्हींका दान वैशाखमासमें अवश्य कर्त्तव्य है जो वैशाखके महीनेमें कुटुम्बी ब्राह्मणको जलसे भराहुआ घडा नहीं देय है वह पृथ्वीमें चातककी योनि पावै है और जो तृषासे व्याकुल महात्माको शीतल जलपान करावै है उसे हे राजेन्द्र! सौ राजसूय यज्ञ करनेका फल प्राप्त होय है, जो धूप परिश्रम और पसीनासे व्याकुल ब्राह्मणको पंखासे हवा करै है ॥१८-२० ॥

जलं छत्रं च व्यजनं दानमेषां विशिष्यते । माधवे मासि संप्राप्ते ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ १८ ॥ अदत्त्वोदककुम्भं च चातको जायते भुवि। यो दद्याच्छीतलं तोयं तृषार्ताय महात्मने ॥ १९ ॥ तावन्मात्रेण राजेन्द्र राजसूयाधुतं लभेत् । धर्मश्रमार्तवि प्राय विजयेद्यजनेन यः ॥ २० ॥ तावन्मात्रेण निष्पापो विहगाधिपतिर्भवेत् । अदत्त्वा व्यजनं भूप वैशाखे तु द्विजातये ॥२१॥ वातरोगशताकीर्णो नरकानेव विन्दति । यो वीजयेत्पटेनापि पथि श्रान्तं द्विजोत्तमम् । तावताऽथ विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्य माप्नुयात् ॥ २२ ॥ यस्तालव्यजनं वापि दत्त्वा शुद्धेन चेतसा । विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २३ ॥

वह यावन्मात्रपापोंसे रहित होकर गरुडके समान होय जाय है, जो मनुष्य वैशाखके महीनेमें ब्राह्मणके अर्थ पंखा नहीं देय है वह अनेकन प्रकारके वातरोगोंसे पीडित होकर नरकोंको भोगै है ॥ जो मार्गसे थके हुए ब्राह्मणको वस्त्रसे हवा करै है वह संपूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्‌की सायुज्यताको प्राप्त होय है ॥२१॥२२॥ जो शुद्ध मनसे ताडके पंखाका दान करै हैं वे सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको चलेजाय हैं ॥ २३ ॥

जो मनुष्य तत्काल श्रमके दूर करनेवाले पंखेका दान नहीं करें हैं वे अनेक प्रकारकी नरकसंबंधी यातनाओंको भोगकर संसारमें पापकी होवे हैं ॥२४॥ हे राजेन्द्र! आध्यात्मिक दुःखकी शांतिके निमित्त वैशाखमासमें छत्रीका दान प्रयत्नपूर्वक करना उचित है ॥२५॥ जो मनुष्य विष्णु भगवान्के प्यारे इस वैशाखमासमें छत्रीका दान नहीं करें हैं उनको कहीं छाया नहीं मिले हैं और वे महाक्रूर पिशाच बनके पृथ्वीमें डोलें हैं॥२६॥

सद्यःश्रमहरं पुण्यं न दद्याद्व्यजनं नरः। नारकीं यातनां भुक्त्वा कश्मलो जायते भुवि ॥२४॥ आध्यात्मिकादिदुःखानां शान्तये मनुजेश्वर। छत्रं दद्यात्प्रयत्नेन वैशाखे मासि वा सकृत् ॥ २५ ॥ अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधवप्रिये। छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचो भुवि जायते ॥ २६ ॥ यो दद्यात्पादुके दिव्ये माधवे माधवप्रिये। यमदूतौ निराकृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥ पादत्रणं तु यो दद्याद्वैशाखे माधवागमे न तस्य नारको लोको न क्लेशा ऐहिकाश्च ये ॥ २८ ॥ पादुके याचमानाय यो दद्याद्ब्राह्मणाय च। स भूपालो भवेद्भूमौ कोटिजन्मन्यसंशयम् ॥ २९ ॥

जो वैशाखमें खाडाउओंका दान करे हैं वे यमके दूतोंका तिरस्कार करके विष्णुलोकको चले जाते हैं ॥ २७॥ जो वैशाखमासमें जूताका दान करें हैं उनको नरककी यातना नहीं सहनी पडे हैं न उस प्राणीको इस संसारके दुःख सताते हैं ॥२८ ॥ जो कोई ब्राह्मण खडाऊंनकी याचना करै तौखडाऊंका दान करनेवाला मनुष्य इस पृथ्वीपर करोड जन्मतक राजा होय है ॥ २९ ॥

जो मार्गमें श्रमके दूर करनेके लिये स्थान बनावै है उसका फल वर्णन करनेकी ब्रह्मामेंभी सामर्थ्य नहीं है ॥३०॥ मध्याह्नकालमें जो कोई अतिथि ब्राह्मण मिलजाय तौ उसके भोजन करानेका फल ब्रह्माजीभी वर्णन नहीं करसके हैं ॥३१॥ हे राजन् ! अन्नदान तत्काल मनुष्योंकी तृप्ति करने वाला है इससे इस संसारमें अन्नदानके समान कोई दान नहीं है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य मार्गसे थके हुये ब्राह्मणको आश्रय देता है उसके पुण्यफलके

अनाथमण्डपं मार्गे श्रमहारि करोति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥ ३० ॥ मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्तमतिथिं भोजयेद्यदि । न तस्यफलविश्रान्तिर्ब्रह्मणापि निरूपिता ॥ ३१ ॥ सद्यः स्वाप्यायनं नृणामन्नदानं नराधिप । तस्मान्नान्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते ॥ ३२ ॥ मार्गश्रान्ताय विप्राय प्रश्रयं प्रददाति यः । तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥ ३३ ॥ दारापत्यगृहादीनि वासोऽलङ्कारभूषणम् । असह्यं नाश्नतः पुंसः स ह्यभुक्तवतो ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति । वैशाखे येन चादत्तं मार्गश्रान्ते च भूसुरे ॥ ३५ ॥ स पिशाचो भवेद्भूमौ स्वमांसान्येव खादति । यथाविभूत्या दातव्यं तस्मादन्नं द्विजातये ॥ ३६ ॥

कहनेको ब्रह्मामें भी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३३ ॥ भूखे मनुष्यको, स्त्री, पुत्र, घर, वस्त्र, अलंकार, आभूषण कुछ भी अच्छे नहीं लगे हैं और पेट भरनेपर ये सब अच्छे लगे हैं॥३४॥इसलिये अन्नके दानके समान न कुछ हुआ न आगे होगा जो वैशाखमें थकेहुए ब्राह्मणको अन्नका दान नहीं देता है॥३५॥ वह पिशाच बनकर पृथ्वीमें अपनेही मांसको खाता फिरता है इसलिये यथाशक्ति ब्राह्मणको अन्न देना उचित है ॥ ३६ ॥

हे राजन्! अन्नका दाता माता पिताकाभी विस्मरण करादेता है अर्थात् मातापिताको भूलकर दानीहीको अपना सर्वस्व समझने लगते हैं इससे त्रिलोकीमें सब लोग अन्नकीही प्रशंसा करते हैं ॥ ३७ ॥ माता और पिता तौ केवल जन्मके हेतु हैं परन्तु पंडितलोग संसारमें अन्नके दानीहोको पिता कहते हैं ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! अन्नके दानीमें सम्पूर्ण तीर्थ और अन्नके दानीहीमें सब देवता और अन्नके दानीहीमें सब धर्म आकर निवास करते

अन्नदो मातृपित्रादीन् विस्मारयति भूमिप । तस्मादन्नं प्रशंसन्ति लोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः ॥३७॥ मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः । अन्नदं पितरं लोके वदन्ति च मनीषिणः ॥ ३८ ॥ अन्नदे सर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवताः । अन्नदे सर्वधर्माश्च तिष्ठन्त्यरिधराजय ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाननिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ यो मर्त्यो द्विजवर्याय पर्यङ्कं तु ददाति हि । यत्र स्वस्थः सुखं शेते शीतानिलनिषेवितः ॥ १ ॥ धर्मसाधनभूतो हि देहो निरुजमासते । तं दत्त्वा सकलं तापं निरस्य गतकल्मषः ॥ २ ॥

हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दाननिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारदजी कहते हैं—जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणको पलंगका दान करता है और वह ब्राह्मण उसपर सुखपूर्वकशयन करै और उस ब्राह्मणकी ठंढी ठंढी हवासे सेवा करी जाय ॥ १ ॥ तौ सम्पूर्ण धर्मोंका साधनभूत उसका देह निरोग रहता है, इसके दानसे सब प्रकारके ताप शांत होय हैं और सब प्रकारके ताप दूर होय हैं ॥ २ ॥

वह मनुष्य उस अखंड पदवीको प्राप्त होय है जो योगियोंको भी दुर्लभ है, जो मनुष्य वैशाखके महीनामें धूपसे संतापित थकेहुए ब्राह्मणोंको सुंदर श्रमनाशक पलंगका दान करता है वह मनुष्य हे राजन् ! इस संसारमें जन्म मरण और वृद्धावस्थाके क्लेशोंको नहीं भोगता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस पलंगको लेकर जो ब्राह्मण उसपर शयन करता है तौ जीवनपर्य्यंत ज्ञान अथवा अज्ञानसे करेहुए उसके पाप नष्ट होय जाते हैं ॥५॥ हे राजेंद्र ! उसके पाप ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे अग्निके स्पर्शसे कपूर नष्ट होजाता और वह मनुष्य निश्चयही ब्रह्मपदको चलाजाय है॥६॥ जो मनुष्य वैशाखमासमें शय्या

अखण्डपदवीं याति योगिनामपि दुर्लभाम् । वैशाखे घर्मतप्तानां श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ दत्त्वा श्रमापहं दिव्यं पर्यङ्कं मनुजेश्वर । न जातु सीदते लोके जन्ममृत्युजरादिभिः ॥ ४ ॥ गृहीत्वा ब्राह्मणो यत्र शेते चाजीवमास्थितः । आसीने सकलं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ॥ ५ ॥ विलयं याति राजेन्द्र कर्पूर इव चाग्निना । शयने ब्रह्मनिर्वाणं स नरो याति निश्चितम् ॥ ६ ॥ यो दद्यात्कशिपुं मासे वैशाखे स्नानवल्लभे । सर्वभोगसमायुक्तस्तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥ ७ ॥ सान्वयो वर्तते नूनं रोगादिभिरनाहतः । आयुष्यं परमारोग्यं यशो धैर्यं च विन्दति ॥ ८ ॥ नाधार्मिकः कुले तस्य जायते शतपौरुषम् । भुक्त्वा तु सकलान्भोगां स्ततः पञ्चत्वमेष्यति ॥ ९ ॥

दान करे है, वह इसी जन्ममें सम्पूर्ण भोग्य पदार्थोंको भोगता है ॥७॥ उसके कुलमें बहुतसे मनुष्य होते हैं, कोई रोग उसको नहीं होय है, उसे बडो आयु, निरोगता, यश और धैर्य मिले है ॥ ८ ॥ उस धर्मात्माके कुलमें सौ पीढीतक कोई अधर्मी नहीं होयहै इस मासमें दानादि करनेका अमित फल होय है ऐसे ऐसे वैशाखके धर्मोंका करनेवाला धार्मिक पुरुष संपूर्ण भोगोंको भोगकर अपना देह त्यागता है ॥ ९ ॥

जो वेदपाठीब्राह्मणको तकिया देता है उसके संपूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं और अन्तसमयमें ब्रह्मपदको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ इसके दिये विना मनुष्य सुखपूर्वक निद्रा नहीं प्राप्तकर सके हैं और इसके दान करनेसे सबका आश्रयभूत होकर पृथ्वीराज्य भोगै है ॥११ हे राजन् ! वह मनुष्य सातजन्म-पर्यंत जब जब जन्म लेय हैं तब तब सदा सुखी, भोगी, धर्मपरायण और विजयी होय है ॥ १२ ॥ पीछे अपने सातों कुल समेत ब्रह्मभावको प्राप्त

निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति । श्रोत्रियाय द्विजेन्द्राय यो दद्यादुपबर्हणम् ॥ १० ॥ सुखं निद्रां विना येन न नृणां जायते क्वचित् । सर्वेषामाश्रयो भूत्वा भुवि साम्राज्यमश्नुते ॥११॥ पुनः सुखी पुनर्भोगी पुनर्धर्मपरायणः । आसप्तजन्मराजेन्द्र जायते सर्वदा जयी ॥ १२ ॥ पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते । तार्णं कटं तु यो दद्यात्कटमन्यदथापि वा ॥ १३ ॥ तत्र शेते स्वयं विष्णुः पत्रस्थः परमेश्वरः । यथा जलगता चोर्णा न जलैर्भिद्यते क्वचित् ॥ १४ ॥ तथा संसारगो जन्तुः संसारे नैव बध्यते । आसने शयने शक्तः कटदः सर्वतः सुखी ॥ १५ ॥ प्रश्रये शयनार्थाय यो दद्यात्कटकम्बलम् । तावन्मात्रेण मुक्तः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥

होजाता है जो मनुष्य चटाई अथवा और किसीप्रकारका आसन देय है, जिसपर पत्रशायी स्वयं विष्णुभगवान् विराजे हैं जैसे जलमें पडी हुई ऊन जलसे नहीं भिदै है वैसेही संसारी जीव संसारमें बंधनको प्राप्त नहीं होय है,एवं चटाईका देनेवाला पुरुष आसन और शय्यापर आरूढ होकर सब तरहसे सुखी रहता है ॥ १३–१५ ॥ जो शयन करनेके लिये चटाई और कंबल देता है वह पुरुष मुक्त होजाता है इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १६ ॥

निद्रासे दुःख दूर होयजाय है और निद्रासे परिश्रम दूर होयजाय है वही निद्रा चटाईपर सुखपूर्वक आवे है ॥१७॥ हे राजन् ! जो वैशाखमें कंबलका दान करे है वह आकालमृत्यु और कालमृत्युसे छूटकर सौवर्षतक जीवित रहता है ॥१८॥ जो प्राणी धूपसे व्याकुल ब्राह्मणको पतला वस्त्र देता है उसकी पूर्ण आयु होती है और परलोकमें उसको परमगति मिलती है॥१९॥कपूर अन्तस्तापको दूर करै है इससे कपूरका दान ब्राह्मणको देवै तो मोक्ष मिलती

निद्रया हीयते दुःखं निद्रया हीयते श्रमः । सा निद्रा कटसंस्थस्य सुखं संजायते ध्रुवम् ॥१७॥ यो दद्यात्कंबलं राजन् वैशाखे माधवागमे। अपमृत्योः कालमृत्योर्मुक्तो जीवति वै शतम् ॥ १८ ॥ दद्याद्वस्त्रं सूक्ष्मतरं द्विजेन्द्रे धर्मकर्शिते । पूर्णमायुः समाप्नोति परत्र च परां गतिम् ॥ १९ ॥ अन्तस्तापहरं दिव्यं कर्पूरं तु द्विजातये । दत्त्वा मोक्षमवाप्नोति दुःखशान्तिं च विन्दति ॥ २० ॥ कुसुमानि च यो दद्यात् कुङ्कुमं च द्विजातये । सार्वभौमो भवेद्राजा सर्वलोकवशंकरः ॥२१॥ पुत्रपौत्रादिभोगांश्च भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् । त्वगस्थिगतसन्तापं सद्यो हरति चन्दनम् ॥ २२ ॥ तापत्रयविनिर्मुक्तस्तद्दत्त्वा मोक्षमाप्नुयात् । औशीरं चम्पकं कौशं यो दद्याज्जलवासितम् ॥ २३ ॥

है और दुःखका नाशहोता है ॥२०॥जो ब्राह्मणके लिये फूल और कुंकुमका दान करै तो सार्वभौमराजा होय और सब प्राणी उसकी आज्ञामें रहें॥२१॥ और पुत्र तथा पौत्रोंसे युक्त होकर सब भोगोंको भोग मोक्ष पाता है त्वचा और हड्डीमें जो संताप होता है उसे चन्दन तत्काल दूर कर देता है ॥२२॥ जो कोई चन्दनका दान करे है वह तीनों तापोंसे दूर होकर मोक्षको प्राप्त होता है जो कोई जलमें भीगी हुई खस, चंपा वा कुशाका दान करै हैं ॥२३॥

हे राजन ! यह प्राणी सब प्रकारके भोगोंको भोगता है और सब देवता उसकी सहाय करे हैं उसके संपूर्ण पाप और दुःख दूर होयजाय हैं और अन्तमें मोक्षपावै हैं ॥ २४ ॥ जो वैशाखके महीनामें गोरोचन और कस्तूरीका दानकरै है वह तीनों तापसे छूटकर परम मोक्षपद पावै है ॥२५॥ जो मेषकी संक्रान्तिमें तांबूल और कपूरका दान करै हैं वह पृथ्वीमें सार्वभौमसंबंधी सुख भोगकर निर्वाणपदकी प्राप्ति करै है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य सेवती और जुहीका दान करै है वह सार्वभौमराजा होता है और अन्तमें मोक्षको पावा है ॥ २७ ॥ जो वैशाखके महीनामें केतकी और मल्लिकाका दान

सर्वभोगेषु राजेन्द्र स तु देवसहायवान् । पापहानिं दुःखहानिं प्राप्य निर्वृतिमाप्नुयात् ॥२४॥ गोरोचं मृगनाभिं च दद्याद्वैशाख धर्मवित् । तापत्रयविनिर्मुक्तःपरं निर्वाणमृच्छति॥२५॥तांबूलं च सकर्पूरं यो दद्यान्मेषगे रवौ। सार्वभौमसुखं भुक्त्वा परं निर्वाण-मृच्छति ॥२६॥ शतपत्रीं च यूथीं च मेषमासेऽददन्नरः । स सार्वभौमो भवति पश्चान्मोक्षं च विन्दति॥२७॥ केतकीं मल्लीकां वापि यो दद्यान्माधवागमे। स तु मोक्षमवाप्नोति मधुशासनशासनात् ॥२८॥ पूगीफल तु यो दद्यात्सुगन्धं तु द्विजातये। नारिकेलफलं राजंस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २९ ॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाड्यो वेदपारगः । पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥३०॥

करै है वह माधवभगवानकी आज्ञासे मोक्षपदको प्राप्त होय है ॥२८॥ जो मनुष्य ब्राह्मणको पूगीफल और अन्य सुगंधित द्रव्योंका दान करता है और हे राजन् ! जो नारियलका दान करै उसके पुण्यके फलको चित्त लगायकर सुनो ॥ २९ ॥ वह मनुष्य सात जन्मतक ब्राह्मणके घर जन्म लेय है और धनवान् तथा वेदपाठी होय है पीछे वह सातों कुलसमेत विष्णुभगवान्के लोकको चलाजाय है ॥ ३० ॥

हे राजन्! जो प्राणी विश्रामका मंडप बनाकर ब्राह्मणको देय है उसके पुण्यके फलको कहनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है ॥३१॥ जो मनुष्य छायामंडप बनवायकर भीतर वालू बिछा देता है और उसमें प्याऊ लगा देता है वह स्वर्गलोकका स्वामी होता है॥३२॥ जो मनुष्य मार्गमें बागबगीचा, तडाग, कूआँ झोपडी बनवाता है, वह बडा धर्मात्मा है उसको पुत्रोंसे और क्या फल है॥३३॥ जो मनुष्य कूआँ, तलाव, मंडप और प्याऊ लगवाता है, तथा सद्ध-

विश्राममण्डपं यस्तु कृत्वा दद्याद्द्विजन्मने। तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूपते॥ ३१॥ सुच्छायामण्डपं यस्तु सिकता-कीर्णमञ्जसा। सप्रपं कारयेद्यस्तु स तु लोकाधिपो भवेत्॥ ३२॥ मार्गोद्यानं तडागं वा कूपं मण्डपमेव च। यः करोति स धर्मात्मा तस्य पुत्रैस्तु किं फलम्॥ ३३॥ कूपस्तडाग उद्यानं मण्डपश्च प्रपा तथा। सद्धर्मकरणं पुत्रः सन्तानं सप्तधोच्यते॥ ३४॥ एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्ति मानवाः। सच्छास्त्रश्रवणं तीर्थयात्रासज्जनसङ्गतिः॥ ३५॥ जलदानं चान्नदान-मश्वत्थारोपणं तथा। पुत्रश्चेति च सन्तानं सप्त वेदविदो विदुः॥ ३६॥ नासन्ततिर्लभेल्लोकान् कृत्वा धर्मशतान्यपि। तस्मात् सन्तानमन्विच्छेत्सन्तानेष्वेकतो व्रजेत्॥ ३७॥

र्मका करना यही उसका पुत्र है, संतान सातप्रकारको कही हैं॥३४॥ इन सातोंमेंसे जो एकको भी न करै वहमनुष्य स्वर्गको नहीं जाता है, उत्तमशास्त्रोंका सुनना, तीर्थयात्रा, सज्जनसङ्गति॥३५॥जलदान,अन्नदान,पीपलका पेड लगा और पुत्रका होना ये सात प्रकारकी संतान वेदवेत्ताओंने कही हैं॥३६॥ अन्य सेकडोंधर्म करनेपरभी मनुष्योंको संतान नहीं मिलती हैं, इससे संतानकी इच्छाकरनेवालोंको इनमेंसे एक कर्म तो अवश्यहो करना चाहिये॥३७॥

पशु पक्षी मृग और वृक्षोंकोभी स्वर्गसुख नहीं मिलता है फिर मनुष्योंका तौ क्या कहना है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य सुपारी, नागवल्ली, कपूर और अगर सहित तांबूलका दान करै है ॥३९॥ वह निश्चयही संपूर्ण शारीरिक पापोंसे मुक्त होजाता है तथा तांबूलका दान करनेवाला यश, धैर्य और लक्ष्मी प्राप्तकरै है ॥ ४० ॥ जो रोगी देता है वह रोगसे छूट जाता है और जो निरोगी देता है वह मोक्ष पाता है, जो वैशाखके महीनेमे तापनाशक

पशूनां पक्षिणां चैव मृगाणां चैव भूरुहाम् । नोर्ध्वलोकं सुखं याति मनुष्याणां तु का कथा ॥ ३८ ॥ पूगीफलसमायुक्तं नागवल्ली-दलैर्युतम् । कर्पूरागरुसंयुक्तं दद्स्ताम्बूलमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । तांबूलदो यशो धैर्यं श्रियं चाप्नोति निश्चितम् ॥ ४० ॥ रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात् । वैशाखे मासि यो दद्यात्तक्रं तापविनाशनम्॥४१॥ विद्यावान् धनवान् भूमौ जायते नात्र संशयः । न तक्रसदृशं दानं घर्मकालेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रान्तद्विजा-तये । जम्बीररसुरसोपेतं लसल्लवणमिश्रितम् ॥ ४३ ॥ यस्तक्रमरुचिघ्नं तु दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् । यो दद्याद्दधिमण्डं तु वैशाखे घर्मशान्तये ॥ ४४ ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूमिप । यो दद्यात्तण्डुलान्दिव्यान्मधुसूदनवल्लभे ॥ ४५ ॥

छांछका दान करै है ॥४१॥ वह पृथ्वीमें विद्यावान् और धनवान् होता है इसमें संदेह नहीं है॥ गर्मी की ऋतुमे तक्रके समान कोई दान नहीं है॥४२॥ इससे मार्गके कारण थकेहुए ब्राह्मणको छाछका दान करै है। जो मनुष्य जंभीरीका रस और नमक डालकर अरुचिनाशक तक्रका दान करता है वह मोक्ष पाता है, जो गर्मीसे व्याकुल ब्राह्मणको दधिका मंड पान करावै है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! उसके पुण्यका फल कहनेकी मेरी सामर्थ्य

नहीं है, जो वैशाखके महीनामें दिव्य चावलका दान करै है ॥ ४५ ॥ उसकी बडी पूर्ण आयु होती है और वह संपूर्ण यज्ञोंके फलको पावा है, जो तेजोरूप गौके घीका दान ब्राह्मणको देय है ॥ ४६ ॥ वह अश्वमेधका फल प्राप्त करके विष्णुभगवान्‌के मंदिरमें आनन्दको प्राप्त होवा है जो मेषकी संक्रान्तिमें ककडी और गुडका दान करै हैं ॥४७॥ वह संपूर्ण पापोंसे छूटकर श्वेत द्वीपको चलाजाय है, जो मनुष्य दिनके तापकी शान्तिके

स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत्। योघृतं तेजसो रूपं गव्यं दद्याद्द्विजातये ॥ ४६ ॥ सोऽश्वमेधफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे। उर्वारुगुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ ॥४७॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम्। यश्चेक्षुदण्डं सायाह्ने दिवातापोपशान्तये ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम्। वैशाखे पानकं दत्त्वा सायाह्ने श्रमशान्तये ॥ ४९ ॥ सर्वपापविमुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्। सफलं पानकं मेषमासे सायं द्विजातये ॥ ५० ॥ दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः। वैशाखे पानकं चूतसुपक्वफलसंयुतम् ॥ ५१ ॥

निमित्त ईखका दान करै ॥४८॥उसका अनन्त पुण्य होवा है, जो सायंकालमें श्रमके शान्तिके लिये पनेका दान करै है वह संपूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्त होवाहै, जो सायंकालके समय ब्राह्मणको फल और पनेका दान करे उस दानसे पित्रीश्वरोंको निश्चय सुधापान मिलवा है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जो वैशाखके महीनामें पके आमके फल और पनेका दान करै है उसके सम्पूर्णपाप निश्चय दूर होजाते हैं ॥ ५१ ॥

जो चैत्रकी अमावस्याके दिन पेयवस्तुसे भरे हुए घडेका दान करै उसने सौ गयाके श्राद्ध कर लिये इसमें कोइं संदेह नहीं है । जो मनुष्य चैत्रकी अमावस्याको कस्तूरी, कपूर; मल्लिका, खस आदि द्रव्योंसे युक्त जलकुंभका दान पित्रीश्वराके निमित्त करता है उसको छियानवे श्राद्ध करनेका पुण्य होताहै ॥ ५२–५४ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नरदांबरीषसंवादे दाननिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारदजी बोले वैशाखके

तस्य सर्वाणि पापानि विनाशं यान्ति निश्चितम् । योदद्याच्चैत्रदर्शे तु कुम्भं पूर्णं तु पानकैः ॥ ५२ ॥ गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः । कस्तूरीकर्पुरोपेतं मल्लिकोशीरसयुतम् ॥ ५३ ॥ कलशं पानकपूर्णं चैत्रदर्शे तु मानवः । दद्यात पितॄन् समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत् ॥ ५४ ॥ इतिश्रीस्कन्द० वैशाखमा० नारदांबरीषसंवादे पानादिदाननिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥छ॥ नारद उवाच ॥ तैलाभ्यङ्गं दिवा स्वापं तथा वै कांस्यभोजनम् । खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥ १ ॥ वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम् । पद्मपत्रे तु यो भुङ्क्ते वैशाखे व्रतसंस्थितः ॥२॥ स तु पापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति । वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥

महीनामें तैलमर्दन, दिनमें शयन करना, कांसीके पात्रमें भोजन, खाटपर सोना, घरमें स्नानकरना, निषिद्ध भोजन करना ॥१॥ दोवार भोजन करना और रात्रिमें भौजन करना इन आठ बातोंको त्याग देना चाहिये । जो मनुष्य नियमपूर्वक वैशाखके महीनेमें कमलके पत्तोंपर भोजन करता है॥२॥ वह संपूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको चला जाय है, जो मनुष्य वैशाखकी दुपहरीमें थके हुए ब्राह्मणोंकी ॥ ३ ॥

चरणसेवाकरै है उसने सब व्रतोंसे उत्तमव्रत कर लिया है, मार्ग चलनेसे पीडित अपने घरपर आयेभये ब्राह्मणको दुपहरके समय ॥ ४ ॥ जो सुन्दर आसनपर बैठायकर चरणको दाबता है और उसके चरणोदकको अपने मस्तकपर छिडकै है उसके संपूर्ण बंधन दूर होयजांय हैं॥५॥और निश्चयही उस मनुष्यको गंगादि सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिलैहै,जो मनुष्य वैशाखमें स्नान नहीं करें है और कमलके पत्रपर भोजन नहीं करै है॥६॥

पादावनेजनं कुर्यात्तद्व्रतं सुव्रतोत्तमम् । अध्वश्रान्तं द्विजं यस्तु मध्याह्ने स्वगृहागतम् ॥ ४ ॥ उपवेश्यासने रम्ये कृत्वा पादावनेजनम् । धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥५॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितत् । अस्नायी वाप्यपत्राशी वैशाखं तु नयेद्यदि ॥६॥ रासभी योनिमासाद्य पश्चादश्वतरी भवेत् । दृढाङ्गो रोगहीनश्च तथा स्वस्थोऽपि मानवः॥७॥ वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् । वैशाखे मासि राजेन्द्र मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ ८ ॥ न करोति बहिः स्नानं श्वानयोनिशतं व्रजेत् । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ ९ ॥

वह गधैयाकी योनि पावै है पीछे खच्चरीकी योनिमें जाय है जो मनुष्य हृष्टपुष्ट रोगहीन और स्वस्थहोकरभी ॥ ७ ॥ वैशाखमें स्नान नहीं करै है वह चांडालकी योनि पावै है, हे राजन् ! वैशाखके महीनेमें मेषकी संक्रांतिके दिन बाहर जायकर किसी तीर्थपर स्नान नहीं करै है वह सौ जन्मतक कुत्ताकी योनि पावै है, जो मनुष्य इस वैशाख मासको विनास्नान किये अथवा विनादान किये व्यतीत करदेवा है ॥ ८ ॥ ९ ॥

वह पिशाचकी योनिपाकर नरकको चलाजाय है जो लोभी मनुष्य वैशाखमें अन्नदान वा जलदान नहीं करे है ॥१०॥ उसका पाप और दुःख कभी भी दूर नहीं होय है यह बात निश्चयही है, जो मनुष्य वैशाखके महीनेमें विष्णु भगवान्‌में मन लगाकर नदीमें स्नान करै है ॥ ११ ॥ उसके तीनों जन्मके संचित पाप नष्ट होजावे हैं, जो सूर्योदयके समय प्रातःकाल समुद्रसे मिलनेवाली नदियोंमें स्नान करै॥१२॥ तौ उसके सात जन्मके किये

स पिशाचो भवेन्नूनमवैशाखादधो व्रजेत्। यो न दद्याज्जलं चान्नं वैशाखे लोभमानसः ॥ १० ॥ पापहानिं दुःखहानिं नैवाप्नोति न संशयः। नदीस्नानं तु यः कुर्याद्वैशाखे विष्णुतत्परः ॥ ११ ॥ जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। समुद्रगानदीस्नानं कुर्यात्प्रातर्भगोदये ॥ १२ ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैस्तत्क्षणादेव मुच्यते। कुर्यादुषसि यः स्नानं सप्तगङ्गासु मानवः ॥ १३ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती ॥ १४ ॥ कावेरी नर्मदा वेणी सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः। देवखातेषु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाखमज्जनम् ॥ १५ ॥ जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। वैशाखे मासि संप्राप्ते यो वापीष्ववगाहनम् ॥ १६ ॥

भये पाप तत्काल नष्ट होय जाय हैं जो मनुष्य उषःकालमें सप्तगंगामें स्नान करे है ॥१३॥ उसके कोटिजन्मार्जित पाप तत्काल नष्ट हो जाय हैं, जाह्नवी, वृद्धगंगा, कालिन्दी, सरस्वती॥१४॥ कावेरी, नर्मदा और वेणी सप्तगंगा कहावे हैं, जो वैशाखके महीनेमें देवखात अर्थात् अमाकृत जलाशयोंमें स्नान करै है ॥१५॥ तौ वे जन्मसे लेकर उस समयतकके पापोंसे छूट जायहै, वैशाखके महीनामें जो मनुष्य बावडीमें स्नान करे है॥१६॥

उनके हे राजन्! बडे २ पाप दूर होजांय हैं जो घरसे, अन्यत्र गौके चरण रखनेकी जगहके समानभी जल भरा होय वौ ॥ १७ ॥ वहां गंगासे आदि लेकर सब नदी विवास करैं हैं यह बात निश्चय है जो इस बातको जाने है उनको संपूर्ण तीर्थोंसे अधिक फल होय है ॥१८॥ हे राजन्! रसोंमें दूध अधिक है और दूधसे दही अधिक है और दहीसे घृत उत्तम है ऐसेही महीनामें कार्तिकमास उत्तम है ॥१९॥ कार्तिकसे माघ अधिक है माघसे

प्रातः कुर्यान्महाराज महापातकनाशनम्। अपि गोष्पदमात्रेषु बहिःस्थेषु जलेषु च ॥ १७ ॥ तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गङ्गाद्या इति निश्चयः। इति जानन् समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम् ॥ १८ ॥ क्षीरं रसाधिकं क्षीरादधिकं दधि भूमिप। दध्नोधिकं घृतं यद्वदूर्जो मासोधिकस्तथा ॥ १९ ॥ कार्तिकादधिको माघो माघाद्वैशाख उत्तमः। तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्धते वटबीजवत् ॥ २० ॥ आढ्यों वाऽतिदरिद्रो वा परतंत्रोथवा नरः। यद्वस्तु लभते तेन न हातव्यं द्विजातये ॥ २१ ॥ कन्दं मूलं फलं शाकं लवणं गुडमेव च। कोलं पत्रं जलं तक्रमानन्त्यायोपकल्पते। नादत्तं लभते कापि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥ २२ ॥

वैशाख अधिक है इस महीनेमें जो धर्म किया जाय है वह बडके बीजकी तरह बढ है ॥ २० ॥ जो कोई धन संपन्न होय अथवा अत्यन्त दरिद्री होय अथवा पराधीन होय, उसे जो वस्तु मिलजाय वही ब्राह्मणके लिये देनी उचित है॥२१॥ कंद, मूल, फल, शाक, नमक, गुड, बेर, पत्र, जल और छाछ जो वस्तु दान करीजायगी वह अपरिमित होयजायगी विनादिये ब्रह्मादि देवताओंको भी नहीं मिलेगी ॥ २२ ॥

जो मनुष्य दान नहीं करे हैं वह दरिद्री होय है और दरिद्री होनेसे पाप करने लगे है और पाप करनेसे नरकमें जाकर पडे है इससे जो मनुष्य सुखकी इच्छा करे हैं उनको अवश्य दान करना चाहिये ॥ २३ ॥ जैसे कोई बड़ा भारी मकान बहुत सुन्दर और संपूर्ण सामग्रीनसे युक्त होय परन्तु जो उसपर छत्त न होय तौ शोभायमान नहीं लगे है ऐसेही जो मनुष्य और महीनोंमें सब प्रकारके धर्म करें हैं और वैशाखमें कुछ नहीं करें हैं उनका सब

दानेन हीनस्तु भवेदकिंचनो निष्किंचनत्वाच्च करोति पापम् । पापादवश्यं नरकं प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता सदा ॥ २३ ॥ यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा । मासेषु धर्मः सकलेष्वनुष्ठितो वैशाखहीनस्तु वृथैव याति॥२४॥ यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्तापि जीवत्पतिलक्षणा हि । क्रियापि साङ्गा सकलापि राजन् वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः ॥२५॥ दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण विना तथा क्रिया।शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वगुणोपपन्नम्॥२६॥ वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधुसेव्यं न फलाप्तिहेतुः । यद्वद्विभूषा सुकृता न शोभते वस्त्रेण हीना ललना सुरूपा ॥ २७ ॥

करना वृथाही है ॥ २४ ॥ जैसे संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त होनेपरभी पतिके विद्यमान होनेसे स्त्री लक्षणवती होतीहै इसीतरह सांगोपाङ्ग सम्पूर्ण किया वैशाखमें न करनेसे वृथाही होती हैं ॥२५॥ जैसे दयाहीन सम्पूर्ण गुण वृथा हैं ऐसेही वैशाखमें धर्म कियेविना सम्पूर्ण किया वृथा हैं ऐसेही उत्तम शाकभी विना नमकके स्वादिष्ठ नहीं लगे है ऐसेही जो ॥२६॥ पुण्य वैशाखमें नहीं किये जांय हैं वे अच्छी रीतिसे सेवनीय नहीं है न उनका कुछ

फल मिले है जैसे किसी रूपवती स्त्रीका अच्छा शृंगार होनेपरभी विनावस्त्र सुहावनी नहीं लगती है ॥ २७ ॥ ऐसेही मनुष्य अनेक प्रकारकी धर्मसंबंधी क्रिया करें हैं परन्तु वैशाखमें न करनेसे वे सब शोभाको प्राप्त नहीं होती हैं ॥ २८ ॥ इसलिये जैसे बने वैसे प्रयत्नपूर्वक वैशाखमें धर्म करना उचित है यह बात निश्चय है ॥ २९ ॥ मेषकी संक्रांतिमें मधुसूदन भगवान्‌का ध्यान करके प्रातःकाल स्नान करै और फिर विष्णुका पूजन करै, ऐसा न करनेपर नरक मिले है ॥ ३० ॥ वैशाखमास सद्यः फलदायक है और इसके मधुसूदन भगवान् देवता हैं, तीर्थयात्रा

क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुंभिर्न भासते तन्मधुमासहीनम् ॥ २८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि जन्तुनाधर्मो वैशाखमासे तु कर्तव्य इति निश्चयः ॥ २९ ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य मेषसंस्थे दिवाकरे । प्रातः स्नात्वार्चयेद्विष्णुमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३० ॥ वैशाखः सकलो मासो मधुसूदनदैवतः । तीर्थयात्रातपोयज्ञदानहोमफलाधिकः ॥ ३१ ॥ प्रार्थनामंत्रः—मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ । प्रातः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव ॥ ३२ ॥ अर्घ्यमंत्रः—वैशाखे मेषगे भानौ प्रातः स्नानपरायणः । अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन ॥ ३३ ॥

तप, यज्ञ, दान और होम आदिका फल भी इससे अधिक होता है ॥ ३१ ॥ नीचेके मंत्रसे मधुसूदन भगवान्‌की प्रार्थना करै हे मधुसूदन ! देवदेव ! हे माधव ! मैं वैशाखमें मेषकी संक्रांतिभर प्रातःकाल स्नान करनेकी इच्छा करूं हूं सो आप निर्विघ्न पूर्ण कर दीजिये ॥ ३२ ॥ नीचे लिखे मंत्रसे अर्घ्य दे । अर्घ्यमंत्र—हे मधुसूदन ! वैशाखमें मेषकी संक्रांतिमें मैं स्नानार्थ, आपको अर्घ्य देताहूं इसे सम्यक् ग्रहण कीजिये ॥ ३३ ॥

गंगादिक सब नदी, सब तीर्थ, सब जलाशय, मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करो और मुझपर प्रसन्न हो ॥ ३४ ॥ आप पापियोंके शासन करनेवाले उत्तम समदर्शी सबके नियन्ता हैं इसे मेरे दियेहुए अर्घ्यको ग्रहण करके यथोचित फल दीजिये ॥ ३५ ॥ इस तरह अर्घ्य देकर स्नान करै और फिर वस्त्र पहरकर आह्निक कर्मोंसे निवृत्त हो ॥ ३६ ॥ वैशाखमें होनेवाले फूलोंसे मधुसूदन भगवान्‌का पूजन करके वैशाखमाससंबंधी विष्णुभगवान्‌की

गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च ह्रदाश्च ये । प्रगृह्णन्तु मया दत्तमर्घ्यं सम्यक् प्रसीदथ ॥३४॥ ऋषभः पापिनां शास्ता त्वं यमः समदर्शनः।गृहाणार्घ्यं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥ ३५ ॥ इत्यर्घ्यांश्च समर्प्याथ पश्चात् स्नानं समाचरेत्।वाससी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥ ३६ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः । श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥ ३७ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । न जातु खिद्यते भूमौ न स्वर्गे न रसातले ॥ ३८ ॥ न गर्भे जायते क्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् । वैशाखे कांस्यभोजी यस्तथा चाश्रुतसत्कथः ॥ ३९ ॥ न स्नातो नापि दाता च नरकानेव गच्छति । ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथंचन ॥ ४० ॥

दिव्य कथाका श्रवण करै ॥ ३७ ॥ वह कोटि जन्मके संचित पापोंसे छूटकर मोक्ष पाता है, उसको पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल कहींभी खेद नहीं होय है ॥ ३८ ॥ वह कभी गर्भमें नहीं आवै है और न कभी अपनी माताका दूध पीवै है जो मनुष्य वैशाखके महीनेमें कांसीके पात्रमें भोजन करै है और जिसने उत्तम २ कथा श्रवण नहीं करी हैं ॥ ३९ ॥ न स्नानही किया न दानही किया है वह नरकहीमें जाकर पडता है, सहस्र ब्रह्महत्याका

पाप किसीतरह दूरभी होय जाता है॥४०॥परन्तु जो वैशाखमें स्नान नहीं करै है उसका पाप कभीभी दूर नहीं होता है, जो मनुष्य स्वाधीन शरीरसे स्वतंत्रवर्ती जलमें स्नान करै है ॥ ४१ ॥ और स्वाधीन जिह्वासे हरिः इन दो अक्षरका उच्चारण करै है, यदि वह नीच वैशाखमें प्रातःकाल स्नान नहीं करै है ॥४२॥ तौ उसे जीता हुआ ही मरा समझो इसमें कोई संदेह नहीं है, जिसने किसीप्रकारसेभी वैशाखके महीनेमें मधुसूदन भगवान्‌का

वैशाखे येन स्नातं तत्पापं नैव गच्छति । स्वाधीनेन च कायेन ह्यप्सु स्वातंत्र्यवर्तिषु ॥ ४१ ॥ स्वाधीनजीह्वयोच्चार्य हरि-रित्यक्षरद्वयम् । न कुर्याद्यदि वैशाखे प्रातः स्नानं नराधमः ॥ ४२ ॥ जीवन्नेव च पञ्चत्वमागतो नात्र संशयः । येन केनाप्युपायेन माधवे मधुसूदनम् ॥४३॥ नार्चयेद्यदि मूढात्मा सौकरीं योनिमाप्नुयात् । योऽर्चयेत्तुलसीपत्रैर्वैशाखे मधुसूदनम् ॥४४॥ नृपो भूत्वा सार्वभौमः कोटिजन्मसु भोगवान् । पश्चात्कोटिकुलैर्युक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ छ ॥

पूजन ॥ ४३ ॥ नहीं किया है वह मूढबुद्धि सूकरकी योनि पावै है, जो तुलसीदलसे वैशाखमें मधुसूदन भगवान्‌का पूजन करै है ॥ ४४ ॥ वह सार्वभौम राजा होकर कोटि जन्मतक अनेक भोगोंको भोगता है, पीछे अपने करोड कुलोंको लेकर विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्त होय है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नरदाम्बरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारदजी कहने लगे हे राजन् ! जैसे वैशाखमास संपूर्ण धर्मोंसे, सब प्रकारके तपोंसे सब महीनोंसे संपूर्ण दानोंसे अधिक हुआ है ॥ १ ॥ सो सब हे महाप्राज्ञ ! हम तेरे सामने कहें हैं तू एकाग्रचित्त करके सुन, जब सब युगोंका अन्त होय है तब सब देवताओंके राजा शेषशायी विष्णुभगवान् ॥२॥ संपूर्ण लोक और जीवोंको अपने उदरमें समेटकर प्रलयके समुद्रमें शयन करें हैं और योगमायाके प्रतापसे अनेक एकताको प्राप्त होय है ॥ ३ ॥

नारद उवाच ॥ वैशाखः सर्वधर्मेभ्यस्तपोधर्मेभ्य एव च । कथं स सर्वमासेभ्यो दानेभ्योप्यधिको भवेत् ॥ १ ॥ तद्वक्ष्यामि महाप्राज्ञ शृणु चैकमना भव । कल्पान्ते देवराड्विष्णुः शेषशायी महाप्रभुः ॥ २ ॥ कुक्षिस्थलोकसङ्घोयं स शेते प्रलयार्णवे । अनेको ह्येकतां प्राप्य भूतिभिर्योगमायया ॥ ३ ॥ निमेषस्यावसाने तु श्रुतिभिर्बोधितस्ततः । कुक्षिस्थजीवसङ्घानां रक्षां चक्रे दयानिधिः ॥ ४ ॥ तत्तत्कर्मफलप्राप्त्यै सृज्यान्स्रष्टुं मनो दधे । तस्य नाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम् ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम् । तस्मिन् ससर्ज भगवान् भुवनानि चतुर्दश ॥ ६ ॥

एवं एक निमेषके व्यतीत होनेपर वेदोंने प्रार्थना करके भगवान्को जगाया तब भगवान्ने अपने उदरमें स्थित जीवोंकी रक्षा करी ॥४॥ और उन जीवोंको अपने २ कर्मोंका फल देनेके लिये सृष्टिके रचनेका मनमें विचार किया, तब विष्णुभगवान्की नाभिसे त्रिलोकीका आधारस्वरूप सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ ॥५॥ उस कमलमेंसे विराट् पुरुषरूप ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, उस विराट् पुरुषमें भगवान्ने चौदह भुवन उत्पन्न किये ॥ ६ ॥

जिनके भिन्न २ प्रकारके कर्म और आशय हैं ऐसे अनेकों प्राणियोंके समूह रचे, फिर सत, रज, तम, तीनों गुण, प्रकृति, मर्य्यादा और भुवनोंके स्वामी रचे ॥७॥ तत्पश्चात् वर्णाश्रमके विभाग करके धर्मकी कल्पना करते भये चारों वेद तंत्र स्मृति पुराण इतिहास रचकर धर्मकी रक्षाके निमित्त इनके प्रवर्तक ऋषि प्रकट किये ॥८॥ ९ ॥ इन ऋषियोंने अलग अलग वर्णोंके अलग अलग धर्म प्रवृत्त किये उनपर संपूर्ण प्रजा श्रद्धा करने लगी ॥ १० ॥

भिन्नकर्माशयप्राणिसङ्घांश्च विविधान् बहून् । त्रिगुणान् प्रकृतिं लोके मर्यादाश्चाधिपांस्तथा ॥ ७ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च धर्मं क्लृप्तिं च सोऽकरोत् । वेदैश्चतुर्भिस्तन्त्रैश्च सहितान् स्मृतिभिस्तथा ॥ ८ ॥ पुराणैरितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः । ऋषीन् प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः ॥ ९ ॥ तैः प्रवर्तितधर्मास्तु वर्णाश्रमविभागजाः । प्रजाः श्रद्दधिरे सर्वाः स्वोचितान् विष्णुतो षदान् ॥ १० ॥ तांस्तु प्रवर्तमानास्तु स्वाश्रमान् द्रष्टुमीश्वरः । हृदिस्थोऽप्यव्ययः साक्षाद्विभीषार्थं परीक्षया ॥ ११ ॥ अनूनान् कुशलान् यत्र धर्मान् कुर्वन्ति वै प्रजाः । स कालः को भवेद्विद्वानिति तं चिन्तयन् प्रभुः ॥ १२ ॥ वर्षाकालो मया सृष्टः सीदन्त्यस्ता इमाः प्रजाः । तत्र नूनं न कुर्वन्ति धर्मान्पङ्काद्युपद्रुताः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण प्रजा अपने अपने आश्रमोचित धर्मोंमें प्रवृत्त है वा नहीं यह देखनेके लिये साक्षात् अविनाशी सर्वान्तर्यामी भगवान् डर दिखानेके लिये और परीक्षाके निमित्त आये ॥११॥ कि प्रजा सम्पूर्ण धर्मोंको किस समयमें करै ऐसे भगवान् चिन्ता करने लगे ॥ १२ ॥ यह वर्षाकाल मैंने निर्माण कियाहै इसमें सब प्रजा दुःखी है और कीचड आदिमें फँस रही है जिससे सम्पूर्ण धर्मोंको नहीं करै है ॥ १३ ॥

यह देख क्रोध उत्पन्न होय है मन प्रसन्न नहीं है मेरे देखते दुःख नहीं पावें अतएव उन्हें देखूं ॥१४॥ शरदकालमें सब खेत क्यारमें लग रहे हैं इससे धर्मको पूर्ण रीतिसे नहीं कर सके हैं कोई तो पक्कफलकी अपेक्षा कर रहे हैं कोई वर्षासे पीड़ित हैं ॥१५॥ कोई शीतसे दुःखी हैं अतएव धर्म नहीं करें हैं इन्हें देख मुझे रोष उत्पन्न होय है इनकी विपरीत बुद्धि देखकर मोहिं संतोष नहीं है ॥१६॥ हेमन्तऋतुमें सरदीके मारे कोई लोग प्रातः-

तान् दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्न मे भवेत्। मयेक्षिता न सीदन्तु तस्मात्तानवलोकये ॥ १४ ॥ शरद्यदि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते। केचित्पक्कफलासक्ताः केचिद् वृष्टिभिरर्दिताः ॥ १५ ॥ केचिच्छीतार्दिता राजंस्तान् दृष्ट्वा रोष एव मे। वैगुण्यं पश्यमानस्य न मे तोषोऽभिजायते ॥ १६ ॥ उत्थापनं तु नेष्यन्ति प्रातर्हेमन्त आगते। कोपो मेऽनुत्थितान् दृष्ट्वा प्रातः सूर्योदये सति ॥ १७ ॥ शिशिरेऽपि तथैवार्ताः प्रातःकाल इमाः प्रजाः। तथा पक्कफलादानसक्ता ह्यनिशमञ्जसा ॥ १८ ॥ पुनः शीतार्दिताः प्रातः स्नानार्थमिति चिन्तिताः। तेषां तु कर्मलोपः स्यान्नैव पूर्तिः कथञ्चन ॥ १९ ॥ प्रेक्षायाः समयो नाय मितिचिन्ताकुलो विभुः। वसन्तसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम् ॥ २० ॥

काल नहीं उठें हैं, जब वे सूर्योदयसे पहिले नहीं उठें हैं इन्हें देखके क्रोध उत्पन्न होय है ॥१७॥ शिशिर ऋतुमेंभी प्रातःकालके समय शीतसे पीडित रहे है तथा पक्क फलोंके ग्रहणमें निरन्तर आसक्त रहे है ॥१८॥ फिर जो मनुष्य जाडेके डरके मारे प्रातःकाल स्नान करनेके लिये केवल विचारही किया करे हैं उनके शुभ कर्म लुप्त होय जाय हैं जिनकी पूर्ति कभी नहीं होय है ॥ १९ ॥ यह समय प्रेक्षणका नहीं है ऐसा विचार करके भगवान्

इस वसंत ऋतुको संपूर्ण पातकोंको निवारण करनेवाली मानते हुए ॥२०॥ स्नान, दान, यज्ञ, क्रिया भोग और सब प्रकारके धर्मोंका साधन करनेके लिये यह ऋतु बडी अनुकूल है ॥२१॥ इस ऋतुमें धनवान् सब वस्तुओंको विनाप्रयासही प्राप्त करे है जिस किसी रीतिसे द्रव्यद्वारा देहधारियोंकी तुष्टि होयजाय है ॥ २२ ॥ जो विष्णुभगवान्के आधारभूत प्राणी हैं उनके धर्मका साधन वही द्रव्य हैं, वसंतऋतुमें संपूर्ण द्रव्य प्राणियोंके सुख-

स्नाने दाने तथा यागे क्रियायां भोग एव च । नानाधर्मविधाने च ह्यनुकूलो ह्ययमृतुः ॥ २१ ॥ अप्रयासेन लभ्यानि द्रव्याण्यसुभृतां ध्रुवम् । येन केन च द्रव्येण तुष्टिस्तत्तनुभृतां भवेत् ॥ २२ ॥ विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्यं धर्मसाधनम् । वसन्ते सकलं द्रव्यं प्राणिनां तु सुखावहम् ॥ २३ ॥ दानयोग्यं धर्मयोग्यं भोगयोग्यं तु सर्वशः । निर्धनानां तु पङ्ग्वादिविकलानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥ द्रव्याणि च सुलभ्यानि जलादीनि न संशयः । द्रव्यैरेतैः स्वात्महितं धर्मं कुर्वन्ति मत्प्रियाः ॥ २५ ॥ पत्रैः पुष्पैः फलैरन्यैः शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः । स्रक्ताम्बूलैश्चन्दनाद्यैः पादप्रक्षालनादिभिः ॥ २६ ॥ प्रश्रयाद्यैरहं तेषां वरदोऽहमितीरयन् । सञ्चिन्त्य भगवान्विष्णुः प्रतस्थे रमया सह ॥ २७ ॥

दायक होते हैं ॥२३॥ दानयोग्य, धर्मयोग्य और सब प्रकारके धर्मोंको भोगने योग्य निर्धन, लूले, लंगडे, व्याकुल और महात्माओंको ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण द्रव्य और जलादिक सुलभ हैं इसमें संशय नहीं है, मेरे प्रियजन इन द्रव्योंसे अपनी आत्माका हित साधन करते हैं॥२५॥ पत्र, पुष्प, फल, शाकादि, प्यारे वचन, माला, तांबूल, चन्दन, पादप्रक्षालन ॥२६॥ और विनयपूर्वक साधन करते हैं और मैं उनको वर देताहूं यह कहतेहुए विचार

करके विष्णुभगवान् लक्ष्मीसहित ॥२७॥ चारों ओर वनोंके देखते चले जिनमें अनेक प्रकारके फूल खिल रहे हैं, जिनमें हृष्ट पुष्ट प्राणी रहे हैं और मतवाले भ्रमर और पक्षी विचर रहे हैं ॥ २८ ॥ ग्रामनिवासियोंके बहुमूल्य आश्रमोंके आंगण उद्यान और स्थल लक्ष्मीजीको दिखाने लगे ॥ २९ ॥ देवता, मुनीश्वर, सिद्ध, चारण, गंधर्व, किन्नर,नाग, राक्षस स्तुति करे हैं ॥ ३० ॥ ऐसे वर्णाश्रमवासियोंके घरोंमें जायकर मीनकी संक्रां

वनानि सर्वतः पश्यन् विकसत्कुसुमानि च । हृष्टपुष्टजनाकीर्णं मत्तालिद्विजसेवितम् ॥ २८ ॥ आश्रमाणां महार्हाणां वनग्राम निवासिनाम् । प्राङ्गाणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च ॥२९॥ रमायै दर्शयन्विष्णुः सहदेवैर्मुनीश्वरैः । सिद्धचारणग न्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः ॥ ३० ॥ स्तूयमानोऽभ्यगाद्गेहान्वर्णाश्रमनिवासिनाम् । मीनादिकर्कटान्तं वै स तिष्ठन् रमया सुरैः ॥३१॥ सार्द्धं प्रतीक्ष्य पुरुषान् कृताकृतसपर्यया । तत्र धर्मवतां पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान् ॥ ३२ ॥ मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायु र्धनादिकम् । यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्यां परमात्मनः ॥ ३३ ॥ तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनां यत्र वै विभुः । मासेष्वन्येषु यज्जातं कर्मलोपं सहिष्यति ॥ ३४ ॥

तिके कर्ककी संक्रांतिपर्य्यंत लक्ष्मी और सब देवताओंसहित ॥ ३१ ॥ निवास करके पुरुषोंके कर्त्तव्याकर्त्तव्यकर्मोंका निरीक्षण करें हैं ॥ जो धर्मा चरणवाले पुरुष हैं उन्हें अभीष्ट मनोरथ देते हैं ॥ ३२ ॥ और जो मदोन्मत्त होय रहे हैं उनकी आयु और धनादिकको हरे हैं. जो वैशाखमें भगवा न्की पूजा करें हैं तथा चलमूर्ति रूप साधुमहात्माओंकी सेवा करे हैं और अन्य महीनोंमें नहीं करें हैं उनके अपराधको भगवान् क्षमा करते हैं ॥३३॥३४॥

जैसे अपने देशमें आयेहुए राजाको देखकर उस देश निवासी मनुष्य बहुमूल्य भेंट पूजा लेकर राजाकी पूजा करें हैं, तब राजा पूजाके आकारादि द्वारा यह जान लेय है कि अमुककी सेवा पूरी है अमुकको न्यून है, जो पूजा अधिक होय तो प्रसन्न होय कर निश्चयही उसे मनवांछित फल देय है ॥३५॥ ॥ ३६ ॥ और जिनकी पूजा सेवा ठीक नहीं हैं उन्हें दंड देय हैं ऐसोही विष्णुभगवान् वैशाखमासमें ॥ ३७ ॥ जो अच्छो रीतिसे पूजा करेहैं उसे

यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जानपदाः प्रजाः । यदि तं चोपतिष्ठन्ति प्रश्रयाद्यैर्महार्हणैः ॥ ३५ ॥ तदाकारादिकं न्यूनं पूर्णं जानाति पार्थिवः । पुनरप्यधिकं चेष्टं तुष्टो दास्यति निश्चितम् ॥ ३६ ॥ तदा त्वकृतपूजानां दण्डं तेषां करोति च । तथा विष्णुः स्वकीयानां वैशाखे माधवागमे ॥३७॥ सपर्यां कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान् । अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनि हरत्यलम् ॥३८॥ धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः । परीक्षाकाल एवायं तस्मान्मासोत्तमो ह्ययम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मनवांछित फल देंय और जो ठीक २ नहीं करे हैं उनके धनादिको हर लेय है ॥ ३८ ॥ धर्मके रक्षक देवदेव शार्ङ्गपाणी विष्णुभगवान् इस महीनेमें प्राणीनकी परीक्षा करे हैं इससे यह महीना सबमें उत्तम है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे वैशाखश्रेष्ठत्व निरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नारदजी बोले हे राजन् ! वैशाखके महीनामें मार्ग चलनेसे व्याकुल और तृषासे पीड़ित मनुष्योंको जो जलका दान नहीं करै है वह पक्षीकी योनि पावै है ॥१॥ इस बातके दृष्टान्तमें हम ब्राह्मण और घरकी छिपकलीका प्राचीन इतिहास कहे हैं यह परम अद्भुत संवाद है ॥ २ ॥ पुराकालमें इक्ष्वाकुके वंशमें हेमांग नाम एक राजा हुआ था, इसकी ब्राह्मणोंमें बडी भक्ति थी यह अनिन्दक, जितशत्रु और जितेन्द्रिय था ॥३॥ पृथ्वीमें जितने वालूके

नारद उवाच ॥ वैशाखेऽध्वगतप्तानां तृषार्त्तानां महीपते।जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विप्रस्य गृहगोधायाः संवादं परमाद्भुतम् ॥ २ ॥ पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्ग इति भूमिपः । ब्रह्मण्यश्च बदान्यश्च जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ यावन्त्यो भूमिकणिका यावन्तो जलबिन्दवः । यावन्त्युडूनि गगने तावतीरददात्स गाः ॥ ४ ॥ येनेष्टं यज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती शुभा । गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥ ५ ॥ तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् । तेनादत्तजलं चैकं सुखलभ्यधिया नृप ॥ ६ ॥

कण हैं, जितने जलके बिंदु हैं, जितने आकाशमें तारागण हैं उतनीही गौ इस राजाने दान करी ॥४॥ इस राजाने बहुतसे यज्ञ किये उन यज्ञोंकी दाभसे पृथ्वीमें कुशाही कुशा दिखाई देनेलगीं तथा गौ, भूमि, तिल और सुवर्णके दानसे बहुतसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ कोई ऐसा दान नहीं था जो उसने नहीं किया, परन्तु हे राजन् ! सुखकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उस राजाने एक जलदान नहीं किया ॥ ६ ॥

ब्रह्मपुत्र महात्मा वशिष्ठजीने उसे ज्ञानभी कराए कि जलदान करो परन्तु उसने दुर्बुद्धि और हेतुवादसे कहा कि जल तो विना मूल्यही मिलता है इससे जलदान करनेवालेको क्या फल मिले है ऐसी २ अनेक बातें करीं और ब्राह्मणके निमित्त जलका दान नहीं किया और कहनेलगा कि जो वस्तु अलभ्य हैं उन्हींके दान करनेसे पुण्य मिलता है और यही योग्यभी है ॥ ७ ॥ ८ ॥ तथा वह राजा लूले, लंगडे, दरिद्री और जीवीकाहीन ब्राह्मणोंकी सेवा करताथा तथा वेदपाठी, तत्त्वज्ञानी और ब्रह्मवादियोंकी पूजा नहीं करताथा॥९॥ कारण यह है कि वह राजा यह कहा करता था

बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेन महात्मना । अमोल्यं सर्वतो लभ्यं तद्दाता किं फलं लभेत् ॥ ७ ॥ दुर्बुध्या हेतुवादैश्च न जलं दत्तवान्द्विजे । अलभ्यदाने पुण्यं स्यादितिवाक्ये सुयुक्तिमत् ॥ ८ ॥ स आनर्च द्विजान् व्यङ्गान् दरिद्रान् वृत्तिकर्शितान् । नार्चयच्छ्रोत्रियान् विप्रांस्तत्त्वज्ञान् ब्रह्मवादिनः ॥ ९ ॥ प्रख्यातान् पूजयिष्यन्ति सर्वे लोका महार्हणाः ॥ अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥ दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मे दयास्पदाः । इति दुर्धीरपात्रेषु दत्तवान् किमपि स्वयम् ॥ ११ ॥ तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु । एकजन्मनि गृध्रत्वं श्वाभवत् सप्तजन्मसु ॥ १२ ॥

कि विख्यात ब्राह्मणोंकी पूजा सेवा तो सबही करें हैं, परन्तु अनाथ, विनापढ़े लिखे, लूले लंगडे, ब्राह्मण ॥ १० ॥ और दरिद्रियोंकी गति बडी खराब है अतएव ऐसेही लोग मेरी दयाके पात्र हैं ऐसे वह दुर्बुद्धि कुपात्रके निमित्त दान देता रहा ॥ ११ ॥ उसकी बडे भारी दोषके कारण तीन जन्म पर्य्यंत उसने चातककी योनि पाई, एक जन्ममें गिद्ध बना और फिर सात जन्मतक कुत्ताकी योनिमें प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥

फिर हे राजन् ! यह राजाके घरमें छिपकलीकी योनिमें जायकर पड़ा, उस राजाका नाम श्रुतकीर्ति था और मिथिलापुरीका राजा था ॥१३॥ वह घरके दरवाजेकी चौकटके ऊपर कीडाओंको भक्षण करती हुई सत्तासी वर्षतक वहां रही ॥ १४ ॥ एक दिन दैवयोगसे मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रुतदेवनामक ऋषि मध्याह्नकालमें मार्गसे व्यथित मिथिलापतिके घर चले आये ॥ १५ ॥ वह आये हुये ऋषिको देख अत्यन्त प्रसन्न होय

पश्चान्नृपगृहे जातो भूपोऽयं गृहगोधिका । श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्य मिथिलाधिपतेर्नृप ॥ १३ ॥ गृहद्वारप्रतोल्यां च वर्तते कीटकाशना । सप्ताशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥ १४ ॥ विदेहाधिपतेर्गेहे कदाचिद्दृषिसत्तमः । श्रुतदेव इति ख्यातः श्रान्तो मध्याह्न आगतः ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः । मधुपर्कादिभिः पूज्य तस्य पादावनेजनीः ॥१६॥ आपो मूर्ध्नावहत् क्षिप्रं तदोत्सिक्तैश्च बिन्दुभिः । दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥ १७ ॥ सद्योजातस्मृतिरभूत्स्मृतकर्मातिदुःखिता । त्राहित्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागतम् ॥ १८ ॥ तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत् । कुतः क्रोशसि गोध त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ १९ ॥

सहसा उठकर बडे आदर सत्कारसे मधुपर्कादिसे पूजनकर चरण धोनेमें प्रवृत्त हुआ ॥१६॥ और उस चरणोदकको अपने मस्तकपर छिडकने लगा, तब दैवयोगसे एक बूँद जल उस गृहगोधापर गिर पड़ा ॥१७॥ जलकी बूँद पडतेही उसे ज्ञान् होगया और नानायोनियोंमें दुःखोंसे दुःखित हो घर आये ब्राह्मणसे हायहायकर कहने लगा कि हे ब्राह्मन् ! मेरी रक्षा करो २ ॥ १८ ॥ ऐसे एक कीडाका शब्द सुनकर ब्राह्मणको बडा आश्चर्य हुआ

और कहनेलगा—हे गोधा ! तूं कहा है क्यों विलाप करैहै, तेरी यह दशा कौन कर्मसे भई है ॥ १९ ॥ तूं देवता कि पुरुष है कि कोई राजा है अथवा ब्राह्मण है, हे महाभाग ! तूं कौनहै कह तौ मैं आजही तेरा उद्धार करूंगा ॥ २० ॥ ऋषिकी यह बात सुन वह राजा महाबुद्धिमान् श्रुतदेवजीसे कहने लगा कि हे ब्रह्मन् ! मेरा जन्म इक्ष्वाकुकुलमें हुआथा और मैं वेदादि शास्त्रोंका बडा ज्ञाता था ॥२१॥ पृथ्वीमें जितने रजके कणहैं,

त्वं देवः पुरुषः कश्चिन्नृपो वाथ द्विजोऽथवा । कस्त्व ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥ २० ॥ इत्युक्तः सनृपः प्राह श्रुतदेवं माहामतिम् । अहमिक्ष्वाकुकुलजो वेदशास्त्रविशारदः ॥२१॥ यावन्त्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः । यावन्त्युडूनि गगने तावतीरददं स्म गाः ॥ २२ ॥ सर्वे यज्ञा मया चेष्टाः पूर्तान्याचरितानि मे । दानान्यपि च दत्तानि धर्माद्राज्यं स्वनुष्ठितम्॥२३॥ तथापि दुर्गतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना । त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥२४॥ सप्तजन्मसु श्वानत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज । सिञ्चतानेन भूपेन त्वत्तः पादावनेजनीः ॥ २५ ॥ बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः क्षिप्तोऽहं कथंचन । तेन जन्मस्मृतिरभूत्सर्वं पाप्मा हतश्च मे ॥ २६ ॥

जितने जलके बिंदु हैं जितने आकाशमें तारागण हैं, उतनीही गौ मैंने दानकरीं॥२२॥मैंने संपूर्ण यज्ञ किये, वापीकूप और तालाब बनवाये,अनेकों दान दिये और धर्मपूर्वक राज्यभी किया ॥२३॥ तौभी मेरी ऐसी दुर्गति हुई और मुझे स्वर्ग न मिला, तीन जन्मतक मुझे चातककी योनि मिली और एक जन्ममें गिद्ध हुआ सातजन्म पर्य्यन्त कुत्तेकी योनि पाई और अब यह राजा आपके चरणोदकको छिडक रहाथा तब एकबूंद उछलकर

मेरे ऊपर जायपडी उस छीटाके पडनेसे मुझे पूर्वजन्मका स्मरण होआया है और मेरे सब पाप दूर होय गयेहैं ॥ २५–२६ ॥ हे द्विजवर ! अट्ठाईस जन्मतक मुझे छिपकलीकी योनि भुगतनी पडैगी, तरहतरहकी दैवी सृष्टि दिखाई पडै है अब मैं इन जन्मोंसे डरूहूं ॥२७॥ हेद्विज ! कौन कारणसे मेरी यह दशा हुई है सो विस्तारपूर्वक कहिये ऐसे कहनेपर वह द्विज ज्ञानचक्षुद्वारा सब वृत्तान्त जानकर कहने लगे ॥२८॥ हे राजन् ! मैं तेरी इन बुरी

गोधाजन्मनि भाव्यानि ह्यष्टाविंशतिमे द्विज । दृश्यन्ते दैवसृष्टानि बिभ्येऽतो जन्मभिर्भृशम् ॥ २७ ॥ न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद । इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञात्वा विज्ञानचक्षुषा ॥ २८ ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम् । न जलं तु त्वया दत्तं वैशाखे माधवप्रिये ॥ २९ ॥ तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम् । नाध्वगानां द्विजातीनां घर्मकालेऽप्यजानता ॥ ३० ॥ तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे प्रतिदत्तवान् । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ३१ ॥ बहुधा वर्णितस्यापि सौगन्ध्याद्युतस्य च । कण्टकान्वितवृक्षस्य न कुर्वन्ति समर्चनम् ॥ ३२ ॥

योनिका कारण कहूं हूं तूं चित्त लगायकर सुन तैंने माधवभगवान्‌के प्यारे वैशाखमासमें जलका दान नहीं किया ॥२९॥ तैंने जलको सुलभ समझकर यह निश्चय करलिया कि यह अमूल्य है,मार्गमें चलनेवाले और धूपसे पीडित ब्राह्मणोंको अज्ञानसे जलका दान नहीं किया ॥३०॥ तथा पात्रोंको छोडकर कुपात्रोंको दान दिया, जलतीहुई अग्निको छोडकर कोईभी राखमें हवन करें हैं ? ॥ ३१ ॥ बहुधा वर्णित सुगंधादिकसे युक्त कांटेदार

वृक्षका कोइभी पूजन नहीं करैहै ॥३२॥ सम्पूर्ण वृक्षोंमें पीपलहीकी पूजा होयहै, तुलसीके वृक्षको छोडकर कटेरीका पूजन क्यों नहीं करै ॥३३॥ पूज्यताके विषयमें अनाथत्वको प्रयोजकता नहीं है केवल लूले लंगडेही दयाके पात्र हैं पूज्य नहीं हैं ॥ ३४ ॥ तपस्वी, ज्ञानी, वेदादिशास्त्रोंके जाननेवाले ये विष्णु भगवान्के स्वरूप हैं अत एव सदा पूज्य हैं ॥३५॥ इनमेंभी ज्ञानी ब्राह्मण विष्णुभगवान्के सदैवही अत्यन्त प्यारे हैं ॥३६॥

विशिष्टानां पादपानामश्वत्थः सेव्यतां गतः । तुलसीं तु समुत्सृज्य बृहती पूज्यते न किम् ॥३३॥ अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रियो जगतामियात् । पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ ३४ ॥ तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रविशारदाः । विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥ ३५ ॥ तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं विप्रा विष्णोः सदैव हि । ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः ॥ ३६ ॥ तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः । अवज्ञा साधुवृत्तानामिहामुत्र च दुःखदा ॥ ३७ ॥ सेवा वै महतां पुंसां पुमर्थानां हि कारणम् । कोटयोऽप्यन्धजातीनां न पश्यन्ति यथायथम् ॥३८॥ एवं मन्दाशयानां तु सङ्गतिर्नार्थदा भवेत् । न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ३९ ॥

इसी कारणसे ज्ञानीही सदा पूज्यहैं, पूज्योंमेंभी अधिक पूज्यतम हैं सो साधु महत्माओंकी अवज्ञा है वह इस लोक और परलोक दोनोंमें दुःखदाई है ॥३७॥ महत्पुरुषोंकी सेवाही पुरुषार्थचतुष्टयका कारण है ऐसेही करोडों अंधजाती कर्त्तव्याकर्त्तव्यको नहीं देखे हैं ॥ ३८ ॥ ऐसेही मंद हैं आशय जिनके उनकी संगतिसे कुछ फल नहीं मिलैहै, ऐसेही जलमय तीर्थ और मृत्तिका अथवा पाषाणनिर्मित देवतानसेभी कुछ लाभ तत्काल नहीं

होयहै ॥ ३९ ॥ ये तौ बहुतकालमें पवित्र करेहै और साधुमहात्मा दर्शनहीसे पवित्र करदेयहै, साधुसेवासे कोईभी सुशिक्षित पुरुष दुःखी नहीं होयहै ॥ ४० ॥ जैसे अमृत पान करनेसे जन्म, मरण, वृद्धावस्था आदि दुःख नहीं देहैं । तैंने जलदान नहीं किया, न साधुओंकी सेवा करी ॥ ४१ ॥ हे इक्ष्वाकुनन्दन ! इसीसे तेरी दुर्गति हुईहै. वैशाखमें जो मैंने पुण्य कियेहैं वह तेरी शांतिके लिये तुझे दूँगा ॥ ४२ ॥

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः । न साधुसेवनात् क्वापि सीदन्तेऽतः सुशिक्षिताः ॥ ४० ॥ जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधया प्यायिता यथा । न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ॥ ४१ ॥ तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन । वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शान्तये ॥ ४२ ॥ भूतं भव्यं भवेद्येन कर्मजातं विजेष्यसि । इत्युक्त्वाप उपस्पृश्या ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥ यदा दत्तं ब्राह्मणेन स्नानं चैकदिने कृतम् । तेन ध्वस्ताखिलाघस्तु त्यक्त्वा तां गृहगोधिकाम् ॥ ४४ ॥ दिव्यं विमान मारुह्य दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः । पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे ॥ ४५ ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च । अनुज्ञातो ययौ राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ ४६ ॥

इसके प्रतापसे भूत भविष्यत् और वर्त्तमान कर्मोंके संस्कार दूर होजायँगे ऐसे कह जलका स्पर्शकर सर्वोत्तम पुण्यका फल देदिया ॥ ४३ ॥ जब उस ब्राह्मणने वैशाखमें एक दिन स्नान कियेका फल उसे देदिया तब उसके सम्पूर्ण पाप दूर होगये और गोधाकी योनिको त्यागकर ॥४४॥ दिव्य विमानपर चढ दिव्य माला, वस्त्र और आभूषण पहर मिथिलापुरके राजाके महलके भीतर सब प्राणियोंके देखते देखते ॥४५॥ हाथ जोड

परिक्रमा दे नमस्कारकर आज्ञा ले स्वर्गको चलागया और देवता लोग स्तुति करनेलगे ॥ ४६ ॥ वहां दशसहस्र वर्षपर्य्यन्त अनेक भोगोंको भोगकर वही राजा इक्ष्वाकुके वंशमें महाप्रभावशाली काकुत्स्थ होता हुआ ॥ ४७ ॥ और सप्तद्वीपवती पृथ्वीका पालन करता हुआ बड़ा ब्रह्मण्य, साधुसेवी इन्द्रका सखा विष्णुका अंश होता हुआ ॥ ४८ ॥ तब वसिष्ठजीने वैशाखमासमें कर्त्तव्यधर्म सब सुनाये जिनके करनेसे उसके सब अमंगल दूर होगये ॥ ४९ ॥ और दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति कर विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्त हुआ इसलिये यह वैशाख सम्पूर्ण शुभफलोंका दाता है, इसमें जो

तत्र भुक्त्वा महाभोगानृवर्षायुतमतन्द्रितः । स एव चेक्ष्वाकुकुले काकुत्स्थोऽभून्महाप्रभुः ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपपतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः । देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः ॥४८ ॥ बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान्मनोरमान् । अनुष्ठायाखिलान् धर्मास्तेन ध्वस्ताखिलाशुभः ॥ ४९ ॥ दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् । वैशाखः शुभदस्तस्मात् पुंभिः सर्वै रनुष्ठितः ॥ ५० ॥ आयुर्यशः पुष्टिदोऽयं महापापौघनाशनः । पुमर्थानां निदानं च विष्णुः प्रीणात्यनेन तु ॥ ५१ ॥ चातुर्वर्ण्यनरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः । अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे॥५२॥इति श्रीस्कन्द०गृहगोधिकाख्यानंनाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

मनुष्य यथोक्त धर्म करै ॥ ५० ॥ उनकी आयु और यश बढै हैं संपूर्ण पाप दूर होय जाय हैं पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति होय है और विष्णुभगवान् प्रसन्न होय है ॥ ५१ ॥ अतएव ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ये चारों वर्ण ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी इन चारों आश्रमवाले मनुष्योंको वैशाखमासके कहे हुए कर्म करने चाहिये ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कं० वैशा० नारदां० गृहगोधिकाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले कि–धर्मात्मा मिथिलापुरीका राजा इस अद्भुतचरित्रको देखकर आश्चर्यसे हाथ जोड सुखपूर्वक बैठे हुए ब्राह्मणसे यह कहने लगा ॥१॥ मैथिल बोला–हे महात्मन् ! मैंने यह बडी अद्भुत बात देखी तथा महात्माओंका बडा आश्चर्यमय चरित्रभी देखा। जिसे धर्मके प्रतापसे इक्ष्वाकुवंशीय राजा मोक्ष पागया ॥२॥ इस धर्मको विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी बडी अभिलाषा है हे विद्वन् ! आप कृपाकरके मेरे सामने विस्तार

नारद उवाच ॥ राजा तदद्भुतं दृष्ट्वा मैथिलो धर्मवित्तमः। कृताञ्जलिः सुखासीनं विस्मितो वाक्यमब्रवीत ॥१॥ मैथिल उवाच ॥ दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितं तथा। येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ २ ॥ तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे। मह्यं श्रद्धावते विद्वन् कृपया विस्तराद्वद ॥३॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महामनाः।साधु साध्विति संभाष्य व्याजहार नृपोत्तमम् ॥ ४ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम। वासुदेवप्रियान् धर्माञ्छ्रोतुं यस्मान्मतिस्तव ॥ ५ ॥ बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः। वासुदेवकथालापे मतिर्नैवोपजायते ॥ ६ ॥

पूर्वक कहिये इसके सुननेकी मेरी बडी अभिलाषा है ॥ ३ ॥ राजाके इस प्रश्नको सुनकर महात्मा श्रुतदेव धन्य है धन्य है यह कहकर राजाकी प्रशंसा करनेलगे ॥४॥ श्रुतदेव बोले कि–हे राजर्षिसत्तम ! तेरी बुद्धि बड़ी ठीक है जिसके कारण वासुदेवभगवान्के प्यारे धर्मोंको पूछनेके लिये तेरी लालसा हुई है ॥ ५ ॥ बिना बहुतजन्मके संचितकर्मोंके किसी प्राणीकी बुद्धि वासुदेव भगवान्की कथावार्तामें प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ६ ॥

युवावस्थामें इतना बडा राज्य पायकर जो तेरी ऐसी मति होगई है इससे मैं तुझे साधुओंमें श्रेष्ठ शुद्ध भागवत मानताहूं ॥ ७ ॥ अतएव हे सौम्य ! शुभ भागवतधर्मोंका वर्णन मैं तेरे सामने करूं हूं इनको जान लेनेसे प्राणी संसारके जन्मादि बन्धनोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ जैसे शौच, स्नान, संध्या, तर्पण, अग्निहोत्र और श्राद्धादिक कर्म हैं वैसेही वैशाखसंबंधी सब कर्म हैं॥९॥वैशाखमें जो वैशाखके धर्मोंको नहीं करता है वह स्वर्गको नहीं जाता

यूने राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी । शुद्धं भागवतं मन्ये तेन त्वां साधुसत्तमम् ॥ ७ ॥ तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य धर्मान् भागवतान्छुभान् । यान्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ८ ॥ यथा शौचं यथा स्नानं यथा संध्याच तर्पणम् । अग्नि होत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रिया ॥९॥ वैशाखे माधवे धर्मानकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत् । न वैशाखसमो धर्मो धर्मजातेषु विद्यते ॥ १० ॥सन्त्येव बहवो धर्माः प्रजाश्चाराजका इव । उपद्रवैश्च लुप्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ सुलभाः सकला धर्माः कर्तुं वैशाखचोदिताः । उदकुंभः प्रपादानं पथि च्छायादिनिर्मितिः ॥ १२ ॥ उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा । तिलयुक्तमधोर्दानं गोरसानां श्रमापहम् ॥ १३ ॥

है सब धर्मोंमेंवैशाखकेधर्मोंके समान कोई धर्म नहीं है॥१०॥वैशाखके बहुतसे ऐसे धर्म हैं जैसे विना राजाकी प्रजा उपद्रवोंसे नष्ट होजाती हैं ऐसेही वे धर्म भी नष्ट होय जांय हैं उसमें कुछ विचार नहीं है ॥११॥ वैशाखमें जो धर्म कहे गये हैं वे सब सुलभ जलका घडा देना, प्याऊ लगाना मार्गमें छाया करना ॥१२॥ जूवा, खडाऊ, छत्री और पंखाका दान करना, तिल और शहत मिलाकर दान करना, परिश्रमको दूर करनेवाले

गोरसका दान करना ॥ १३ ॥ बावडी, कूआँ, तालाव, धर्मशाला बनवाना, नारीयल, ईख, कपूर, कस्तूरीका दान करना ॥ १४ ॥ चन्दनादि सुगंधित द्रव्योंका लगाना, शय्या खाट देना तथा आमके फल और रसीली ककडी आदिका दान करना ॥ १५ ॥ दौनाके फूलोंका दान करना, सायंकालके समय गुड़का शर्बत पान कराना, पूर्णिमामें सब प्रकारके अन्न देना, नित्यप्रति दही और अन्नका दान करना ॥१६॥ तांबूलका सदा दान

वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम् । नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च ॥१४॥ गन्धानुलेपनं शय्या खट्वादानं तथैव च । तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम् ॥ १५ ॥ दानं दमनपुष्पाणां तथा सायं गुडोदकम् । चित्राण्यन्नानि पूर्णायां दध्यन्नं प्रत्यहं तथा ॥ १६ ॥ ताम्बूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम् । रवावनुदिते पूर्वं प्रातः स्नानं दिने दिने ॥ १७ ॥ मधुसूदनपूजा च कथायाः श्रवणं तथा । अभ्यङ्गवर्जनं चैव तथा वै पत्रभोजनम् ॥ १८ ॥ मध्येमध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन च । सुगन्धैः कोमलैः पुष्पैः प्रत्यहं पूजनं हरेः ॥१९॥ फलं दध्यन्ननैवेद्यं धूपदीपो दिनेदिने । गोग्रासं वृषपत्नीनां द्विजपादावनेजनम् ॥ २० ॥

करना, चैत्रकी अमावास्याको करीलका दान करना सूर्योदयसे पहिले प्रतिदिन स्नान करना ॥ १७ ॥ मधुसदन भगवान्‌की पूजा करना, कथा सुनना, शरीरका तैलादि मर्दन न करना, पत्तेपर भोजन करना ॥ १८ ॥ बीचबीचमें मार्गसे थके हुओंको पंखेसे हवा करना, भगवान्‌का सुगंधित कोमल पुष्पोंसे प्रतिदिन पूजन करना ॥१९॥ प्रतिदिन फल, दही, अन्न नैवेद्य, धूप, दीप करना, भोग लगाना, गौओंको कोमल घास

देना, ब्राह्मणोंके चरण धोना ॥ २० ॥ गुड सोंठ और आंवलोंका दान करना, यात्रियोंकी सेवा करना, तंदुल और शाकका दान करना ये सब धर्म वैशाखमासमें उत्तम कहे हैं ॥ २१ ॥ विष्णु भगवान्‌के निमित्त फूल अर्पण करना, समयके अनुसार पत्रादिसे पूजा करना, दही अन्न और नैवेद्यका निवेदन करना ये सब पापोंके समूहको नाशकरनेवाले हैं ॥ २२ ॥ जो स्त्री ब्राह्मणके बताये हुए माधवभगवान्‌का पूजन घर वा

गुडनागरदानं च धात्रीपिष्टप्रदापनम् । पथिकानां प्रश्रयं च दानं तण्डुलशाकयोः । एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये ॥२१॥तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजा च कालोचितपल्लवाद्यैः । दध्यन्ननैवेद्यनिवेदनं च समस्तपापौघविनाशहेतुः॥२२॥ नारी पुष्पैर्माधव नार्चयेद्या द्विजाख्यातं मन्दिरे वा गृहे वा । पुत्रं सौख्यं क्वापि नाप्नाति हन्ति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन्॥२३॥ रमासहाये माधवे मासि विष्णोः परीक्षायै धर्मसेतोः प्रजानाम् । गृहं याते मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढ ॥ २४ ॥ स मूढात्मा रौरवं प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पञ्चवारम् । जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन् क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतुः ॥ २५ ॥

मन्दिरमें फूलोंसे न करै इसे पुत्र और सुखकी प्राप्ति नहीं होगी उसकी आयु तथा पतिभी नष्ट हो जायगा ॥ २३ ॥ इस महीनामें धर्मके सेतु विष्णुभगवान् लक्ष्मी, मुनिगण और देवताओंको संग लेकर प्रजाकी परीक्षाके लिये घर २ जाते हैं जो मूढ इस समय इनका पूजन पुष्पादिसे न करै ॥ २४ ॥ वह मूढात्मा रौरवनरकमें पडता है पीछे पांच बार राक्षसकी योनि पावै है इस महीनामें भूखसे पीडित

प्राणियोंकी प्राणरक्षाके निमित्त जल और अन्नका अवश्य दान करै ॥२५॥ जलका दान न करनेसे पशुपक्षिकी योनि मिलती है और अन्नका दान न करनेसे पिशाच बनता है, अन्नका दान करनेकी एक अद्भुत कथा हे राजा ! मैं तेरे सामने कहूंहू यह मेरी अनुभव करीहुई है ॥२६॥ रेवा-नदीके किनारेपर मेरा पिता पिशाच होगयाथा वह अपना मांस खाता था, भूक और प्यासके मारे उसका शरीर शिथिल होगयाथा, छायाहीन सेमरेंके वृक्षके पास अन्न न मिलनेके कारण उसकी चैतन्यता नष्ट होगईथी ॥ २७ ॥ पूर्वसंचित दुष्ट कर्मोंसे उसकी क्षुधा और तृषा बढ़गई तथा

तिर्यग्जन्तुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः। अन्नादाने चानुभूतां कथां ते मया वक्ष्ये चाद्भुतां भूमिपाल ॥ २६ ॥
रेवातीरे मत्पिताभूत्पिशाचः स्वमांसाशी क्षुत्तृषाश्रान्तगात्रः। छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः ॥ २८ ॥
क्षुधा तृषा कर्मणा यस्य बह्वी सूक्ष्मं छिद्रं कण्ठनालस्य चासीत्। मांसं चान्तःकण्ठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राणपर्यन्तमेव॥२७॥
चलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कूपं शीतं वापिकासारसंस्थम्। तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गङ्गायात्राकारणान्मार्गमध्ये ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा
द्रुतं शाल्मलीवृक्षमूले तृट्त्वा तृट्त्वा भक्षयन्तं स्वमांसम्। क्रोशन्तं तं बहुधा शोच्यमानं क्षुधा तृषा व्यथितं कर्मभिः स्वैः॥३०॥

उसकी कंठनालीका छिद्र बहुतही सूक्ष्म होगयाथा और कंठके बीचमें मांस खडा होगयाथा जिससे ऐसी पीड़ा होतीथी, जिसमें प्राण जानेका भय था ॥ २८ ॥ कुआँ बावडी और तालावके शीतल जलको देखकर वह उसे हलाहल विष समझताथा, मैं मार्गमें गंगायात्राके निमित्त जारहाथा तब मैं दैवयोगसे रेवानदीके किनारेपर आगया वहां ऐसा अद्भुतदृश्य देखा ॥ २९ ॥ कि शाल्मलीके वृक्षकी जडमें बैठाहुआ एक पिशाच आपना मांस

खारहा है और बुरीतरहसे प्यासा २ चिल्हावाथा, क्षुधा और तृषासे व्यथित अपने कर्मोंके कारण शोचमें पडाहुआ था ॥३०॥ वह पापी मुझे मारनेके लिये दौडा परन्तु मेरे तेजके मारे निहत होगया, मेरे हृदयमें दया उत्पन्न होआई तब मैंने उससे कहा डरै मत ॥३१॥ तू कौन है, जल्दी कह, मैं इस कष्टसे तुझे अभी छुडा दूंगा रंज मत करै, जब मैंने ऐसे कही तब मुझे अपना पुत्र न जानकर कहनेलगा कि पहले आनर्तदेशमें एक भूवराख्य नगर

स मां हन्तुं प्राद्रवत्पापकर्मा मत्तेजसा निहतो दुद्रुवे च। तं चाब्रुवं कृपया क्लिन्नचित्तो माभैष्ट त्वं ह्यभयं मे हि दत्तम् ॥ ३१ ॥
कस्त्वं तात ब्रूहि सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये मा विषीद। इत्युक्तो मां प्राह पुत्रं त्वजानन् पुरानर्तें भूवराख्ये पुरे च ॥ ३२॥
नाम्ना मैत्रः संकृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः। मयाधीताध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मया सर्वतीर्थावगाहः ॥ ३३ ॥
दत्तं नान्नं मासि वैशाखसंज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्यङ्ककाले। शोचे चाहं प्राप्य पैशाचयोनिं नान्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमङ्ग ॥३४॥
पुत्रोऽधुना वर्तते मद्गृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवाभिधानः। वाच्या तस्मै मद्दशा चात्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभूत्पिशाचः ॥३५॥

था ॥३२॥ मेरा नाम मैत्र था। और संस्कृति गोत्रमें उत्पन्न हुआथा तप विद्या दान और यज्ञादिमें मेरी बड़ी निष्ठा थी, मैंने सम्पूर्ण विद्या पढ़ी और फिर पढाई, मैंने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान किया॥३३॥ हे अंग ! मैंने भिक्षामात्र लोभके कारण वैशाखमें अन्नका दान नहीं कियाथा इससे मेरेविचारमें यही आता है कि इसी हेतुसे मुझे पिशाचकी योनि मिली है और कोई कारण नहीं है ॥ ३४ ॥ अब मेरे घरपर श्रुतदेवनाम मेरा पुत्र है जो बडा

ख्यातिवान् है उस मेरे पुत्रसे मेरी दशा कहदेना कि तेरा पिता अन्नदान न करनेसे पिशाच हुआ है ॥३५॥ नर्मदानदीके तीरपर वृक्षकी जडमें बैठाहै स्वर्गको नहीं गया है, बडा दुःखी है और अपने मांसका भक्षण करता है इससे पिताकी पिशाचयोनि छुडानेके लिये वैशाखमें ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल स्नानकर विष्णुकी पूजाकर और भक्तिपूर्वक जलसे मेरा तर्पण करै फिर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको अन्नका दान करै जिससे मैं विष्णुपदको प्राप्त होऊं ॥३७॥

दृष्टस्तीरे ते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गतो वर्तते वृक्षमूले। खादन्मांसं स्वीयमेवातुखिद्यत्पितुर्मुक्त्यै मासि वैशाखसंज्ञे ॥३६॥ प्रातः स्नात्वा पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा जलैश्च। देयं चान्नं द्विजवर्यै गुणाढ्यं मुक्तो यो वै याति विष्णोः पदं च ॥ ३७ ॥ इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्वदेति दया चेषा मत्कृते नात्र शंका। भद्रं भूयात्सर्वतो मङ्गलं ते श्रुत्वा चाहं भाषितं मे पितुश्च ॥३८॥ दुःखात्कायं दण्डवत्पातयित्वा भृशार्तोऽहं पादयोर्भूरि कालम्। निन्दन्निन्दन् भूयहं बाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं ते तात दैवागतोऽहम् ॥ ३९ ॥ कर्मभ्रष्टो भूसुराणां विनिन्द्यो नाभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणाम्। आख्याहि त्वं कर्मणा केन मुक्तो भविता वै तव् करोमि द्विजेन्द्र ॥ ४० ॥

यह सब कथा मैंने तुम्हारे सामने कही है जो तुम मुझपर इतनी दया करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा, ऐसी अपने पिताकी बात सुनकर ॥ ३८ ॥ मैं दुःखके मारे उसके पावोंपर बहुत देरतक लकडीकी तरह पडा रहा और वारंवार अपनी निंदाकर नेत्रोंमें आंसू भर कहनेलगा कि हे पिता ! मैंही तेरा पुत्रहूं दैवयोगसे यहां आगयाहूं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंमें कर्मसे भ्रष्ट कोई निन्दनीय नहीं हुआ जिससे पित्रीश्वरोंकी मोक्ष न हुईहो तू अब यह कह कि

कौनसे कर्मसे तेरी मुक्ति होगी वही मैं करनेको तैयार हूं ॥ ४० ॥ तब वह प्रसन्न हो कहनेलगा कि यात्रा करके शीघ्र घरमें आय मेषकी संक्रांतिमें विष्णुभगवान्‌के निमित्त अन्न अर्पण करके ॥ ४१ ॥ किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको अन्नदान देना इससे सकुटुंब मेरी मुक्ति होजायगी। पिताकी आज्ञाके अनुसार तीर्थयात्रा करके घरमें आय वैशाखके महीनामें अन्नदान किया ॥ ४२ ॥ इससे मेरा पिता मुक्त होकर विमानपर चढ मुझे आशीर्वाद दे

ततः प्राह प्रीतसर्वान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य गेहम्। प्राप्ते मासे मेषसंस्थे च भानौ निवेद्यान्नं विष्णवे त्वं गुणाढ्यम् ॥ ४१ ॥ दानं देहि द्विजवर्यै महात्मँस्तस्मान्मोक्षो भविता सान्वयस्य। पित्रादिष्टः कृतयात्रः स्वगेहं प्राप्याकरं माधवे चान्नदानम् ॥ ४२ ॥ तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य यानारूढो ह्यभिनन्द्याशिषा च। गतो लोकं श्रीपतेर्दुर्विभाव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः ॥ ४३ ॥ तस्माद्दानं सर्वशास्त्रेषु चोक्तं तुभ्यं प्रोक्तं धर्मसारं सधर्म्यम्। किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व श्रुत्वा सर्वं ते वदामीति सत्यम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशा०नारदाम्बरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

विष्णुलोकको चलागया जहांके गये हुए फिर कोई नहीं आते हैं ॥ ४३ ॥ इससे अन्नदान सब शास्त्रोंमें धर्म्य कहाहै और हे राजन्! अन्नदान सब धर्मोंका सारभूत है सो आपने कहा अब तेरी इच्छा और किस बातके सुननेकी है तूं पूछ मैं तुझसे सत्य कहूंगा ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

तदनन्तर मैथिलने कहा—हे ब्रह्मन् ! जलका दान न करनेसे इक्ष्वाकुका वंशधर तीन जन्मपर्य्यंत चातक होना और फिर मेरे घरमें गृहगोधिका होना॥१॥ बहुत योग्यहीहुआ, क्योंकि वह सब उस अधर्मीके कर्मोंके अनुरूप हुआ है और साधु महात्माओंकी सेवा न करनेसे उसने गिद्धकी योनि पाई॥ २ ॥ परंतु आपने जो यह कहा कि इसे सात जन्म तक कुत्तेकी योनि मिली यह बात मुझे बहुत अनुचित प्रतीत होती है, इसने संतमहात्मोंको कष्ट नहीं

मैथिल उवाच॥ ब्रह्मन्निक्ष्वाकुतनयो जलादानाच्च चातकः। त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहे गोधिका तथा ॥१॥ कर्मानुगुणमेतद्धि युक्तं तस्याकृतात्मनः। सतामसेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता ॥ २ ॥ सप्तवारमितिप्रोक्तं तन्मे भाति च नोचितम्। सन्तो न दूषिता स्तेन न तथा कृपणा अपि ॥ ३ ॥ तस्मादसेविनस्तस्य फलाभावो भवेद्ध्रुवम्। नानार्थकरणाभावादिदं हि परपीडनम् ॥ ४ ॥ अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनित्वमवाप्तवान्। तदेतत्संशयं छिन्धि शिष्यस्यात्मप्रियस्य च ॥ ५ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महायशाः। साधुसाध्विति सभाष्य वचो व्याहर्तुमादधे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ। शिवायै च शिवेनोक्तं कैलासशिखरेऽमले ॥ ७ ॥

दिया तथा कृपणोंकोभी दूषित नहीं किया ॥३॥ परन्तु इसने सेवा नहीं करी इससे निश्चय यह बात है कि उसे फल न मिलना चाहिये अनेक प्रकारके अर्थ करनाही औरोंको कष्ट देनाहै॥४॥विना कारणही इसे कुयोनि क्यों मिली ? हे विप्रवर ! मैं आपका प्यारा शिष्य हूं मेरे इस संशयको आप दूर कर दीजिये॥५॥राजाके इस प्रश्नको सुनकर महायशस्वी श्रुतदेव धन्यधन्य कहकर कहनेको उद्यतहुए॥६॥ हे राजन् ! हे पापरहित! जो तुमने

प्रश्न किया है मैं उसका समाधान करताहूं यही बात कलासके शिखरपर शिवजीने पार्वतीसे कहीथी॥७॥ संपूर्ण लोकोंको रचकर उनकी आमुष्मिक और ऐहिक दो प्रकारकी स्थिति बनाई ॥ ८ ॥ हेतुकी स्थितिके निमित्त प्रत्येकके तीन तीन भेद माने हैं, यथा जलसेवा अन्नसेवा और औषध-सेवा ॥९॥ हे महाभाग! ये तीनों ऐहिक अर्थात् इस लोककी स्थितिके हेतुहैं ऐसेही श्रुतियोंमें पारलौकिक स्थिति तीन हेतु हैं ॥ १० ॥ साधुसेवा,

सृष्ट्वेमान् सकलाँल्लोकान् पश्चात्तेषामवस्थितिम्। आमुष्मिकीमैहिकीं च द्विविधां पर्यकल्पयत ॥ ८ ॥ हेतुत्रयं च प्रत्येकं हेतु स्थित्यै महाप्रभुः। जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च ॥ ९ ॥ यत्र एते महाभाग ह्यैहिकस्थितिहेतवः। एवमामुष्मिके राजंस्त्रय एवेरिताः श्रुतौ ॥ १० ॥ साधुसेवा विष्णुसेवा सेवा धर्मपथस्य च। पुरा संपादिताद्यैते परलोकस्य हेतवः ॥ ११ ॥ गृहसंपादितं यद्वत् पाथेयं पद्धतौ यथा। ऐहिका हेतवो राजन् सद्यः सम्पादितार्थदाः ॥ १२ ॥ किं चेष्टमपि साधूनां मनसो यदि दुःसहम्। कुतश्चित्कारणाद्राजन् तच्चानर्थाय कल्पते ॥ १३ ॥ अप्रियं किमु वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम्। अत्रैवोदाहरन्तीम मितिहासं पुरातनम् ॥ १४ ॥

विष्णुसेवा और धर्मसेवा ये तीनों परलोककी स्थितिके हेतु है॥११॥ जैसे घरमें इकट्ठाहुआ मार्गका व्यय मार्गमें काम देताहै वैसेही ऐहिक हेतुओंका करना तत्काल धनसंपत्तियोंको देवा है ॥ १२ ॥ किंच साधुमहात्माओंके दुःसह मनोरथभी सिद्ध होय जाते हैं परंतु वही किसी विशेष कारणसे अनर्थका कारण होजाते हैं ॥१३॥ अप्रिय वार्तोका कहनाभीदुःखका हेतु होजाता है, यहां हम एक बहुत पुराना इतिहास वर्णनकरै हैं ॥ १४ ॥

यह इतिहास पापनाशकहै और ऐसा अद्भुत है कि श्रवण करनेसे रोमांचहो आते हैं, यज्ञदीक्षामें उपगत दक्षप्रजापति एक समय महादेवजीके बुलानेकेलिये कैलासको गये उन्हें देखकर उसीकी भलाईकी इच्छासे महादेवजीने उठकर आदर नहीं किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ मैं संपूर्ण देवताओंको गुरु, वेदसे जाननेके योग्य सनातन हूं ये चन्द्रमा और इन्द्रादि सब देवता यज्ञके भाग लेनेवाले भृत्य हैं ॥ १७ ॥ स्वामी भृत्यके लिये अभ्युत्थान

पापघ्नं महदाश्चर्यं शृण्वतां रोमहर्षणम् । यक्षदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥ १५ ॥ आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम् ॥ तं दृष्ट्वा नोत्थितः शंभुस्तस्यैव हितकाम्यया ॥१६॥ सर्वामरगुरुश्चाहं छन्दोगम्यः सनातनः । भृत्या ह्येते बलिहराश्चन्द्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः १७ ॥ स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यायै पतिस्तथा । गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम् ॥ १८ ॥ न संबन्धो गुरुत्वे च कारणं त्विति वै श्रुतिः । बलं ज्ञानं तपः शान्तिर्यत्र चैवाधिकं भवेत् ॥ १९ ॥ स गुरुश्चेतरेषां च नीचा ईयुश्च प्रेष्यताम् । उत्तिष्ठन्ति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्यदि चाग्रहात् ॥ २० ॥ आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्यो नश्यति सन्ततिः । तस्मादहं तु नोत्तिष्ठे प्रियोऽयं श्वशुरो मम ॥ २१ ॥

नहीं देता है ऐसे पति स्त्रीकेलिये और न गुरु शिष्यके लिये उठता है यही शास्त्रवेत्ताओंका मत है ॥ १८ ॥ गुरुत्वमें संबंध कारण नहीं है यही श्रुतिका वाक्य है, जिसमें बल, दान, तप और शान्ति अधिक होतीहै वही अन्य प्राणियोंका गुरु है और नीचही भृत्य होते हैं जो स्वाम्यादि आग्रहसे भृत्यादिके लिये उठते हैं ॥ १९॥ २० ॥ उनका आयु, धन और यश तत्काल नष्ट होजातेहैं, इस लिये मुझको इतना उचित

नहीं है यह मेरा प्यारा श्वशुर हैं ॥२१॥ ऐसा विचार करके दक्षप्रजापतिकी भलाईके निमित्त महादेवजी आसनसे न उठे जब प्रजापतिने देखा कि महादेवने उठकर मेरा आदर नहीं किया उसे बडा क्रोध आया ॥ २२ ॥ और अनेक प्रकारसे महादेवजीके आगेही निन्दा करने लगा कि आश्चर्य आश्चर्य इस अकृतात्मा दरिद्रीको बडा दर्प है ॥२३ ॥ बूढा बैल जिनपर केवल चर्णही रहगयाहै यही इसका धन है कपालकी हड्डी धारण

इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालासनाद्विभुः । नोत्थितं तु मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः ॥ २२ ॥ अनिन्दद्बहुधा तस्मै पुरतो गिरिजापतेः । अहो दर्पमहो दर्पं दरिद्रस्याकृतात्मनः ॥२३॥ यस्य वित्तं बहुवयो वृषश्चर्मावशेषितः । अत एव कपालास्थिधरः पाखण्डगोचरः ॥ २४ ॥ वृथाहंकारिणो देवः कुतो दास्यति मङ्गलम् । लोके कृत्ये न कर्माणि शुचीनीति विदो विदुः॥२५॥धत्ते दरिद्रः शीतार्तः पवित्रं च गजाजिनम् । वेश्म श्मशानं यस्य स्याद्भुजङ्गः किल भूषणम् ॥ २६ ॥ न धीरतापि च ज्ञानं वृकाद् तस्मात्पलायितः । भूतप्रेतपिशाचादिदुर्जनैः संगतोऽनिशम् ॥ २७ ॥

करैहै और अत्यंत पाखंडीहै ॥ २४ ॥ ऐसे वृथा अहंकारीका भगवान् कैसे मंगल करेंगे यह कोई शुभकर्म नहींकरै है और महा अपवित्रहै इस बातको सबही विद्वान् मनुष्य अच्छी तरह जानें हैं ॥ १५ ॥ दरिद्रताके मारे शीतसे व्याकुल पवित्र हाथीके चर्मको ओढै है, श्मशानमें घर है और सर्पोंके आभूषण धारण कर रक्खे हैं॥२६॥न इसके धीरजहै न ज्ञान है उस भस्मासुरसे दूर भागगया है रातदिन भूत प्रेत पिशाच संगमें ऐसे ऐसे

दुर्जन रहे हैं ॥२७॥ इसके कुलका कुछ ठिकाना नहीं है और न साधुमहात्मा इसकी प्रशंसा करें हैं दुरात्मा नारदने पहिले वृथाही बडाई करी ॥२८॥ इसीके प्रबोधसे मैंने अपनी कन्या सतीका विवाह इसके संग करदिया, यह भी पृथक् धर्मवाली होय गई है इसीको अपने घरमें सुखपूर्वक वास करावें सोभी नहीं ॥ २९ ॥ मैं इसकी कभी श्लाघा नहीं कर सकूं हूँ, मेरी पुत्रीसेही मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है जसे कुम्हारका घडा चांडालके हाथमें जानेसे

न कुलं श्रूयते क्वापि नासौ वै साधुसंमतः । वृथा विश्रम्भितः पूर्वं नारदेन दुरात्मना ॥ २८ ॥ येनाहं बोधितः प्रादां कन्यां चैतां सतीं मम । पृथग्धर्मगता चैषा सुखं वसतु मद्गृहे ॥२९॥ नास्माभिः श्लाघनीयोऽसौ मत्सुतापि कथंचन । यथा कुलाल कलशश्चाण्डालस्य वशं गतः ॥ ३० ॥ इति दक्षो विमूढात्मा ह्युमां नाहूय तं मृडम् । बहुधा तं विनिर्भर्त्स्य तूष्णीमेव गृहं ययौ ॥ ३१ ॥ यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह । ईजे यज्ञविधानेन निन्दन्नेव महाप्रभुम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः । सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षराक्षसकिंनराः ॥ ३३ ॥ तदा देवी सती पुण्या स्त्रीचाञ्चल्यात्मलोभिता । उत्सुका चोत्सव द्रष्टुं बन्धूंस्तत्र समागतान् ॥ ३४ ॥

किसी कामका नहीं रहता है॥३०॥ ऐसे विमूढात्मा दक्षने पार्वती और शंकरको निमंत्रण न दिया और अनेक प्रकारके कुवाक्योंको कहकर घरको चलागया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर यज्ञस्थानमें जाकर ऋत्विक् और मुनियोंको संग ले विधिपूर्वक यज्ञ करने लगा और श्रीशंकरकी निन्दा करता रहा ॥३२॥ ब्रह्मा और विष्णुको छोडकर सिद्ध, चारण, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सब देवता यज्ञमें आये॥३३॥ तब सतीको बडी उत्कंठा

हुई कि, किसी प्रकारसे यज्ञका उत्सव देखूं और अपने कुटुंबियोंसे मिलूं ॥३४॥ स्त्रियाँके स्वभावसे बड़ी चंचल होती हैं। महादेवजीने कहा तुम मत जाओ परन्तु उनने एकभी न मानी जानेकी मनमें ठानली ॥३५॥ महादेवजी बोले-हे वरवर्णिनि ! सभामें बैठकर वह मेरी सदा निन्दा करै है सो आपसे न सही जायगी आप निश्चय शरीर त्याग देउगी ॥ ३६ ॥ घरकी इच्छासे मैनेभी असह्य सही हैं हे देवी ! जैसे मैने किया है वह तुमसे न

निवार्यमाणा रुद्रेण तरला स्त्री स्वभावतः। प्रत्युक्तापि पुनश्चैव गन्तव्यमिति निश्चिता ॥ ३५ ॥ स निन्दति सभामध्ये सदा मां वरवर्णिनि। तच्चासह्यं च त्वं श्रुत्वा कायं सत्यं त्यजिष्यसि ॥ ३६ ॥ असह्यमपि सोढव्यं मयापि गृहमिच्छता। मया यथा कृतं देवि तथा त्वं नैव वर्तसे ॥ ३७ ॥ तस्मान्मा गच्छ शालां वै न शुभं तु भवेद् ध्रुवम्। इत्येवं बोधिता देवी चापल्यं पुनरागमत् ॥ ३८ ॥ निश्चक्राम सती गेहादेकैव पदचारिणी। तां दृष्ट्वा वृषभस्तूष्णीं पृष्ठे देवीमुवाह सः ॥ ३९ ॥ कोटिशो भूतसङ्घाश्च ह्यनुजग्मुः सतीं तदा। यज्ञवाटं तु सा गत्वा पत्नीशालां ययौ पुरा ॥ ४० ॥

होसकैगा ॥ ३७ ॥ अतएव तुम अपने पिताके घर मत जाओ मुझे ऐसा मालूम होता है कि, वहां जानेसे आपका कल्याण नहीं है इस प्रकार समझाने परभी सतीको फिर चपलता हुई॥३८॥ और अकेली ही घरसे निकलकर पैदल चलदी, ऐसे चुपचाप जाती हुई सतीको नंदियोंने अपनी पीटपर बैठालिया ॥ ३९ ॥ और करोडों भूतादि महादेवजीके गण पीछे होलिये और यज्ञशालामें जायकर प्रथम महलके भीतर गई ॥ ४० ॥

परन्तु जब उससे कोई न बोला तब खेदित होकर वहांसे बाहर चली आई और महादेवजीके वाक्यको स्मरण कर वहां गई जहां यज्ञ होरहाथा ॥४१॥ दक्ष प्रजापति और सब सभाके लोग सतीको देखकर चुप रह गये कुछ न बोले, किसीने कुछभी न कहा तब सती वहां खडी रही और रुद्रकी आहुति तक पिताकी चेष्टाको देखती रही ॥ ४२ ॥ जब दक्षने रुद्रको छोड़कर आहुति दी तब सतीकी आंखोंमें आंसू भर आये और अकुलाकर कहने लगी जो मनुष्य बडोंकी अवज्ञा करें हैं उनका कल्याण नहीं होयहै ॥ ४३ ॥ जो सब संसारके रचनेवाले पालन करने वाले, सबके प्रभु

तूष्णीमासन् सतीं दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता । पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम् ॥ ४१ ॥ पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूष्णीं हताशिषः । सा रुद्राहुतिपर्यन्तं पश्यन्ती पितृचेष्टितम् ॥ ४२ ॥ त्यक्त्वा रुद्रं च जुह्वन्तमुवाचाश्रुकुलेक्षणा । देव्युवाच ॥ महदुल्लंघनं पुंसां न प्रायः श्रेयसे भवेत् ॥ ४३ ॥ लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः । एवंभूतस्य रुद्रस्य कथं नो दीयते हविः ॥ ४४ ॥ जातां न किं ते दुर्बुद्धिं हरन्त्यन्ये समागताः । न चेदृशा महात्मानः किमेषां विमुखो विधिः ॥ ४५ ॥ इत्येवंभाषमाणां तां पूषा देवो जहास ह । श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा ॥ ४६ ॥

और अविनाशी हैं ऐसे रुद्रकी तुमने आहुति नहीं दी ॥ ४४ ॥ ये जितने बडे २ ऋषि मुनि और महात्मा इकट्ठे हुए हैं इनने भी तेरी दुष्ट बुद्धि दूर नहीं करी, मालूम पडै है विधाता इनकेभी विमुख है ॥४५॥ जब सती ऐसे कह रही थी. तब पूषादेवता मुख फाडकर हँसने लगा और शुभ कर्म जिसके नष्ट होगये और शुक्राचार्य डाढी और मूछोंको फड़काने लगे ॥ ४६ ॥

और बहुतसे भुजा, पांव, ऊरु और कक्षाओंको फडकाने लगे और सतीका पिता अभाग्यसे निन्दा करने लगा ॥ ४७ ॥ उसके वचनोंको सुनकर सतीका मन क्रोधसे आकुलित होगया, उस निन्दाके सुननेका प्रायश्चित्त करनेके लिये वह अपने देहको त्यागतीहुई ॥ ४८ ॥ सबके देखते बीचमें होमकी अग्निमें गिरपडी सतीके गिरतेही बडा हाहाकार होनेलगा और महादेवजीके गण ॥४९॥ भागके शिवजीके पास पहुंचे

भुजपादोरुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे। बहुधा निन्दनं चक्रे तत्पिता हतभाग्यतः ॥ ४७ ॥ तच्छ्रुत्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा। प्रायश्चित्तं श्रुतेः कर्तुं देहं तत्याज सा सती ॥ ४८ ॥ होमाग्नौ वेदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम्। हाहाकारो महानासीद्दुद्रुवुः प्रमथा द्रुतम् ॥ ४९ ॥ आचख्युर्देवदेवाय वृत्तान्तमखिलं तदा। तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय रुद्रः कालान्तकोपमः ॥५०॥ जटामुत्पाटच हस्तेन भूतले तामताडयत्। ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः ॥ ५१ ॥ सहस्रबाहुरभवत्कालान्तकसमप्रभः। बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा व्याजहार हरं तदा ॥ ५२ ॥ मत्सृष्टिस्तु यदर्थं ते तदर्थं मां नियोजय। इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिस्तं पुरः स्थितम् ॥ ५३ ॥

और सब वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनतेही शिवजीने सहसा उठकर कालांतकके समान क्रोधसे ॥५०॥ जटा उखाडकर पृथ्वीपर दे मारी तब बडा बलवान् बडी देहवाला वीरभद्र उत्पन्नहुआ॥५१॥ उसके सहस्र भुजा थीं और उसका रूप यमराजके समान था वह वीरभद्र महादेवजीके सन्मुख हाथ जोडकर खडा होगया और कहने लगा ॥५२॥ हे प्रभो! जिस कामके लिये तुमने मुझे उत्पन्न किया है वह काम बताइये, यह सुनके रुद्र भगवान्

क्रोध करके अपने सम्मुख खडेहुए वीरभद्रसे बोले ॥ ५३ ॥ तू अभी जाकर मेरे निंदक दक्षका नाश करदे जिसके कारणसे मेरी प्रिया सतीका देह जावारहा और बडे २ बलवान् भूतगणोंको आज्ञा दी कि तुमभी इसके संग चले जाओ ॥ ५४ ॥ ऐसे महादेवजी की आज्ञा पाय सबके सब यज्ञशालामें पहुंचे और देवता, असुर, मनुष्यआदि सब बडे २ वीराको मार गिराया ॥ ५५॥ पूषा दांत निकालकर हंसाथा इससे वह वीरभद्र उसके

हन त्वं निन्दकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया हता । भूतसंघास्तु गच्छन्तु सहैतेन महाबलाः ॥ ५४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता ययुर्यज्ञसभां तदा । जघ्नुः सर्वान् महावीरान् देवासुरनरादिकान् ॥ ५५ ॥ पूष्णश्च हसतो दन्तान्जटाभृश्च बभञ्ज ह । श्मश्रूण्युत्पाटयांचक्रे भृगोस्तस्य दुरात्मनः ॥ ५६ ॥ यद्यदास्फालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्यवान् ॥ ततो दक्षशिरो हर्तुं बहूद्योगं चकार ह ॥ ५७ ॥ मुनिमन्त्रप्रगुप्तं तु नैव कृन्तति तद्बलात् । हरो ज्ञात्वा तु चिच्छेद स्वयमेत्य दुरात्मनः ॥ ५८ ॥ एवं मखगतान् हत्वा सानुगः स्वालयं ययौ । हतावशिष्टाः केचित्तु ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ५९ ॥

दांत उखाड डालीं तथा उस दुरात्मा भृगुकी डाढी मूंछ उखाड डालीं ॥ ५६ ॥ जिसने जो जो अंग फडकायाथा उसका वही अंग वीरभद्रने उखाडकर फेंक दिया तदनन्तर दक्षका शिर काटनेके लिये बडा उद्योग किया ॥ ५७ ॥ उसके शिरकी रक्षा भृगु अपने मंत्रके बलसे कर रहा था इससे शिर नहीं कटताथा तब रुद्रने स्वयं आकर उस दुरात्माका शिर काटकर अलग करदिया ॥५८॥ ऐसे जितने यज्ञमें आये थे सबका संहारकर

अपने गणोंको संग ले कैलासको चले गये और जो मारनेसे बचे वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥५९॥ उन सबको संग लेकर ब्रह्माजी शिवजीके कैलासमें पहुंचे और वहां जायके अनेक प्रकारके शांतिकारक वचन कहकर क्रोधको कम करते हुए ॥ ६० ॥ और महादेवजीको संग लेकर यज्ञशालामें पहुंचे और जितने यज्ञमें मारेगयेथे उन सबको फिर जीवदान दिया ॥६१॥ सदाशिवने दक्षके धडपर बकराका शिर रख दिया जिससे आजतक

तैरन्वितो ययौ ब्रह्मा कैलासं तु शिवालयम् । ततो रुद्रं सान्त्वयित्वा वचोभिर्विविधैरपि ॥ ६० ॥ तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः । तेनैवोज्जीवयामास सर्वान् यज्ञसभागतान् ॥ ६१ ॥ ख्यात्यै प्रादादजमुखं दक्षस्य तु तदा शिवः । अजश्मश्रूण्यदाच्छम्भुर्भृगवे तु महात्मने ॥ ६२ ॥ पूष्णश्च दन्तान्न प्रादात्पिष्टादं च चकार ह । तदङ्गानां व्यतिकरं केषांचिदपि वै शिवैः ॥ ६३ ॥ शिवमापुश्च ते सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च । पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः॥६४॥यज्ञान्ते सर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वं स्वमालयम् । नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु कृत्वा रुद्रो महत्तपाः ॥ ६५ ॥

शिवोपासक उनकी प्रसन्नताके लिये बबब करतेहैं, ऐसेही भृगुजीको बकरेकी डाढी दी ॥ ६२ ॥ पूषाको दांत नहीं दिये और कहा कि यह अन्नको पीसकर खालिया करेगा ऐसे किसीका किसीको अंग लगाकर सबके देह जोड दिये ॥ ६३ ॥ और ब्रह्माजी तथा शिवजीके द्वारा उन सबका कल्याण होगया और फिर पहिलेकी तरह यज्ञ करनेमें प्रवृत्तहुए ॥ ६४ ॥ यज्ञको पूरा कराके सब देवता अपने अपने स्थानोंको चलेगये और

तपस्वियोंमें श्रेष्ठ शिवजी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके ॥ ६५ ॥ गंगातटपर पुन्नाग वृक्षके नीचे तप करनेलगे, अब दक्षकी पुत्री पतिव्रता सतीने जो अपना देह त्याग दियाथा ॥६६॥ उसने हिमाचलके घर उसकी स्त्री मेनकामें जन्म लिया और उसीके घरमें उसका पालन पोषण होने लगा इतनेहीमें तारकासुरनामक एक बडा राक्षस उत्पन्न हुआ ॥ ६७ ॥ उसने घोर तप करके परमेष्ठी ब्रह्मको प्रसन्न करलिया तब ब्रह्माजीने उसे यह

तेपे गङ्गातटे रुद्रः पुन्नागतरुमूलगः । दक्षात्मजा सती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता ॥ ६६ ॥ जज्ञे हिमाद्रेर्मेनक्यां ववृधे तस्य वेश्मनि । एतस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥६७॥ सुतीव्रतपसाराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । अवध्यत्वं वरं वव्रे देवासुर नरोरगैः ॥ ६८ ॥ आयुधैरस्त्रसंघैश्च सर्वैरेव महाबलैः । रुद्रपुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि ॥६९॥ इति तस्मै वरं प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः । अस्त्रीकत्वादपुत्रत्वाद्रुद्रस्येति तथास्त्विति ॥ ७० ॥ वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान् बबाध ह । दासा देवा मार्जनादौ दास्यो देव्यश्च तद्गृहे ॥ ७१ ॥

वर देदिया कि तू देवता, राक्षस, मनुष्य वा नाग किसीसे न मारा जायगा ॥ ६८ ॥ किसी प्रकारके आयुध, किसी अस्त्र शस्त्रोंसे तू न मरेगा किंतु जब रुद्र भगवानूका महाबलवानू पुत्र होगा वह तुझे मारेगा ॥ ६९ ॥ ऐसे लोकपितामह ब्रह्माने उसे वर दिया तब उसने सोचा कि महादेवजीके न स्त्री है न पुत्र है, वह मुझे कैसे मारैगा यह सोच वह राक्षस बोला तथास्तु ॥ ७० ॥ ऐसेवर पायकर अपने घर जाय लोगोंको सताने लगा उसने सब

देवताओंको दास करलिया और देवताओंकी स्त्री उसके घरमें दासी बनकर बुहारी देने लगीं॥७१॥जब उसने देवताओंको बहुत सताया तब वे ब्रह्मा-जीकी शरण गये व्यथाको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंसे यह कहनेलगे ॥ ७२ ॥ देवताओ वर देते समय मैंने यह कहाथा कि, विना शिवजीके पुत्रके तेरा वध कोई न कर सकेगा सो विना शिवजीके पुत्रके उसका वध असंभव है सो एक उपाय करो ॥ ७३ ॥ रुद्रभगवान्‌की पत्नी सतीने पहिले

ततस्तत्पीडिता देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः । तैः पीडां वर्णितां श्रुत्वा वेधाः प्राह सुरानिदम् ॥ ७२ ॥ वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः । नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने ॥७३॥ पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा । जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति च यां विदुः ॥७४॥ रुद्रो हिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम् । योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ७५ ॥ पुनर्देवेन्द्रसदने संगतैरमरेश्वरैः । धिषणेनापि संमंत्र्य देवेन्द्रः पाकशासनः ॥ ७६ ॥ सस्मार च स कार्यार्थं नारदं स्मरमेव च । तत्रागतौ ततस्तौ तु बलभिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ७७ ॥

अपने पिताके यज्ञमें अपना देह त्याग दियाथा उसने हिमाचलके घर जन्मलियाहै और पार्वती उसका नाम है ॥७४॥ और रुद्रभगवान् हिमा-चलकी शिखरपर घोर तपमें लवलीन होरहे हैं सो लोकेश्वर रुद्रसे पार्वतीका पाणिग्रहण करा देना चाहिये ॥ ७५ ॥ तब सब देवता इन्द्रके संग अमरावती पुरीमें गये और वहां देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीसे सलाह मिलाई तब इन्द्रने॥७६॥ अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त नारद और

कामदेवको बुलाया जब वे दोनों आये तब इन्द्र यह कहने लगा ॥ ७७ ॥ हे नारद ! तुम हिमाचलके घर जाय यह समझा आवो कि पूर्वजन्ममें दक्षकी पुत्री और शंकरकी पत्नीही तेरी पुत्री हुई है ॥७८॥ और दक्षकी कन्याके वियोगसे महादेवजी तेरी शिखरपर तप कर रहे हैं सो उनकी सेवाके लिये उनकी प्यारी पत्नीको नियुक्त कर ॥७९॥ तेरी पुत्री उन्हींकी पत्नी होगी और वह उसके पति होंगे इन्द्रकी आज्ञाको सुन नारदजी

हिमवन्तं भवान् गत्वा वचसा तन्निबोधय । पुत्री तव प्राक्दक्षस्य हरपत्नी सुता सती ॥ ७८ ॥ तपश्चरति ते शृङ्गे वियुक्तो दक्ष कन्यया । मृडस्तस्य सपर्य्यायै विनियोजय तत्प्रियाम् ॥ ७९ ॥ तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः । इत्यादिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम् ॥८०॥ तथैव कारयामास देवेन्द्रेणोदितं तथा । पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च॥८१॥देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च। वसन्तेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम् ॥८२॥गुणान्विजृंभयित्वा तु वासन्तान् हृच्छयावहान् । यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च ॥ ८३ ॥ तदा प्रयुज्य त्वं बाणान्मोहयस्व महाप्रभुम् । तयोस्तु संगमे जाते कार्यं नोद्धा भविष्यति ॥ ८४ ॥

उसकी बात अंगीकारकर ॥ ८० ॥ जैसे इन्द्रने कहाथा वैसेही करतेहुए पीछे कामदेवको बुलाकर इन्द्रने यह कहा ॥ ८१ ॥ सब देवताओं तथा महादेवजीके हितके लिये वसंतऋतु को अपने संगलेयकर तू रुद्रभगवान्‌के तपोवनमें जा ॥८२॥ वहां जाकर तू चारों ओर मनको मोहित करनेवाले वसंतऋतुके गुणोंका विस्तार कर और जब पार्वतीदेवी महादेवजीके पास पहुंच जाय तब॥८३॥ धनुषपर बाण चढायकर ऐसे मार कि–महादेवजी

मोहित होजांय उनका संगम होनेपर काय अवश्य होजायगा ॥८४॥ यह आज्ञा पानेपर कामदेव 'जो आज्ञा' कहकर वसंतऋतु, अपनी स्त्री रति और सब अनुचरोंको संग लेकर उस ओर शीघ्रही चलागया ॥ ८५ ॥ अपनी शक्तिसे असमयमें वसंतऋतु उत्पन्न करदीनी चारों ओरसे वनकी शोभा अपूर्व होगई शीतळ मंद सुगंधित पवन चलने लगी ॥ ८६ ॥ कदाचित् देवदेव महादेव भी पार्वतीकी सेवासे प्रसन्न होयकर

इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ। सवसंतः सरतिकः सानुगस्तद्वनं ययौ ॥ ८५ ॥ अकाले तु वसन्तर्तुं जृम्भयित्वा स्वशक्तितः। तद्वने सर्वतो रम्ये मन्दानिलनिषेविते ॥ ८६ ॥ कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया। प्रीतः स्वाङ्कं समारोप्य किंचिद्व्याहर्तुमारभत् ॥ ८७ ॥ प्राणप्रियासंगमस्य कालोऽयमिति निश्चितः। पेशलं धनुरादाय स तस्थौ हरपृष्ठतः ॥ ८८ ॥ कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह। द्वितीयमपि सन्धाय चक्रे मोक्तुं महोद्यमम् ॥ ८९ ॥ अथ क्षुब्धमना भूत्वा मृडश्चिन्तामवाप ह। न मे मनश्चलं क्वापि केन वा कश्मलीकृतम् ॥ ९० ॥

गोदीमें बैठाय कुछ कहना प्रारम्भ करतेहुए ॥८७॥ तब कामदेवने निश्चय कर लिया कि, प्राणप्रियाके संगमका यही समय है सोही उत्तम धनुष्य उठायकर महादेवजीकी पीठके ओर चलागया ॥ ८८ ॥ तथा वृक्षकी आड बैठ एक बाण तो छोड दिया और दूसरा बाणभी चढाकर चलानेका प्रयत्न करताही था ॥ ७९ ॥ कि महादेवजीका मन विकारयुक्त होगया और चिंता करनेलगे कि मेरा मन तौ कभी चलायमान होता नहीं था ऐसा

विकारयुक्त किसने कर दिया॥९०॥ ऐसे चिंतामें व्याकुल होकर इधर उधर देखनेलगे सोंई बांई ओर कामदेव दिखाईपडा और क्रोधसे अपने ललाटस्थ तीसरे नेत्रको खोलकर गोदीसे पार्वतीको दूर करके ॥९१॥ उस नेत्रसे ऐसी तीक्ष्ण अग्नि प्रकट की कि, जिससे सब संसार भयभीत होगया और उस अग्निसे धनुष्य बाण समेत कामदेव भस्म होगया ॥९२॥ और अपने कार्यकी सिद्धि समझकर सब देवता भागगये तथा वसंत और रति भी अपने

इति चिन्ताकुलो वामे पार्श्वे कामं ददर्श ह । क्रुद्धोन्मील्य ललाटाक्षं स्वाङ्काद्देवीमपास्य च ॥ ९१ ॥ तस्याक्ष्णः समभूदग्नि स्तीक्ष्णो लोकविभीषणः । तेन दग्धोऽभवत्सद्यो मन्मथः सशरासनः ॥ ९२ ॥ कार्यसिद्धिं च पश्यन्तो दुद्रुवुश्चामरा दिवम् । शङ्कमानौ स्वदण्डं च वसन्तो रतिरेव च ॥ ९३ ॥ निमील्य लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे । सन्निधानं स्त्रियो हर्तुं मृडोऽप्यन्तर धीयत ॥ ९४ ॥ रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देवश्च मनसो हितम् । लेभे नार्थमनिर्वृत्तं विप्रियं कुर्वतस्तु किम् ॥ ९५ ॥ तस्मादिक्ष्वा कुतनयः साधूनामप्रियः सदा । तस्मादात्महितां सेवां नाकरोन्मन्दधीः सताम् ॥ ९६ ॥

दंडकी शंका करके भागगये ॥९३॥ पार्वतीभी डरके मारे आंख बंद करके दूर हटगई और स्त्रीकी निकटता छोडनेके लिये महादेवभी अन्तर्धान होगये ॥ ९४॥ महादेवजीके हितकी इच्छा करनेवाले देवताओंकोही कुछ फलकी सिद्धि न हुई और अनर्थ हुआ फिर जो साधुओंके संगमें दुष्टता करै हैं उनका तब कहनाही क्या है ॥ ९५ ॥ इसीसे इक्ष्वाकुका पुत्र साधुओंका सदा अप्रिय था और वह कुबुद्धि साधुओंकी अच्छीतरह सेवा

नहीं किया करताथा ॥ ९६ ॥ इसी कारणसे उसने बडे दुःख भोगे और अनेक खोटी योनिमें जन्म लिया इसलिये सम्पूर्ण अर्थोंकी सिद्धिके लिये साधुओंकी सेवा अवश्यही करना चाहिये ॥९७॥ देखो रुद्रका अप्रिय करनेसे कामदेवने भविष्यत् जन्ममें बडे २ दुःख उठाये ॥ ९८॥ जो रातदिन इस पुण्य चरित्ररूप पुरातन इतिहासको सुनते हैं वे जन्म, मृत्यु, बुढापा आदिसे छूट जाते हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे

अनुभूतं महद्दुःखं तस्माद्दुर्योनिरेव च। तस्मात्कुर्यात्तु साधूनां सेवां सर्वार्थसाधिनीम् ॥९७॥ रुद्रस्याप्रियकारित्वात्स्मरो भाविनि जन्मनि। दुःखं तु बहुलं लेभे जन्मकाले महाप्रभुः ॥ ९८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं ये शृण्वन्ति दिवानिशम्। जन्ममृत्युजरादिभ्यो मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥९९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कामदहनोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ छ ॥

मैथिल उवाच ॥ तस्य दग्धस्य कामस्य कस्माज्जन्माभवद्विभो। किं दुःखमभवत्तस्मिन् कर्मणः सह लङ्घनात्। एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम् ॥ २ ॥

वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कामदहनोनाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ मैथिल पूछने लगा कि, हे विभो ! जब कामदेव जलगया तब उसकी उत्पत्ति किससे हुई और कर्मवशात् उसे कौन कौनसे दुःख भोगने पडे ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे इसबातके सुननेकी बडीही अभिलाषा है यह कहकर मेरा संदेह मिटाइये यह सुनकर श्रुतदेव कहने लगे कि मैं स्वामिकार्तिकेयके जन्मकी कथा कहताहूं, इसके सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

यह कथा यशको बढानेवाली, पुत्र देनेवाली, धर्म करनेवाली और संपूर्ण रोगोंको नाश करनेवाली है। हे राजन्! जब महादेवजीने कामदेवको भस्म करदिया तब कामदेवकी स्त्री रति अपने सामने पतिको भस्मरूप पडा हुआ देखकर शोकसे मूर्च्छित होगई जब दो घडी पीछे चेतमें आई तब अनेक प्रकारके विलाप करने लगी ॥३॥४॥ तब उसके विलापको सुनकर वह तपोवन दुःखमय होगया और रतिने विचार किया कि मैंभी अग्निमें प्रवेशकर शरीरका परित्याग करदूं यह विचारकर उसने अपने पतिके सखा बसंतको उस समयकी क्रिया करनेके लिये बुलाया, ऐसे जब वह वीरपत्नी

यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम्। शंभुना तु हते कामे तत्पत्नी रतिसंज्ञका ॥ ३ ॥ मुमोह पुरतो दृष्ट्वा पतिं भस्मावशेषितम्। जातसंज्ञा मुहूर्तेन विललापाह चित्रधा ॥४॥ यद्विलापाद्वनं वापि समदुःखमभूत्तदा। तच्चिताग्नौ स्वकायं तु त्यक्तुकामा च माधवम् ॥ ५ ॥ पत्युः सखाय सस्मार कर्तु तात्कालिकीं क्रियाम्। स आगतश्चितिं कर्तुं वीरपत्न्या महाप्रभुः ॥ ६ ॥ स तु त्रस्तः सखीं दृष्ट्वा क्षणं मूर्च्छापरोऽभवत्। रतिं तु सांत्वयामास सांत्वैर्बहुविधैरपि ॥ ७ ॥ पुत्रतुल्योऽस्मि ते भद्रे स्थिते मयि च नार्हसि। कायं त्यक्तुं धर्महेतुमित्याद्यैर्बहुधापि सा ॥ ८ ॥

चिता बना रही थी तब वहभी आय पहुंचा ॥ ५ ॥ ६ ॥ वहभी रतिको देख डरके मारे क्षणभरको मूर्च्छित होगया, फिर अनेक प्रकारके वाक्य कहकर रतिको समझाने लगा ॥ ७ ॥ और बोला हे भद्रे! मैं तो तेरे पुत्रके समान हूं मेरे होते यह कर्म करना अनुचितहै शरीरका त्यागना अथवा आत्मघात करना धर्मका हेतु नहीं है ऐसे जब बहुत प्रकारसे समझानेपरभी ॥ ८ ॥

रतिने अपना देह रखना न विचारा तब उसकी दृढताको देखकर वसंतने नदीके तटपर चिता बनाई ॥ ९ ॥ वहभी गंगामें स्नानकर संपूर्ण क्रियाकर्मसे निश्चिन्त हो सब इन्द्रियोंको रोक और मनको आत्मामें प्रवेश कर ॥ १० ॥ चितापर चढनेको उद्यत हुई तबही आकाशवाणी भई कि हे कल्याणि ! हे पतिमें अत्यंत प्रेम रखनेवाली ! तू चितामें प्रवेश मत करै ॥११॥ तेरा पति महादेवजीसे और यदुवंशी कृष्णभगवान्से

नैव स्थातुं मनश्चक्रे तेन संस्तम्भिता रतिः । दृष्ट्वा दार्ढ्यं वसन्तोपि चितिं चक्रे सरित्तटे ॥ ९ ॥ सावगाह्य द्युनद्यां च कृत्वा कार्याणि सवशः । सन्नियम्येन्द्रियग्रामं निवेश्यात्मनि वै मनः ॥ १० ॥ चितिमारोढुमारेभे ततो जाताऽशरीरवाक् । मा प्रवेशय कल्याणि वह्निं पतिपरायणे ॥११॥ भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विष्णोश्च यादवात् । जन्मद्वयं क्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि ॥१२॥ भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोः प्रद्युम्नाख्यो भविष्यति । वसिष्यसि त्वं च शापाद्ब्रह्मणः शम्बरालये ॥१३॥ प्रद्युम्नाख्येन ते पत्या संगतिश्च भविष्यति । इत्युक्त्वा विररामाथ वाणी चाकाशगोचरा ॥१४॥ श्रुत्वा तां तु निवृत्ताभून्मरणे कृतनिश्चया । ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थैं कामे हते हरात् ॥ १५ ॥

पैदा होगा ऐसे क्रमसे दो जन्म होयंगे तब दूसरे जन्ममें॥१२॥ श्रीकृष्णसे रुक्मिणीके गर्भमें तेरा पति होयगा उसका नाम प्रद्युम्न होगा तू ब्रह्माके शापसे शंबरके घर निवास करैगी ॥१३॥ वहीं प्रद्युम्ननामक तरे पतिसे तेरा समागम होयगा ऐसे कहकर आकाशवाणी अदृष्ट होगई ॥१४॥ जब रतिने यह बात सुनी तब मरनेके लिये उद्यत भई रतिने चितामें प्रवेश न किया. पीछे जिनके स्वार्थसिद्धिके लिये महादेवजी द्वारा कामदेव भस्म

होगया था वे सब देवता बृहस्पती, इन्द्र और अग्निको आगे करके रतिसे अदृष्ट होय कहनेलगे और बडाभारी वरदान देयकर उसकी शान्ति करी ॥ १५ ॥ १६॥ और कहनेलगे हे कामप्रिये ! अबसे तेरा पति अनंग कहावेगा और अंगवालेकी तरह मराहुआ भी दिखाई देयगा ऐसे अनेक प्रकारसे समझाय बुझाय धर्मका उपदेश करनेलगे ॥ १७ ॥ कि तेरा पति पूर्वकल्पमें सुन्दरनाम राजा होताहुआ उस जन्ममेंभी तूही इसकी पत्नी

रत्यादृष्टं प्रकुर्वाणा गुर्विन्द्राग्निपुरोगमाः । तां ते निर्वर्तयामासुर्वरेण महता सतीम् ॥ १६ ॥ अनङ्गोपि भवेत्साङ्गो मृत एवाक्षिगो भवेत् । इति तां तु विनिर्वर्त्य धर्म चोपदिदेशिरे ॥१७॥ पूर्वकल्पे त्वयं राजा सुन्दराख्यो महाप्रभुः । त्वमेव पत्नी तत्रापि रजःसंकरकारिणी ॥ १८ ॥ तेनेय च दशाभूत्ते कुर्विदानीं च निष्कृतिम् । मन्दाकिन्यां तु वैशाखे प्रातःस्नानं तदा कुरु ॥१९॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां दिव्यां तथा शृणु । अशून्यशयनं नाम व्रतमारभ भामिनि ॥ २० ॥ धर्मेणानेन ते भद्रे व्रतेनापि च माधवे । नूनं ते भविता पत्युरुपलाब्धर्न संशयः ॥ २१ ॥ इति तस्यै वरं दत्त्वा देवा जग्मुर्यथागताः ततः । कृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामवती तथा ॥ २२ ॥

रजसंकरकारिणी हुई ॥ १८ ॥ इसीसे यह तेरी दशाहुई अब तू एक काम कर कि वैशाखमें मन्दाकिनी नदीमें प्रातःकाल स्नानकर ॥ १९ ॥ और मधुसूदन भगवान्का पूजन कर उनकी दिव्यकथाको सुन और भामिनी ! तू अशून्यशयन नाम व्रतका प्रारंभ कर ॥ २० ॥ हे भद्रे वैशाखमें इस धर्मके करनेसे और इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे निश्चयही तेरा पति मिल जायगा इसमें संशय मत समझै ॥ २१ ॥ ऐसे रतिको वर देकर

सब देवता अपने अपने स्थानको चलेगये और कामकी स्त्रीभी उस क्लेशसे निवृत्त होय ॥ २२ ॥ मेषकी संक्रान्तिमें गंगास्नान कर बडे उत्कृष्ट मनसे अशून्यशयन व्रतको धारण करतीहुई ॥ २३ ॥ इस व्रतके पुण्यके प्रभावसे तत्काल कामदेव उसके दृष्टिगत होगया यह ऐसा पराक्रमी है कि कोई भी इसके पराक्रमको नहीं रोक सकता है ॥ २४ ॥ पूर्वकल्पमेंभी यह बड़ा धर्मपरायण राजा था इसने वैशाखमासमें कर्त्तव्य धर्म नहीं किये इसी

गङ्गावगाहनं चक्रे मेषसंस्थे दिवाकरे । अशून्यशयनं नाम व्रतं चापि महामनाः ॥२३॥ तेन पुण्यप्रभावेण सद्यः कामोक्षिगोचरः । अभूत्तस्यै महाराज लोके चावार्यवीर्यवान् ॥२४॥ पूर्वकल्पेप्ययमपि राजा धर्मपरायणः । वैशाखोक्तान्महाधर्मान्नाकरोत्तेन वै स्मरः ॥ २५ ॥ देहहानिं प्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः । वृथा नीते तु वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ २६ ॥ अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु का कथा। त्र्यम्बकेऽन्तर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका ॥ २७ ॥ तूष्णीं स्थितां तदा भ्रान्तां तां दृष्ट्वा हिमवान् गिरिः । चकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च ॥ २८ ॥

हेतुसे ॥ २५ ॥ कामदेव यद्यपि परमात्माका पुत्र था तौभी अंगहीन होताहुआ यह सब वैशाखमें मेषकी संक्रान्तिको वृथा खोयेका फल है ॥२६॥ सो देवताओंकोभी भोगना पडैहै मनुष्योंका तो कहनाही क्याहै, जब महादेवजी अन्तर्धान हो गये तब पार्वतीकी आशा निराशा होगई ॥ २७ ॥ ऐसे पार्वती चुप चाप खडीरहगई और नहीं जानती भई कि क्या करूं, पार्वतीकी ऐसी दशा देख दोनों हाथोंसे गले लगाय हिमाचल अपनी पुत्रीको

वर लेगया॥२८॥ और पार्वती भगवान् महादेवजीके रूप और उदारतादि गुणोंको देखकर ऐसी मुग्ध होगई थी कि उसने यह बात मनमें निश्चय ठान लीथी कि शंकरही मेरे पति होंगे ॥२९॥ ऐसी दृढ व्रत धारणकर शंकरमें मन लगाय गंगाके तीरपर जाय तप करनेलगी माता पिता तथा कुटुम्बके लोगोंने बहुत समझाई पर एक न मानी ॥ ३० ॥ अन्न खाना छोड दिया बडी बडी जटा बढगई ऐसे सहस्र वर्ष पर्य्यन्त महालिंगका पूजन करती

रूपौदार्यगुणान्दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः । स एव मे पतिर्भूयादिति तन्निष्ठमानसा ॥ २९ ॥ गङ्गोपकूलमापेदे तपस्तप्तुं धृत व्रता । निवारितापि सा देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः ॥ ३० ॥ अर्चयन्ती महालिङ्गं निराहारा जटाधरा । दिव्यवर्षसहस्रान्ते प्रत्यक्षोऽभून्महेश्वरः ॥ ३१ ॥ भूत्वा वर्ण्यपि सायाह्ने पर्णशालामुखे विभुः । स्वनिष्ठमनसो दाढर्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वा वरादरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः । सा वव्रेऽथ पतिं रुद्र त्वं भवेति वरानना ॥ ३३ ॥ स तथैव वरं दत्त्वा ऋषीन् सस्मार सप्त च । आजग्मुस्तेऽपि मुनयः स्थिताः प्राञ्जलयः पुरा ॥ ३४ ॥

भई तब महादेवजी ॥ ३१ ॥ सायंकालके समय ब्रह्मचारीका वेष धारणकर उसके सामने पर्णनिर्मितकुटीके पास आये और अनेक प्रकारके वाक्योंसे परीक्षा करने लगे कि इसका मन मुझमें दृढ है वा नहीं ॥ ३२ ॥ यह जानकर बोले हे भद्रे ! जो तेरी इच्छा होय सोई वर मांग तब वह वरानना बोली मैं यह वरमांगू हूं कि हे रुद्र ! तुम मेरे पति होउ ॥ ३३ ॥ 'तथास्तु' ऐसेही यह वर देयकर सप्तऋषियोंको बुलाये वे सब हाथ

जोडकर आगे आय खडे हुए ॥ ३४ ॥ तब ऋषियाको आज्ञा देकर कहा कि तुम कन्याके पूछनेके निमित्त हिमालयको जाओ ऐसे भगवान्‌की आज्ञा पाय कन्याके लिये हिमाचलके घर ॥३५॥ आकाशमार्ग होयकर चले जिनके चलनेसे दशों दिशा प्रकाशित होतीभई, इन ब्रह्मवेत्ता सातों ऋषिनको आते देख हिमाचल उठके आदर पूर्वक ले आये ॥३६॥ फिर विधिवत् सबकी पूजा करी जब वे सुखसे आसनपर बैठगये तब पूछता

ऋषीणां ज्ञापयामास कन्यां पृष्टुं हिमालयम् । तथादिष्टा भगवता कन्यार्थंहिमवद्गृहम् । प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयन्तो दिशो दश ॥ ३५ ॥ प्रत्युज्जगाम स गिरिः सप्तैतान् ब्रह्मवित्तमान् ॥ ३६ ॥ संपूज्य विधिवत्सर्वान् सुखासीनानपृच्छत । धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यद्भवन्तो गृहागताः ॥ ३७ ॥ भवदागमनं मन्ये मम जन्मफलं त्विति । न कृत्यं विद्यतेऽस्माभिः पूर्णार्थानां महात्मनाम्॥ ३८ ॥ तथापि ब्रूत काय वो यत्कर्तव्यं मयाधुना । इत्युक्तास्ते तथा प्रोचुर्हिमवन्तं महागिरिम् ॥ ३९ ॥ त्वया ते सदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते दृढम् । अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते महोदये ॥ ४० ॥

हुआ, हे महाराज ! मैं धन्यहूं आज आप मेरे घर पधारे सो मैं कृतकृत्यहूं आपके आवागमनको मैं अपने पूर्वजन्मके सुकर्तोंका फल मानूंहूं, पूर्ण हैं मनोरथ जिनके ऐसे महात्माओंके कृत्य हमसरीखे नहीं जाने हैं ॥३७॥ ३८॥ तथापि आप अपने आनेका कारण कहिये जो आपकी आज्ञा होय सोई मैं करूं यह सुनकर वे सप्तर्षि हिमाचलसे बोले ॥३९॥ हे गिरिपते ! तैने अपनेही समान दृढ वाक्य कहे हैं, महोदय ! हम अपने आनेका

कारण तेरे प्रति कहे हैं ॥ ४० ॥ हे राजन् ! यह जो तेरी पार्वती नामकी कन्या है सो पहिले दक्षकी पुत्री होतीभई इसीने अपने पिताके यज्ञमें देह त्याग दिया था इसीने अब तेरे यहां जन्म धारण किया है ॥ ४१ ॥ इसका पाणिग्रहण करनेमें तीनों लोकमें महादेवको छोडकर और कोई समर्थ नहीं है इसलिये हे कल्याणकी इच्छा करनेवाले ! तू अपनी कन्याको महादेवके अर्थ दे ॥ ४२ ॥ तैने सहस्रों पूर्वजन्ममें अनेक सुकृत कर्म किये हैं अब तेरे सुभाग्यसे वे परिपापको प्राप्त हुए हैं ॥ ४३ ॥ उन ऋषियोंके उन वचनोंको सुनकर हिमाचलको अन्यन्त हर्ष होता हुआ और

कन्या ते पार्वती नाम पूर्वं दक्षात्मजा सती । जाता तव कुमारी या यज्ञे त्यक्तकलेवरा ॥ ४१ ॥ अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शम्भुर्नान्यो जगत्त्रये । देया सा शम्भवे देवी भवतानन्त्यमिच्छता ॥४२॥ पूर्वजन्मसहस्रेषु भवता सुकृतं कृतम् । इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम् ॥ ४३ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संहृष्टात्मा महागिरिः । व्याजहार पुनर्वाक्यं पुत्री वल्कलधारिणी ॥४४॥ गङ्गातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम् । कांक्षमाणा पतिं शम्भुं तस्या इष्टमिदं त्विति ॥४५॥ दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यंबकाय महात्मने । शीघ्रं गत्वा भवन्तस्तु यत्र शम्भुर्महाप्रभुः ॥ ४६ ॥

कहने लगा कि मेरी पुत्री तौ वृक्षोंकी छालके वस्त्र धारण करके ॥४४॥ गंगाके किनारेपर अनशनव्रत धारणकर अत्यन्त कठिन तप कररही है और महादेवजीको पति बनाना चहाती है उसहीका मनवांछित यह काय है ॥ ४५ ॥ हे मुनिवरो ! मैं अपनी कन्या महादेवजीकोही दे चुका आप अब शीघ्र वहां पधारो जहां महादेवजी हैं और उनसे जायकर यह कहो कि प्रभो ! हिमाचलने अपनी कन्या आपके निमित्त दीनी है इसे अंगीकार

करो ऐसे उसने कहकर आपही इस कन्याके विवाहकी विधि कीजिये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जब हिमाचलने ऐसे कहा तब सप्तऋषि महादेवजीके पास गये और उनको सब समझाय बुझाय विवाहकी पक्कीकर चलेगये तब तो लक्ष्मीसे आदि लेकर सब सुरांगना और विष्णुसे आदि लेकर सब देवता ॥४८॥ छः मातृका और सब मुनि उस महोत्सवको देखनेके लिये बराती बनकर चले और महादेवजी सब देवता, मुनि, मातृका॥ ४९ ॥ आदिको संगले बैलपर चढ़कर चले जिनके चारोंओर भूतोंके गण संग होय लिये हैं, भेरी, शंख, मृदंग, पणव, मुरचंग आदि अनेकों प्रकारके बाजे बजने

प्रीत्या हिमवता दत्तां गृहणेति निवेद्य च । भवन्त एव कुर्वन्तु चैतद्वैवाहिकीं क्रियाम् ॥४७॥इत्युक्तास्ते हिमवता तमामन्त्र्य शिवं ययुः । लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्ण्वाद्या देवता अपि॥४८॥षण्मातरोऽथ मुनयो द्रष्टुं जग्मुर्महोत्सवम् । शिवः सर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा ॥४९॥ अन्वितो वृषभारूढः प्रमथानां गणैर्वृतः । भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यैः काहलीपटहादिकैः ॥ ५० ॥ ब्रह्मघोषैर्बन्दिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम् । सुमूहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥ ५१ ॥ विवाहमकरोच्छैलः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । महोत्सवस्तदा चासीत्त्रिलोक्यां प्राणिनां नृप॥५२॥ महोत्सवे निवृत्ते तु शङ्करो लोकशङ्करः।रेमे स्वच्छन्दया देव्या लोकधर्माननुव्रतः॥५३॥

लगे ॥ ५० ॥ बंदीजन अनेक प्रकारके शब्द कहते जांय हैं वेदकी ऋचाके पाठ ऋषी जन करे हैं ऐसे हिमाचलकी पुरीमें प्रवेश करतेभये फिर सुन्दर मुहूर्तमें शुभ लग्नमें शुभ ग्रहोंकी दृष्टिमें ॥५१॥ हिमाचलने अत्यन्तही प्रसन्न मनसे विवाह कर दिया हे राजन् ! त्रिलोकीके प्राणीमात्र इस उत्सवके आनंदमें डूब रहेथे ॥ ५२ ॥ इस महोत्सवके पूर्ण होनेपर सम्पूर्ण लोकोंके कल्याणकरनेहारे शंकर लौकिक धर्मोंका पालन करके

पार्वतीके संग स्वच्छन्दतासे रमण करने लगे ॥ ५३ ॥ सम्पूर्ण ऋद्धि सिद्धियोंसे युक्त हिमालयकी शिखरपर जो इन्द्रके भवनकीउपमाके समान है नन्दिनीके तीरपै वनके बीच रात्रिमें जहां मदवाले भौंरे गुंजार करे हैं, पक्षी कुहुकर रहे हैं, और शब्द कररहे हैं ऐसे स्थानमें महादेवजी दिव्य सहस्रवर्षपर्य्यन्त रमण करते भये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ राजा इन्द्रने स्त्रियोंको वर दिया था कि उस कालमें पुरुषसंसर्ग करनेसे स्त्रियोंका गर्भ निश्चय

ऋद्धिमद्धिमवद्गेहे देवेन्द्रभवनोपमे । शर्वर्यां नन्दिनीतीरे वनराजिषु शङ्करः ॥ ५४ ॥ मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमण्डिते । दिव्य वर्षसहस्राणि रमे स्वच्छन्दया विभुः ॥ ५५ ॥ स्त्रीणामिन्द्रवराभावात्तस्मिन् काले नृपोत्तम । पुंसंसर्गात्पुनर्गर्भो नारीणां स्रवति ध्रुवम् ॥ ५६ ॥ प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हराद्भुत । देवानामभवच्चिन्ता पुत्रालाभाद्धराद्विभो ॥ ५७ ॥ सर्वे संगत्य संमन्त्र्य मिथ एवं बभाषिरे । कामीवाभूद्गतौ नित्य सक्तो देव्या हरः स्वराट् ॥ ५८ ॥ नास्माकं सिध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य स्रवात् ॥ पुना रतिर्यथा माभूत्तथास्माभिर्विधीयताम् ॥ ५९ ॥

गिरजाय ॥ ५६ ॥ जब महादेवजी पार्वतीके संग नित्यप्रति रमण करने लगे और गर्भकी स्थिति न हुई तब तो सब देवताओंको बडी घोर चिन्ता उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ और सब मिलकर आपसमें इस बातका विचार करने लगे कि, क्या कारण है महादेवजी नित्यप्रति पार्वतीके संग रमणमें प्रवृत्त होवे हैं ॥ ५८ ॥ ऐसे नित्यही गर्भस्राव होजानेसे हमारे कार्यकी सिद्धि कठिन है सो अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि महादेवजी

फिर रति करनेमें प्रवृत्त न होय॥५९॥ऐसे आपसमें कहकर थोडी देरतक विचारते रहे कि क्या कर्त्तव्य है फिर यह बात ठहरी कि इस कार्यको अग्निही करसके हैं सो अग्निका अत्यन्त सन्मान कर कहने लगे ॥ ६० ॥ हे अग्ने ! तूही देवताओंका मुख है तूही बंधु है और अब तेरेही हाथमें सब बात हैं तू अबही वहां जा जहां महादेवजी रमण करे हैं ॥ ६१ ॥ जब वे रमण करचुके तब तू प्रकट होकर सम्मुख चल जाइयो जिससे वे फिर रमण करनमें प्रवृत्त न हों तुझे देखकर पार्वतीभी लज्जाके मारे वहांसे हट जायगी ॥ ६२ ॥ तब तू शिष्य होकर कामारि श्रीशिवजीसे तत्त्वप्रश्न करियो,

मिथ एवं तु सभाष्य विचिन्वन् क्षणमत्र ते । अग्निं कृत्ये विनिश्चित्य ह्यूचुर्मानपुरःसरम् ॥ ६० ॥ त्वं मुखोऽग्ने हि देवानां त्वं बन्धुर्गतिरेव च । इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै हरः ॥ ६१ ॥ रत्यन्ते दर्शयात्मानं यथा न स्यात्पुना रतिः । त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी ततश्चापसरेद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ शिष्यो भूत्वा तु रत्यन्ते पृच्छ तत्त्वं स्मरान्तकम् । तत्त्वसंप्रश्नव्याजेन कालं बहु नय प्रभो ॥६३॥ बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्यति । देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरोमित्युक्त्वा हरं ययौ ॥६४॥ वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नी रतान्तरे । तं दृष्ट्वा व्रीडिता देवी विवस्त्रा विमना ययौ ॥ ६५ ॥

ऐसे तत्त्वप्रश्नके बहानेसे महादेवजीका बहुतसा समय लगाय दीजो ॥ ६३ ॥ ऐसे बहुत काल व्यतीत होजानेदर पार्वतीसे स्वामि कार्तिकका जन्म होगा जब देवताओंने ऐसे प्रार्थना करी तब अग्निने कहा अच्छा मैं जाताहूं यों कह महादेवजीके पास गया ॥ ६४ ॥ परन्तु वीर्यके स्खलितहोनेसे पहिलेही रमणसमय अग्नि चलागया उसे देखकर नंगी होनेके कारण पार्वतीको बडी लज्जा उत्पन्न हुई और मन खिन्न होगया ॥ ६५ ॥

और रमणको छोड़ अलग हटगई तब महादेवजीको बड़ा क्रोध हुआ और अग्निसे बोले हे दुर्मते ! इस अस्खलित वीर्यको तू ग्रहण कर ॥ ६६ ॥ हे दुष्ट मेरा वीर्य दुःसह है तैंने रतिमें विघ्न किया है इससे अपने वीर्यको तेरे मुखमें त्यागूंगा ॥ ६७ ॥ ऐसे कह अग्निमुखमें वीर्य छोड देते भर, उस प्रचंड वीर्यके उदरमें प्रवेश होनेसे वह जलने लगा और चिंता करता हुआ स्वर्गलोकको गया अत्यन्त कठिनतासे प्राण बचगये तब देवताओंसे सब

रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः। वह्निं प्राह गृहाणेदमविसृष्टं तु दुर्मते ॥६६॥ मद्वीर्यं दुःसहं पाप रतिविघ्नस्त्वयाभवत्। उत्सृजामि च मद्वीर्यं त्वन्मुखे हव्यवाहन॥ ६७॥ इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यं हव्यवाहमुखे हरः।तच्छ्रुत्वा दह्यमानः सन् स्वोदरे वीर्यमुल्बणम् ॥ ६८॥ चिन्तयानो ययौ धाम देवानां यज्ञपूरुषः। कथंचित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ देवा वह्नीरितं श्रुत्वा हर्षशोकौ समीययुः। स्थितं वीर्यमिति ह्लादं कथं तु प्रसवो भवेत् ॥ ७० ॥ इति दुःखं तदा चासीद्वह्नेः कुक्षौ तु शांभवम्। ववृधे तेजसा क्षिप्तं दशमासा गतास्तदा ॥७१॥ नापश्यत्प्रसवोपायं बहुदुःखपरायणः। देवान्वै शरणं प्राप गर्भमोचनहेतवे॥७२॥

वृत्तान्त कहा ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ अग्निकी बात सुनकर देवताओंको हर्ष शोक दोनों हुए वीर्यके स्थिर होजानेसे तौ आह्लाद हुआ परन्तु प्रसव कैसे होगा ॥ ७० ॥ इस बातसे अत्यन्त दुःख हुआ और अग्निके उदरमें महादेवजीका तेजोमय वीर्य बढने लगा यहां तक कि दस महीने व्यतीत होगये ॥ ७१ ॥ जब प्रसवका कोई उपाय नहीं हुआ तब अत्यन्त दुःखसे दुःखी होकर गर्भके प्रसवके हेतु देवताओंकी शरण गया ॥ ७२ ॥

तब सब देवता अग्निको संग लेकर महायशस्विनी गंगाके पास गये और सब मिलकर स्तुति करनें लगे ॥ ७३ ॥ हे मातः ! तू ही संपूर्ण देवताओंकी माता है तू ही जगदीश्वरी है हे भद्रे ! तू देवताओंके निमित्त शंकरके इसतेजको धारण कर ॥ ७४ ॥ यहजो अग्निके गर्भ बढ़ रहाहै सो स्त्री न होनेसे गर्भका प्रसव नहीं होवाहै अतएव तू इस अग्निपर और हम सबपर दया करके हमारी रक्षा कर ॥ ७५ ॥ ऐसे प्रार्थना करनेपर

ते देवा वह्निना साकं प्रापुर्गङ्गां यशस्विनीम् । गङ्गास्तोत्रेण ते स्तुत्या प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ७३ ॥ त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेव जगतां पतिः । देवतार्थं तु त्वं भद्रे धत्स्व तेजस्तु शाम्भवम् ॥ ७४ ॥ तद्वह्नेर्वर्धते गर्भो न स्त्रीत्वात्प्रसवोऽस्य च । तस्मादेनं च नः सर्वान् समुद्धर दयां कुरु ॥ ७५ ॥ इत्येवं प्रार्थिता देवी तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् । देवास्तु वह्नये प्राहुर्मन्त्रं गर्भविमोचनम् ॥ ७६ ॥ तन्मत्राद्गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः । गङ्गायां शाम्भवं तेजो भास्वल्लोकसुदुःसहम् ॥ ७७ ॥ सा.वोढा कतिचिन्मासान्न शशाक ततः परम् । निर्जला तत्प्रभावेण स्फुटद्रक्तकलेवरा ॥ ७८ ॥ बहुदुःखाकुला देवी पातिव्रत्यप्रभावतः । उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लोकैकपावनी ॥ ७९ ॥

गंगाने कहा ' तथास्तु ' तब देवताओंने अग्निको गर्भमोचन मंत्रका उपदेश किया ॥ ७६ ॥ उस मंत्रसे गर्भका आकर्षण कर उस शंकरके तेजको अग्निने गंगामें छोड़ दिया यह तेज बड़ा दीप्तिमान् और लोकोंमें असहनीय था ॥ ७७ ॥ कुछ मास पर्य्यन्त गंगाने उसे सहन किया उसके सहनेमें असमर्थ होगई उसके प्रभावसे जल सूखगया और रक्त कलेवर दिखाई देने लगा ॥ ७८ ॥ पातिव्रत्यके प्रभावसे देवी अत्यन्त दुःखसे

व्याकुल होगई तब लोकपावनी गंगा अपने उदरस्थगर्भको त्याग देती भई ॥ ७९ ॥ और सर्पतेनमें गेरती भई उन सर्पतोंसे विदीर्ण होयकर उस गर्भके छः भाग होगये ॥ ८० ॥ तब ब्रह्माकी भेजीहुई छः कृत्तिका आईं उन्होंने शरकांडसे विभिन्न शांभव तेजके छः भागोंको ग्रहणकर ॥८१॥ छः मुखका पुरुष बनाया परन्तु उसके देह एकही था ऐसे ब्रह्माकी आज्ञासे उन कृत्तिकाओंने उसको बहुत दृढ करदिया॥८२॥ यह पुरुषाकार छः

शरकाण्डे तु चिक्षेप दह्यमानं समन्ततः । शरकाण्डैस्तु संभिन्नः षोढा भिन्नो बभूव ह ॥ ८० ॥ षट्कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तथा । शरकाण्डे विनिर्भिन्नं षोढा सन्धाय शाम्भवम् ॥ ८१ ॥ षण्मुखं पुरुषं कृत्वा त्वेकदेहमिति स्फुटम् । कृत्तिका विधिनाज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे दृढम् ॥ ८२ ॥ तद्देहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकाण्डगम् । अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकाण्डेषु वै चिरम् ॥ ८३ ॥ एकदा वृषभारूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ । श्रीशैलं गन्तुमनसौ तत्स्थलं परिजग्मतुः ॥ ८४ ॥ तदासीत्पार्वती देवी सद्यः- स्नुतपयोधरा । विस्मिता वचनं रुद्रं स्नुतौ कस्मात्पयोधरौ ॥ ८५ ॥ कारणं ब्रूहि विश्वात्मन्नित्युक्तस्तु हरोऽब्रवीत् । शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुत्रोऽधो वर्तते तव ॥ ८६ ॥

मुखकी देह बहुतकालपर्य्यन्त शरकांडोंके बीचमें वैसेही पडी रही कोई उसका रक्षक नहीं था ॥ ८३ ॥ एक दिन बैलपर चढेभये महादेव पार्वती श्रीशैलको जाय रहेथे सो मार्गमें उस स्थानपर होयकर गये ॥ ८४ ॥ उस समय पार्वतीके स्तनोंमें दूधकी धार ढरकने लगी और विस्मित होय महादेवजीसे बोली महाराज ! अकस्मात् मेरे स्तनोंमेंसे दूधकी धार बहनेका क्या कारण है ॥८५॥ हे विश्वात्मन् ! इसका कारण कहिये तब महादेव

बोले हे देवि! जो कुछ मैं कहूं तू सुन तेरा पुत्र यहां नीचे पडाहै ॥ ८६ ॥ एक समय तू और मैं रमण कररहेथे वीर्य स्खलित नहीं होने पायाथा इतनेहीमें अग्नि आगया तू उसे देख लज्जाकेमारे अन्यत्र हट गई ॥ ८७॥ तब मैंने क्रोधसे वह वीर्य अग्निके मुखमें छोड दिया जब वह न सहसका तब उसने देवताओंकी कृपासे गंगामें छोडदिया ॥ ८८ ॥ जब गंगाभी जलने लगी तब उसने शरकंडोंमें छोड दिया वहां शरकंडोंमें उसके छः भाग

त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टं प्रागेवागाद्धविर्वहः । तं दृष्ट्वा व्रीडिता त्वं वै प्रविष्टा च स्थलान्तरम् ॥ ८७ ॥ मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्वणम् । देवानां च प्रसादेन गङ्गायां व्यसृजद्विभुः ॥८८॥ गङ्गा च दह्यमाना सा चिक्षेप च शरान्तरे । तत्र षोढा प्रभिन्नं तु मातृभिश्च दृढीकृतम् ॥ ८९ ॥ पुरुषाकृतिमापेदे त दृष्ट्वा ते स्तनौ स्नुतौ । पालनीयं महावीर्यं विष्णुना समविक्रमम् ॥९०॥ अयमेवौरसः पुत्रस्तव भाति विनिश्चितम् । तस्माद्गृहाण शीघ्रं त्वं तेन ख्यातिरतीव ते ॥ ९१ ॥ इत्याज्ञप्ता शंभुना सा तमादायार्भकं द्रुतम् । अङ्कमारोप्य तं देवी पाययामास सा स्तनौ ॥ ९२ ॥

होगये और मातृकाओंने आकर उसे दृढ करदिया ॥८९॥ उसकी पुरुषकीसी आकृति होगई है उसीको देखकर तेरे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगाहै. इसका पराक्रम विष्णुके समान होगा तू इसका पालन पोषण कर ॥९०॥ यही तेरा औरस पुत्रहै इसे उठाय कर शीघ्र लेचल । इसके द्वारा तेरी बडी प्रशंसा होयगी ॥९१॥महादेवजीकी बात सुन पार्वतीने उस बालकको शीघ्र उठालिया और अपनी गोदीमें स्थापितकर दूधपान करावी हुई ॥९२॥

महादेवजीसे मोहित कीहुई देवी पुत्रके स्नेहमें तत्पर होयगई और महादेवजीके संग कैलासको जातीभई ॥ ९३ ॥ ऐसे पुत्रपर लाड प्यार करतीहुई देवी अत्यन्त सन्तुष्ट होती भई हे राजन् ! यह कुमारके जन्मकी कथा मैने तेरे सामने कही है ॥ ९४ ॥ जो इसे नित्यप्रति सुनेहैं उनके पुत्रपौत्रादिकी वृद्धि होतीहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९५ ॥ महादेवजीकी अप्रसन्नतासे उसके जननेमें अत्यन्त कष्ट हुए हैं जो प्रीतिपूर्वक वैशाखके धर्मोंका

देवेन मोहिता देवी पुत्रस्नेहपराभवत् । पुनः कैलासमगमत्प्रभुणा सह शाङ्करी ॥९३॥ पुत्रं लालयती देवी संतोषं परमं ययौ । एवं कुमारजननं वर्णितम् ते मयाद्भुतम् ॥९४॥ य इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजननं शुभम् । पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नात्र संशयः ॥ ९५ ॥ महद्दुःखं तु जनने हरस्याप्रियतोऽभवत् । प्रीत्यानुश्रुतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमोऽभवत् ॥९६॥ तस्माद्वैशाखधर्मो हि सर्वाघौघविनाशनः । अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसम्पद्विधायकः ॥ ९७ ॥ अनङ्गोऽपि हि साङ्गत्वं यत्प्रभावात्समाप्तवान् । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो यस्य वै गतः ॥ ९८ ॥

श्रवणकरैहै उसके समान कोई नहीं है ॥ ९६ ॥ इस कारणसे वैशाखमें कियेहुए धर्मही सम्पूर्ण पापोंके नाशकरनेवाले हैं इसमें धर्म करनेसे स्त्रियोंका विधवापनेका योग मिटजाता है इसमें बड़ा पुण्य होता है और सम्पूर्ण प्रकारकी संपत्तियां मिलती हैं ॥ ९७ ॥ इसके प्रभावसे अनंग कामदेव भी सांग होगया जो इस मासको विना स्नान किये वा बिना दान किये व्यतीत करदेय है ॥ ९८ ॥

तौ बहुतसे धर्म करनेपरभी दुःखोंकी अधिकता होती है, जो इस एक ही मासमें धर्म करलेय तौ संपूर्ण धर्मोंके लिये हितकारी है ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरोषसंवादे हरपुत्रोत्पत्तिकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ मैथिल बोला; कि हे ब्रह्मन् ! आपने कामदेवकी स्त्री रतिका चरित्र वर्णन किया और जैसे देवताओंका बताया हुआ जो अशून्य शयनका व्रत धारण किया वह मैने सब सुना । अवश्य व्रतके धारण करनेकी विधि वणन कीजिये ॥ १ ॥ इसमें क्या दान करना चाहिये, उसकी विधि क्या है, पूजनकी क्या विधि है और उसका फल क्याहै हे

अपि धर्मकृतो वापि भवेद्दुःखपरम्परा । सर्वधर्मो हितः स्याच्च यद्येकोऽयमनुष्ठितः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे हरपुत्रोत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ छ ॥ मैथिल उवाच ॥ यत्कामपत्न्या चरितमशून्य शयनव्रतम् । देवोपदिष्टं तस्यास्य विधानं ब्रूहि भूसुर ॥ १ ॥ किं दानं को विधिस्तस्य पूजनं किं फलं तथा । एतदाचक्ष्व भूदेव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् । अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम् ॥ ३ ॥ येन चीर्णेन देवेशो जीमूताभः प्रसीदति । लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथः समस्ताघौघनाशनः ॥ ४ ॥

भूदेव! यह सब मेरे सामने कहिये, इन बातोंको जाननेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है ॥२॥ यह सुनके श्रुतदेव कहने लगे, हे राजन् ! यह व्रत बड़े पापोंका नाश करता है, इसका नाम अशून्यशयन व्रत है इसका विधान हरि भगवान्‌ने लक्ष्मीसे कहा था सो सब मैं तेरे सामने कहूं हूं ॥ ३ ॥ इस व्रतके करनेसे देवोंके देव, श्यामवर्ण, लक्ष्मीपती, जगन्नाथ, सम्पूर्ण पापोंके नाशकर्त्ता प्रसन्न होय जाते हैं ॥ ४ ॥

हे राजन् ! इस पापनाशक व्रतके कियेबिना जो गार्हस्थ्य धर्ममें प्रवृत्त होय जाय हैं उनका सब करना निष्फल होता है ॥५॥ हे महीपते ! श्रावण शुक्ला द्वितीयाके दिन इस अशून्यशयन नाम सर्वोत्तम व्रतको धारण करै ॥६॥ चातुर्मास्यमें हविष्यान्नका भोजन करै फिर चातुर्मास्य व्यतीत होने पर सम्यक् पारण करै ॥७॥ तथा लक्ष्मीनारायणका पूजन करै पारणाके दिन भक्ष्य भोज्यादि चार प्रकारके भोजन करै ॥८॥ फिर किसी ब्राह्म

अकृत्वा यस्त्विदं राजन् व्रतं पातकनाशनम् । गार्हस्थ्यमनुवर्तेत तस्येदं निष्फलं भवेत् ॥ ५ ॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते । अशून्यशयनाख्यं तद्ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ चातुर्मास्ये तु संप्राप्ते हविष्याशी भवेन्नरः । चतुर्भिः पारणं मासैः सम्यङ्निष्पाद्यते प्रभो ॥ ७ ॥ लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयो जनार्दनः । पारणे दिवसे प्राप्ते भक्ष्यं चैव चतुर्विधम् ॥८॥ उपायनं च दातव्यं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । सौवर्णीं राजतीं वापि मूर्तिं कुर्यान्मनोरमाम् ॥ ९ ॥ पीताम्बरधरां दिव्यां वनमालाविभूषिताम् । शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजत्येपुरुषोत्तमम् ॥ १० ॥ शय्यादानैर्वस्त्रदानैर्विप्राणां भोजनैस्तथा । दम्पत्योर्भोजनैश्चैव दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥ एवं तु चतुरो मासान् पूजयित्वा जनार्दनम् । मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्ववद्धरिम् ॥ १२ ॥

णको उपायन देवै सोने अथवा चांदीकी मनोहर मूर्ति बनवावै॥९॥पीतांबर धारण करावै सुंदर वनमालासे आभूषित करै तथा सफेद पुष्प और सुगंधित द्रव्योंसे पुरुषोत्तम भगवान्का पूजन करै ॥१०॥ फिर ब्राह्मणोंको शय्यादान वस्त्रदान देवै,ब्राह्मण भोजन करावै,ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनोंको संग भोजन करावै, दक्षिणा देयकर पूजन करै ॥११॥ ऐसे नित्यप्रति चार मासतक जनार्दन भगवान्का पूजन करता रहै फिर मार्गशीर्षादि मासोंमें पूर्ववत् हरिभ

गवान्‌का पूजन करे ॥१२॥ रक्तवर्ण हरि भगवान्‌का रुक्मिणीसहित ध्यान करै ऐसे चैत्रसे चारमासपर्य्यन्त हरिभगवान्‌का पूजन करता रहे॥१३॥भूमिमें आसन बिछाय भक्तिपूर्वक हरिभगवान्‌का पूजन करै जिनकी सनकादिक ऋषि स्तुति करेंहैं और कल्मषरहित ॥ १४ ॥ ऐसे इस व्रतको आषाढकी द्वितीयाके दिन समाप्त करै ॥ उस दिन अष्टाक्षर(ओं नमो नारायणाय)इस मंत्रसे हवन करै ॥१५॥मार्गशीर्षादिमासोंमें पारणोंके दिन विष्णु गायत्री

रक्तवर्णं हरिं ध्यायेद्रुक्मिणीसहितं तथा । चैत्रादिचतुरो मासानेवं संपूजयेत्ततः ॥१३॥ भूम्यासनस्थितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम् । सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानमकल्मषम् ॥ १४ ॥ आषाढस्य च मासस्य द्वितीयायां समापयेत् । अष्टाक्षरेण मंत्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ १५ ॥ मार्गशीर्षादिमासानां पारणे भूमिपालकः । जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनां निबोधय ॥ १६ ॥ पौरुषेण च मंत्रेण जुहुयादनले शुभे । पञ्चामृतं पायसं च अपूपं घृतपाचितम् ॥ १७ ॥ एवं क्रमेण द्रव्याणि प्रतिमासु निबोधय । स्नानं तु प्रथमं दद्याल्लक्ष्मीनारायणस्य च ॥ १८ ॥ सौवर्णीं मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः । राजतीं त्वन्तिमे दद्याद्वराहस्य महात्मनः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः । वस्त्रयुग्मैरलङ्कारैर्यथावित्तानुसारतः ॥ २० ॥

(नारायणाय विद्महे)इस मंत्रसे हवन करे ॥ १६ ॥ और चैत्रादि मासोंमें 'सहस्रशीर्षा' इस पुरुषसूक्त मंत्रसे हवन करै, पंचामृत, घृतपक्व, मालपुआ भोगके लिये करावै ॥१७॥ इस प्रतिमाके सन्मुख निवेदन करै पहिले लक्ष्मीनारायणको स्नान करावै ॥१८॥ बीचमें कृष्ण महाराजकी सुवर्णकी प्रतिमा देवै अंतमें वाराहजीकी चांदीकी प्रतिमा देवै॥१९॥फिर केशवादि नामसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै, श्रद्धाके अनुसार दो वस्त्र और अलंकारादि दे॥२०॥

पूजन कर घृतपक्व मालपूवा उपायनार्थ ब्राह्मणके निमित्त बारहवें दिन देवै ॥२१॥ फिर पूर्वकल्पित प्रतिमाको संपूर्ण अलंकारोंसे आभूषित कर आचार्यको दे और शय्याका संकल्प करें ॥ २२ ॥ उसपर लक्ष्मीनारायणका विधिवत् पूजन करै कांसीके पात्र दे ॥ २३ ॥ अपूर्व वस्त्र अलंकार और दक्षिणाके संग किसी उत्तम वैष्णव और कुटुम्बी ब्राह्मणको दे ॥२४॥ ब्राह्मणकी विधिवत् पूजा करै और ब्राह्मणभोजन करावै ॥ दानमंत्र—हे

अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान् घृतपाचितान् । उपायनार्थे विप्रेभ्यो द्वादशेऽह्नि निवेदयेत् ॥ २१ ॥ आचार्याय ततो दद्यात् प्रतिमां पूर्वकल्पिताम् । शय्यां संकल्पितां पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ २२ ॥ तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणं परम् । कांस्यपात्रेण सहितामपूर्वैर्बहुभिस्तथा ॥ २३ ॥ वस्त्रालङ्कारसहितां दक्षिणाभिस्तथैव च । ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुम्बिने ॥ २४ ॥ दातव्या विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् । दानमंत्रः—लक्ष्म्या अशून्यशयनं यथा तव जनार्दन ॥ २५ ॥ शय्या ममाप्यशून्या स्याद्दानेनानेन केशव । एवं संप्रार्थ्य देवेशं स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ २६ ॥ पुरुषो वा सती वापि विधवा वा समाचरेत् । अशून्यशयनार्थं च कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ २७ ॥

जनार्दन ! जैसे आपकी शय्या लक्ष्मीसे अशून्य है वैसेही हे केशव ! इस शय्यादानसे मेरी भी शय्या अशून्य होय ! ऐसे भगवान्‌की प्रार्थना कर आप भोजन करै ॥ २५ ॥ २६ ॥ पुरुष, सौभाग्यवती स्त्री अथवा विधवा अशून्य शयनके निमित्त इस व्रतको धारण करै ॥ २७ ॥

एवं तव मयाख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम । सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः प्रजाः ॥ २८ ॥ तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपि दुर्लभाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ २९ ॥ अवश्यं गन्तुकामेन तद्विष्णोः परमं पदम् । एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥ इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तं मुनिम् । वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद ॥ ३१ ॥ शृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् । इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्द्धनम् । प्रत्युवाच महाभागं श्रुतदेवो महायशाः ॥ ३२ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ वैशाखे घर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम् ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! यह अशून्यशयन व्रत विस्तारपूर्वक मैंने तेरे सामने वर्णन किया, इसके करनेसे जगन्नाथ भगवान् प्रसन्न होते हैं ऐसे भगवान्के प्रसन्नतासे देवताओंकोभी दुर्लभ कार्योंकी प्राप्ति होती है और अनेक प्रजाओंकी वृद्धि होती है इसकारणसे जैसे बने वैसे यह व्रत करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ जो मनुष्य विष्णुधाममें जानेकी इच्छा करें हैं उनको अवश्यही इस व्रतको करना चाहिये, यह तो सब वर्णन होगया, अब तेरी और क्या सुननेकी इच्छा है सो कह ॥३०॥ यह सुनके राजाने फिर श्रुतदेवजीको पूछा हे महाराज ! वैशाखमें छत्रदानका क्या माहात्म्य है ? सो अब मेरे सामने विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ३१ ॥ वैशाखमें कर्तव्य शुभकर्मोंको सुनते २ मेरी तृप्ति नहीं होती है ऐसे यशवर्धक और पुण्यवर्धक राजाके वचन सुन श्रुतदेवजी उस महाभाग राजासे कहने लगे कि जो धूपसे सताये महात्माओंको वैशाखमें ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥

छत्रीका दान करते हैं उनको अनन्त फल मिला है यहां मैं प्राचीन इतिहास कहूं हूं ॥ ३४ ॥ यह इतिहास वैशाखमें किये छत्रदानकी सूचना करे है, सत्ययुगमें एक हेमकांत नाम वंगदेशमें राजा होता हुआ ॥३५॥ यह कुशकेतुका पुत्र बडा धीमान् शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ था, एक दिन शिकार खेलता खेलता गहन वनमें चलागया ॥३५॥ वहां अनेक प्रकारके मृग और शूकरोंको मारता हुआ जब बहुत थकगया तब दुपहरके समय मुनियोंके आश्रममें

ये कुर्वन्त्यातपत्राणं तेषां पुण्यमनन्तकम् । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ ३४ ॥ वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा कृतयुगे कृतम् । वङ्गदेशे पुरा कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुतः ॥ ३५ ॥ कुशकेतोः सुतो धीमान् राजा शस्त्रभृतां वरः । एकदा मृगयासक्तो गहनं वनमाविशत् ॥ ३६ ॥ तत्र नानाविधान् हत्वा मृगान् क्रोडादिकान् बहून् । श्रान्तो मध्याह्नवेलायां मुनीनामाश्रमं ययौ ॥ ३७ ॥ तदा शतर्चिनो नाम ऋषयः शंसितव्रताः । समाधिस्था न जानन्ति बाह्यकृत्यं तु किंचन ॥ ३८ ॥ तान् दृष्ट्वा निश्चलान् विप्रान् क्रुद्धो हन्तुं मनो दधे । भूपं निवारयामास शिष्याणामयुतं तदा ॥ ३९ ॥ दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरवस्तु समाधिगाः । नो जानन्ति बहिःकृत्यं तस्मात्क्रोधं न चार्हसि ॥ ४० ॥

पहुंचा ॥ ३७ ॥ उस समय शतर्चि नाम ऋषि व्रतमें मग्न समाधि लगाये ध्यानकररहेथे उनको यह नहीं मालूम हुआ कि आश्रममें कौन आया है ॥३८॥ उन ऋषियोंने उठकर कुछ सम्मान नहीं किया ज्योंके त्यों निश्चल बैठे रहे यह देख क्रोधकर उन्हें मारनेकको उद्यत हुआ तब उन ऋषियोंके दश सहस्र शिष्य उसे निवारण करते हुए ॥३९॥ बोले कि हे दुर्बुद्धे ! सुन हमारे गुरु समाधिस्थ हैं उनको यहभी मालूम नहीं है कि बाहर क्या

होरहाहै तू क्रोध करनेको योग्य नहीं है ॥ ४० ॥ जब शिष्योंने यह कहा तब क्रोधमें विह्वल होकर कहने लगा हे ब्राह्मणो ! मैं थक गया हूं तुमही मेरा आतिथ्य सत्कार करो ॥ ४१ ॥ जब राजाने यह कहा तब शिष्य बोले हम भिक्षुक विना गुरुकी आज्ञाके क्या करें ॥ ४२ ॥ हम तो गुरुके आधीन हैं, आपका आतिथ्य कैसे करसकते हैं जब शिष्योंने ऐसे प्रत्युत्तर दिये तब उनहीके मारनेके लिये राजाने धनुष

ततः शिष्याननुवाचेदं वचनं क्रोधविह्वलः । यूयं कुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रान्तस्य मे द्विजाः ॥ ४१ ॥ एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम् । नाज्ञप्ता गुरुभिर्भूप वयं भिक्षाशिनः कथम् ॥ ४२ ॥ गुरुतन्त्राः कथं कर्तुमातिथ्यं न वयं क्षमाः । प्रत्याख्यातो नृपः शिष्यैस्तान् हन्तुं धनुराददे ॥ ४३ ॥ मृगदस्युभयादिभ्यो बहुधा रक्षिता मया ॥ ते म मेवोपशिक्षन्ति मया दत्तप्रतिग्रहाः ॥ ४४ ॥ एते मां न विजानन्ति कृतघ्ना भूरि मानिनः । अतोऽपि मे न दोषः स्यादेतान् वै ह्याततायिनः ॥४५॥ एवं विक्रुद्धमानः सञ्छरान्मुञ्चयशरासनात् । तान् विद्रुताननुद्रुत्य जघ्ने शिष्यशतत्रयम् ॥ ४६ ॥ दुद्रुवुर्भयतः सर्वे विहायाश्रममञ्जसा । विद्रावितेषु शिष्येषु बलादाश्रमसंस्थितान् ॥ ४७ ॥

उठालिया ॥४३॥ मैंने तुम्हारी दस्यु और पशुओंसे अनेकवार रक्षा की है, मुझहीसे तो तुमने प्रतिग्रह लिया है और मुझहीको शिक्षा देते हो ॥ ४४ ॥ ये कृतघ्नी अपनेको बहुत बडा मानते हुए मुझे भूलगये हैं, ये बडे आततायीहैं इनके मारनेमें कुछ दोष नहीं है ॥४५॥ ऐसे अत्यन्त क्रोधकर धनुषसे बाण छोडता हुआ, जब वे भागने लगे तब उन्हें रोककर उनमेंसे तीनसौ शिष्य मारगेरे ॥ ४६ ॥ तब तो डरकेमारे बाकीके सब शिष्य आश्रमको

छोड छोडकर भागगये जब सब शिष्य भागगये तब आश्रममें घेरीहुई वस्तुओंको ॥४७॥ पापमें हैं बुद्धि जिसकी ऐसे सेनाके लोग उन सब वस्तुओंको लेलेते गये और सबने खूब यथेष्ट भोजन किये इसमें राजाभी अनुमोदन करताथा ॥ ४८ ॥ तब सायंकालके समय सब सेनाको संग लिये राजा पुरीके भीतर आए, तदन्तर कुशकेतु अपने बेटाके दुष्ट व्यवहारको सुनकर ॥ ४९ ॥ अपने बेटाकी बहुत निंदा करके पुरसे बाहर निकाल देता हुआ।

सभाराश्वगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः। यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः ॥ ४८ ॥ ततः सेनावृतो राजा पुरीमागाद्दिनात्यये। कुशकेतुस्ततः श्रुत्वा तनयस्य विचेष्टितम् ॥ ४९ ॥ पुरान्निर्यातयामास गर्हयन् गर्हयन् सुतम्। राज्यानर्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूमिप ॥ ५० ॥ पित्रा त्यक्तस्ततो राजा हेमकान्तोऽतिविह्वलः। वनं विवेश गहनं हत्याभिश्च सुपीडितः ॥५१॥ बहुकालमवासीच्च गह्वरे निर्जने वने। आहारं कल्पयामास व्याधधर्मसुपाश्रितः ॥ ५२ ॥ न कापि स्थितिमापेदे हत्यया भिद्रुतो भृशम्। अष्टाविंशतिवर्षाणि गतान्यस्य दुरात्मनः ॥ ५३ ॥

हे राजन्! क्षमाहीन पुरुष राज्यासनके योग्य नहीं होता है इससे उसे देश निकाला दे दिया ॥५०॥ जब पिताने उसे त्याग दिया तब राजा हेमकान्त विह्वल होयकर एक गहनवनमें चलागया वहां उसे उन ब्राह्मणोंकी हत्या सताने लगी ॥ ५१ ॥ उस गह्वर निर्जन वनमें बहुतकालपर्य्यन्त वास करता हुआ और जीवजन्तुओंको मारमार कर पेट भरने लगा ॥५२॥ उन हत्याओंके पापसे उसकी कहींभी स्थिति न हुई यहांका वहां मारा मारा फिरने

लगा ऐसे उस दुरात्माके अट्ठाईस वर्ष व्यतीत होय गये ॥५३॥ एक दिन तीर्थयात्रा करते करते त्रितनामक महामुनि वैशाखके महीनामें दुपहरके समय उस वनमें चले गये ॥ ५४ ॥ वह मुनीश्वर धूपसे व्याकुल होय रहेथे, तृषाके मारे पीडित होय रहेथे, कहीं वृक्षहीन स्थानमें वह ऋषि मूर्छित होयकर गिरपडे ॥५५॥ दैवयोगसे वह हेमकांत त्रितमुनिको देखता हुआ और राजाओंमें अधम उसके हृदयमें तृषार्त, मूर्छित और थकेहुए उस ऋषिको देखकर

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन त्रितो नाम महामुनिः । तस्मिन्नरण्ये वैशाखे रवौ मध्यंदिने गते ॥ ५४ ॥ गच्छन्नातपविक्लान्तस्तृषया चातिपीडितः । क्वचिद्वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्च्छितोऽभवत् ॥५५ ॥ दैवाद्दृष्ट्वा हेमकान्तस्त्रितं नाम महामुनिम् । तृषार्तं मूर्च्छितं श्रान्तं कृपां चक्रे नृपाधमः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मपत्रैस्तदा छत्रं कृत्वा चातपवारणम् । मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलाबुस्थं जलं ददौ ॥ ५७ ॥ लब्धसंज्ञोऽभवत्तेन ह्युपचारेण वै मुनिः । पत्रच्छत्रं क्षत्रदत्तं गृहीत्वा गतविक्लमः ॥५८॥ ग्रामं कश्चिच्छनैः प्राप्य किंचिदाप्यायितेन्द्रियः । तेन पुण्यप्रभावेण ब्रह्महत्याशतत्रयम् ॥ ५९ ॥ विनष्टमभवत्तस्य क्षणादेव महात्मनः । ततो विस्मयमापन्नो हेमकान्तो महारथः ॥ ६० ॥

दया उत्पन्न होय आई ॥५६॥ और ढाकके पत्तोंकी छत्री बनाय धूप निवारण करनेके लिये मुनीश्वरके शिरपर लगाई और अलाबुका जल दिया॥५७॥ इस उपचारसे मुनीश्वरकी मूर्छा जाती रही, और चेतकर सावधान होय क्षत्रीके दियेहुए उस पत्तोंके छत्रको लेकर ॥ ५८ ॥ इंद्रियोंमें बल आजानेसे धीरे २ किसी गांवमें पहुंचा इस पुण्यके प्रभावसे उसकी तीनसौ ब्रह्महत्या ॥ ५९ ॥ क्षणभरमें दूर होयगई तब हेमकांतको बडा विस्मय हुआ ॥६०॥

बहुधा प्राणियोंको पीड़ा देताथा उसकी ब्रह्महत्या कैसे दूर होयगई, किसने दूर कर दीनी, कहां गई और क्या हेतु है ॥ ६१ ॥ ऐसे ब्रह्महत्याओंसे मुक्त होनेकी चिंता करने लगा जब राजा ऐसे अज्ञानमें स्थित था तब उस महात्मा वनमें रहनेवाले हेमकान्तको लेनेके लिये यमके दूत आये और उसका प्राण नष्ट करनेके लिये ग्रहणी रोगको उत्पन्न करते हुये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ जब प्राणोंके वियोगमें आर्त हुआ तब उसे

बहुधा पीडयमानस्य ब्रह्महत्याः कथं गताः । केनापि निष्कृता ह्येता क्व गताः केन हेतुना ॥ ६१ ॥ इत्येवं चिन्तयामास ब्रह्महत्याविमोचनम् । एवं चाज्ञस्थिते राज्ञि यमदूता अथागमन् ॥६२॥ नेतुमेनं महात्मानं हेमकान्तं वने स्थितम् । ग्रहणी जनयामासुः प्राणान् हर्तुं महात्मनः ॥ ६३ ॥ तथा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन् ददर्श ह । यमदूतान् महाघोरानूर्ध्वकेशान् भयङ्करान् ॥ ६४ ॥ चिन्तयानः स्वकर्माणि तूष्णीमासीत्तदा नृपः । छत्रदानप्रभावेण जाता विष्णुस्मृतिर्नृप ॥ ६५ ॥ तेन स्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनं स्वमन्त्रिणम् । उवाच तूर्णं त्वं गच्छ यमदूतान्निवारय ॥ ६६ ॥ वैशाखधर्मनिरतं हेमकान्तं तु पालय । निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः ॥ ६७ ॥

तीन पुरुष दिखाई देने लगे, बडे २ भयंकर यमदूत जिनके शिरपर बाल ऊंचे खड़ेथे राजाको डराने लगे ॥ ६४ ॥ तब अपने कर्मोंको विचारता हुआ राजा मौन साधगया फिर उस छत्रदानके प्रभावसे वह विष्णुभगवान्का स्मरण करने लगा ॥ ६५ ॥ तब तो विष्णुभगवान्ने अपने महामंत्री विष्वक्सेनको आज्ञा दी कि तुम जल्दी जाकर यमदूतोंको रोको ॥६६ ॥ और वैशाख मासके धर्ममें निरत हेमकांतकी रक्षा करो यह निष्पाप है,

मेरा भक्त है तथा मेरे कहे हुए वाक्योंसे इसके पिताके पुरमें जायकर इसके पिता कुशकेतुसे कहो यह तेरा पुत्र सब धर्मोंसे हीन तथा ब्रह्मचर्यादिसे रहित है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ परंतु वैशाखके धर्ममें निरत होनेसे मेरा प्यारा है इसमें संशय नहीं है, तेरे पुत्रने बड़े २ पाप किये हैं परन्तु इसनेधूपसे व्याकुल मुनिकी रक्षा करी ॥ ६९ ॥ वैशाखमें छत्री दान करनेसे यह निस्सन्देह निष्पाप होय गया है, उस ही पुण्यके प्रभावसे यह शान्त जितेन्द्रिय और चिरंजीव हो गया है ॥ ७० ॥ अब शूरता उदारता आदि गुणोंद्वारा तेरे समान होय गया है अतएव तू अपने इस पुत्रको जो बड़ा बलवान्है,

मदीरितेन वाक्येन कुशकेतुं च बोधय । सर्वधर्मोज्झितो वापि ब्रह्मचर्यादिवार्जितः ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः । कृतागाश्चापि त्वत्पुत्रो मुनित्राणपरायणः ॥ ६९ ॥ वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नात्र संशयः । तेन पुण्यप्रभावेण शान्तो दान्तश्चिरायुषः ॥ ७० ॥ शौर्यौदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽयं गुणैरपि । तस्मादेनं राज्यभारे संस्थापय महाबलम् ॥ ७१ ॥ विष्णुनैवं समाज्ञप्तमित्यादिश्य नृपोत्तमम् । पितुर्वंशे हेमकान्तं स्थाप्यायाहि च मां पुनः ॥७२॥इत्यादिष्टो भगवता विष्वक्सेनो महाबलः। हेमकान्तं समासाद्य यमदूतान्निवार्य च॥७३॥पाणिना शन्तमेनैव परपर्शाङ्गेषु भूमिपम् । भगवद्भक्तसंस्पर्शाद्धतव्याधिःक्षणादभूत्॥७४

राज्यका भार सौंप दे ॥७१॥ और कुशकेतु राजासे कहियो कि यह सब विष्णुभगवान्की आज्ञा है ऐसे राजाको समझाय बुझाय हेमकान्तको उसके पिताके पास भेजके मेरेपास आय जाइयो ॥ ७२ ॥ ऐसे भगवान्की आज्ञा पाय महाबली विष्वक्सेन यमदूतोंको निवारणकर हेमकांतके पास जाय ॥ ७३ ॥ उसके देहको अपने हाथसे स्पर्श किया, भगवान्के पार्षदके स्पर्श करते ही क्षण भरमें उसकी सब व्याधि दूर होय गयी ॥ ७४॥

फिर विष्वक्सेन हेमकांतको अपने संग ले नगरमें जाताहुआ जिसे देख कुशकेतुको बडा आश्चर्य हुआ ॥७५॥ और भक्तिपूर्वक शिर नवाय पृथ्वीमें गिर दंडवत्कर भगवान्‌के पार्षदको घरके भीतर लेय जाता हुआ ॥७६॥ तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर अनेक उपचारोंसे पूजन करताहुआ तब विष्वक्सेन प्रसन्न होय कहता हुआ ॥ ७७ ॥ हेमकांतको आगेकर जो जो बात विष्णुभगवान्‌ने कही वह उससे सब कही यह सुनतेही कुशकेतुने

विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ । त दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा कुशकेतुर्महाप्रभुः ॥ ७५ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या दण्डवत् पतितो भुवि । गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः ॥ ७६ ॥ स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः पूजयामास वैभवैः । तस्मै प्रीतमनाः प्राह विष्वक्सेनो महाबलः ॥ ७७ ॥ हेमकान्तं समुद्दिश्य यदुक्तं विष्णुना पुरा । तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्च पुत्रं राज्ये निवेश्य च ॥ ७८ ॥ विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभार्यो वनमाविशत् । विष्वक्सेनो हेमकान्तमनुमंत्र्याभिपूज्य च ॥ ७९ ॥ श्वेतद्वीपं ययौ धीमान् विष्णुपार्श्वे महामनाः । हेमकान्तस्ततो राजा वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ ८० ॥ विष्णुप्रीतिकरान् धर्मान् प्रतिवर्षं चकार ह । ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥ ८१ ॥

अपने पुत्रको राज्यासनपर बैठा दिया ॥ ७८ ॥ और आप विष्वक्सेनकी आज्ञाके अनुसार अपनी स्त्रीसहित तप करनेके लिये वनमें चलागया और विष्वक्सेन हेमकांतको अनुमंत्रण कर तथा धन्यवाद देकर ॥७९॥ विष्णुभगवान्‌के पास श्वेतद्वीपको चलागया तब राजा हेमकांत वैशाखमासमें कहेहुए शुभ धर्मोंको करता हुआ ॥८०॥ प्रतिवर्ष ऐसे ऐसे धर्म करता रहा जिनसे विष्णुभगवान् प्रसन्न हुए ब्राह्मणोंमें भक्ति करने लगा धर्मके मार्गमें

स्थित, शांत दांत जितेन्द्रिय ॥ ८१ ॥ संपूर्ण जीवोंपर दयालु, संपूर्ण यज्ञोंमें दीक्षित, सर्व संपत्तियोंसे युक्त, पुत्रपौत्रादिसे संपन्न होता हुआ फिर संपूर्ण भोगोंको भोगकर विष्णुलोकको चलागया ॥ ८२ ॥ वैशाखमासके धर्मोंसे अधिक कोई धर्म नहीं हैं ये धर्म सुखपूर्वक होय है और इनके करनेमें पुण्यभी बहुत होय है ये धर्म पापरूपी इंधनको जलानेके लिये अग्निके समान हैं सुलभ है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयके दाता

दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । प्रवृद्धः सर्वसंपद्भिः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः । भुक्त्वा भोगान्समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ८२ ॥ नेक्षेतु वैशाखसमांश्च धर्मान् सुखप्रयत्नान् बहुपुण्यहेतून् । पापेन्धनाद्याग्निनिभान्सुलभ्यान् धर्मादिमोक्षान्तपुमर्थहेतून् ॥८३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ छ ॥ मैथिल उवाच ॥ वैशाखधर्माः सुलभाः पुण्यराशिविधायकाः । विष्णुप्रीतिकराः सद्यः पुमर्थानां तु हेतवः ॥ १ ॥ न प्रख्याताः कथं लोके शाश्वताः श्रुतिचोदिताः । प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि भूरिशः ॥ २ ॥

है ॥८३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकांतस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ तदनन्तर राजा मैथिल पूछने लगा कि, हे महाराज ! जो वैशाखके धर्म आपने वर्णन किये हैं वे बडे सुलभ हैं और अने पुण्योंके करनेहारे हैं जिनसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होय हैं और तत्काल अर्थ धर्म काम मोक्षके देनेवाले हैं ॥ १ ॥ ऐसे वेदविहित धर्म संसारमें विदित नहीं हैं राजसधर्म और

तामसधर्म तो अनेकों प्रकारके प्रख्यात हैं ॥ २ ॥ जो बडे कठिन साध्य हैं, जिनमें बहुतसा यत्न करनापडे है और द्रव्यभी बहुत लगाना पडे है कोई तो माघमासकी प्रशंसा करें हैं, कोई चातुर्मास्यको उत्तम कहें हैं ॥ ३ ॥ कोई २ व्यतीपातादि धर्मकी बडी बडाई करें है सो हे प्रभो ! यह क्या बात है मेरे सामने विस्तारपूर्वक कहिये ॥४॥ श्रुतदेव बोले-हे राजन् ! वैशाखके कर्त्तव्य धर्म प्रख्यात क्यों नहीं सो मैं तेरे सामने कहूंहूं और

दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः । केचिन्माघं प्रशंसन्ति चातुर्मास्यान् परे जगुः ॥ ३ ॥ व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयन्तीह भूरिशः । एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतुकामाय मे वद ॥ ४ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि न प्रख्याता इमे कथम् । इतरेषां च धर्माणि कथं ख्यातिश्च भूतले ॥ ५ ॥ राजसास्तामसा भूमौ बहवः कामुका जनाः । इच्छन्त्यैहिकभोगांस्ते पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥ ६ ॥ क्वचित्कथंचन क्वापि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः । स्वर्गाय यतते लोके तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः ॥ ७ ॥ कुरुते प्रियत्नेन मोक्षं नोपासते नरः । क्षुद्राशा भूरिकर्माणो जनाः काम्यानुपासते ॥ ८ ॥

अन्य धर्मोंकी संसारमें ख्याति क्यों है ॥ ५ ॥ संसारमें रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्य बहुत हैं जो इस संसारके भोगोंकी रात्रिदिन इच्छा करें है और पुत्र, पौत्र तथा धनसंपत्तिकी सदा चाहना करें हैं ॥६॥ कोई कहीं किसी तरहसे भी एकादि मनुष्यही स्वर्गके लिये बडो कठिनतासे प्रयत्न करे हैं अत एव यज्ञादिक क्रियाओंको करताहै ॥७॥ परन्तु मोक्षका उपाय कोई भी नहीं करता । बडे २ कर्मद्वारा तुच्छ आशाके हेतु अपने अभीष्ट कार्योंकी

सिद्धि चाहें हैं ॥८॥ इसी कारणसे राजस और तामस धर्म संसारमें प्रख्यातहैं और जो भगवान् के प्रसन्न करनेहारे सात्त्विक धर्म हैं, वे प्रख्यात नहीं हैं ॥ ९ ॥ ये धर्म बडे निष्कामिक हैं इनसे ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होय हैं, भगवान्की मायासे घेरे भये जीव मूढबुद्धिवाले इन्हें नहीं जाने हैं ॥ १० ॥ जसे आधिपत्यके प्राप्त होनेपर सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होय हैं और मोहनार्थ स्थलमें प्राप्तहुआ आधिपत्य नष्ट नहीं होय

प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि तेन वै । न ख्याताः सात्त्विका धर्मा हरिप्रीतिकरा इमे ॥ ९ ॥ निष्कामिका इमे धर्मा ऐहिकामुष्मिकप्रदाः । न जानन्ति जना मूढा मोहिता देवमायया ॥१०॥ यथाधिपत्ये संप्राप्ते सर्वः सिद्धो मनोरथः । मोहनार्थं स्थलं प्राप्तमाधिपत्यं न हीयते ॥ ११ ॥ कारणं च प्रवक्ष्यामि गोपने भूतलेऽञ्जसा । यद्वैशाखोक्तधर्माणां सात्त्विकानां नृणामिह ॥ १२ ॥ सार्वभौमः पुरा काश्यामिक्ष्वाकुकुलभूषणः । कीर्तिमानिति विख्यातो नृगपुत्रो महायशाः ॥ १३ ॥ जितेन्द्रियो जित-क्रोधो ब्रह्मण्यो राजसत्तमः । एकदा मृगयासक्तो वसिष्ठाश्रममाययौ ॥ १४ ॥ गच्छन्मार्गे ददर्शासौ वैशाखे धर्मनिष्ठुरे । भूयो भूयः कार्यमाणाञ्छिष्यैस्तस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

है ॥११॥ इसका कारण कहे हैं यह पृथ्वीमें गोपनीय है, यह वैशाखके कहेहुए धर्मोंमें सतोगुणी मनुष्योंका धर्म है ॥ १२ ॥ इक्ष्वाकुके कुलका भूषण काशीपुरीमें नृगका पुत्र सार्वभौम बडा यशस्वी कीर्तिमान् नामवाला हुआ ॥ १३ ॥ यह जितेन्द्रिय, क्रोधका जीतनेवाला, ब्रह्मण्य और राजाओंमें उत्तम था एक दिन आखेट करता हुआ वशिष्ठजीके आश्रममें जा पहुंचा॥१४॥ मार्गमें उस राजाने महात्मा वशिष्ठजीके शिष्योंको

देखा जो वैशाखके धर्मोंके करनेमें बारंबार प्रवृत्त होय रहे थे ॥ १५ ॥ कहीं तो प्याऊ लगाय रहे हैं कहीं छायामंडप बनवावे हैं, कहीं निर्मल वापी करवारहे हैं ॥ १६ ॥ कहीं सुख पूर्वक बैठे हुओंकी पंखोंसे पवन कर रहे हैं, कहीं सुगंधित द्रव्य और सुन्दर फलोंको दे रहे हैं ॥ १७ ॥ मध्याह्नके समय छत्रीका दान करे हैं सायंकालके समय पीनेके द्रव्य देय हैं कहीं तांबूल देय हैं कहीं नेत्रोंमें कपूर लगावे हैं ॥ १८ ॥ कोई धनी छायाके वनमें

क्वचित्प्रपां प्रकुर्वन्ति छायामण्डपमेव च । तटप्रपातं निस्तीर्यं वापीं कुर्वन्ति निर्मलाम् ॥ १६ ॥ सूपविष्टान् क्वचिद्वृक्षे व्यजनै र्वीजयन्ति च । क्वचिद्ददुर्हीक्षुदण्डान् क्वचिद्गन्धान् क्वचित्फलम् ॥ १७ ॥ मध्याह्ने छत्रदानं च सायाह्ने पानकस्य च । क्वचिद् यच्छन्ति तांबूलं नेत्रे कर्पूरलेपनम् ॥ १८ ॥ सुच्छाये च वने केचित्सुसंमृष्टाङ्गणेषु च । केचिदास्तरयन्त्यद्धा वालुकानि हितानि च ॥ १९ ॥ कुर्वन्त्यान्दोलिकां राजन् वृक्षशाखावलम्बिनीम् । के यूयमिति पप्रच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन् ॥ २० ॥ किमे तदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः । पुमर्थहेतव इमे क्रियन्तेऽस्माभिरञ्जसा ॥ २१ ॥ वसिष्ठस्याज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपसत्त मम् । एतदाचरणे पुंसां किं फलं कस्तु तुष्यति ॥ २२ ॥

झाड बुहार स्थानको स्वच्छकर ठंढी बालू बिछावे हैं ॥ १९ ॥ कोई वृक्षकी शाखामें झूला गेर रहे हैं ऐसे देख राजाने पूछा तुम कौन हो वे बोले हम वशिष्ठजीके शिष्य हैं ॥ २० ॥ यह क्या कर रहेहो ? वे बोले हम वैशाखमें कर्तव्य धर्मोको करे हैं इनके करनेसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मिले हैं ॥ २१ ॥ यह सब हम वशिष्ठजीकी आज्ञासे कररहे हैं ऐसे जब राजासे कहा तब राजाने फिर पूछा है कि इन धर्मोंके करनेसे क्या फल

मिलताहै और इनसे कौनसी देवता प्रसन्न होयहै ॥ २२ ॥ जैसे जैसे आपने सुनी है सो सब मेरे सामने कहो यह सुन वे राजासे कहने लगे ॥ २३ ॥ हे राजन् हमतो हमारे गुरुकी आज्ञासे मार्गमें इन सत्कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त होय रहे हैं हमें इतना अवकाश नहीं है कि तुमसे सब बात कहैं तुम हमारे गुरुके पास जायकर पूछो ॥ २४ ॥ वह महायशस्वी इन सम्पूर्ण धर्मोंके तत्वको जानते हैं, वशिष्ठके शिष्योंकी यह बात सुन राजा वहांसे

एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथाश्रुतम् । इति राज्ञा तु संपृष्टाः प्रत्यूचुस्ते महीपतिम् ॥ २३ ॥ गुरोराज्ञाक्रमेणैव कुर्वतां पथि सत्क्रियाः । नास्माकमवकाशोऽत्र गुरुं पृच्छ यथोचितम् ॥ २४ ॥ स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान्महायशाः । इति शिष्यैर्वसिष्ठस्य प्रत्युक्तस्तु द्रुतं ययौ ॥ २५ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं विद्यायोगोप बृंहितम् । समायान्तं नृपं वीक्ष्य वसिष्ठः प्रीतमानसः ॥२६॥ आतिथ्यं विधिवच्चक्रे सानुगस्य महात्मनः । सूपविष्टः कृतातिथ्यः प्रीतः पप्रच्छ तं गुरुम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ मार्गे दृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैश्च कृतं शुभम् ॥ मया पृष्टं च तैर्नोक्तं क्रियमाणं शुभावहम् ॥ २८ ॥

शीघ्र ही चल दिया ॥ २५ ॥ वशिष्ठजीका आश्रम पुण्यरूप विद्या और योगका स्थान था राजाको अपने आश्रममें आया देख वशिष्ठजी बडे प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और सहचरोंसमेत उस महात्माका अतिथिसत्कार किया जब वह अच्छी तरह बैठ गया तब अत्यन्त प्रफुल्लित चित्तसे अपने गुरुसे पूछने लगा ॥ २७ ॥ हे गुरो ! मैंने मार्गमें बडा आश्चर्य देखा कि, आपके शिष्य बडे शुभकर्मोंके करनेमें प्रवृत्त होय रहे हैं परन्तु मैंने पूछाकि यह

तुम क्या कर रहे हो तब मुझको न बतलाया और कहने लगे ॥२८॥ हमको इस धर्मकी प्रशंसा करनेका अवकाश नहीं है हमको तो जैसे हमारे गुरुने बताया है उस धर्मके करनेमें प्रवृत्त होय रहे हैं ॥ २९ ॥ गुरुके पास जाओ सो मैं आपके पास आया हूं, मेरा मन आखेटमें था शरीर थकगयाथा मैं आतिथ्यकी इच्छासे आताथा ॥ ३० ॥ सो मार्गमें मैने आपके शिष्योंको यह पुण्यकर्म करते हुए देखा तब हे मुनीश्वर ! इन

नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने । कर्तव्या च क्रियास्माभिर्गुरुणा या च चोदिता ॥ २९ ॥ गुरुं गच्छेति तैरुक्त आगतोऽहं तवान्तिकम् । मृगयासक्तचित्तेन श्रान्तेनातिथ्यमिच्छता ॥३०॥ दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्च कारितम् । जिज्ञासासीत्ततः श्रोतुं धर्मानेतान्मुनीश्वर ॥ ३१ ॥ त्वमादिरादिमान्न धर्मान् समाचरसि वै यतः । तान् धर्माञ्छ्रोतुकामाय शिष्याय प्रणताय च ॥ ३२ ॥ श्रद्दधानाय मे ब्रूहि विस्तरान्मुनिपुङ्गव । इतीक्ष्वाकुकुलीनेन राज्ञा पृष्टो महायशाः॥३३॥ मनसा तोषमापेदे सम्यक पृष्टोऽधुना मुनिः । अहो व्यवसिता बुद्धी राजँस्तेद्य सुशिक्षिता ॥ ३४ ॥

धर्मोंके पूछनेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हुई हे प्रभो ! आप सब जाने हैं और इन धर्मोंको करैभी हैं उन्हीं धर्मोंके सुननेकी मेरी अभिलाषा है मैं आपका शिष्य हूं आपको नमस्कार करताहूं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वर ! बडी श्रद्धाहै आप मेरे सामने विस्तारपूर्वक कहिये जब इक्ष्वाकुवंशके भूषण राजाने यह पूछा ॥३३॥ वशिष्ठजी मनमें बडे प्रसन्नहुए और कहने लगे हे राजा ! तेरी बुद्धि बडी सुन्दर है और सुशिक्षितभी है॥३४॥

जो तेरी बुद्धि विष्णुभगवान्‌की कथामें और धर्मोंके आचरण करनेमें ऐसी सद्भावसे प्रवृत्त हुईहै ये तेरे सुकृत फलीभूत होयगये हैं ॥ ३५ ॥ ऐसे कह हर्ष जिनको उत्पन्न हो आया ऐसे वशिष्ठजी राजासे कहनेलगे हे राजन् ! जो प्रश्न तुमने कियाहै अब हम उसका वर्णन करतेहैं ॥ ३६ ॥ इसके श्रवण करनेहीसे सम्पूर्ण पाप दूर होय जायहै, जो सब धर्मोंको छोडकर विषयासक्त हो जाता है वहभी ॥ ३७ ॥ यदि वैशाखमें प्रातःकाल स्नान

यस्माद्विष्णुकथायां च तद्धर्माचरणेऽपि च । मतिरात्यन्तिकी जाता सुकृतं फलितं तव ॥ ३५ ॥ इति सम्भाष्य राजानं जातहर्षस्तमब्रवीत् । शृणु भूप प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥ ३६ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः । सर्वधर्मान् परित्यज्य वर्तते विषयात्मकः ॥ ३७ ॥ वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः । साङ्गान् धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः ॥ ३८ ॥ स्नानदानार्चनैः पुण्यैस्तस्य दूरतरो हरिः । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ ३९ ॥ कर्मणा स तु चाण्डालो नात्र कार्या विचारणा । वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाराधितो हरिः ॥ ४० ॥

करै तो वह मधुसूदन भगवान्‌का प्यारा होय जायहै जिसने सांगोपांग सब धर्म किये हैं परन्तु वैशाखमें अनादर कियाहै ॥ ३८ ॥ तो वह प्राणी कैसेही स्नान, दान अर्चन और पुण्य करै हरि भगवान् उससे दूरही रहे हैं जिसने वैशाखको विना स्नान किये वा विनादान किये खो दिया॥३९॥ वह इस कर्मसे चांडाल होताहै इसमें कुछ विचार नहीं है, वैशाखमें कहेहुए सर्वोत्कृष्टधर्मद्वारा जिनने हरि भगवान्‌का आराधन कियाहै ॥ ४० ॥

उसीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं और उसकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं लक्ष्मीपति जगन्नाथ सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेहारे ॥ ४१ ॥ थोडेही धर्मसे प्रसन्न होय जायहैं बहुत परिश्रम और धनसे प्रसन्न नहीं होतेहैं भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्का पूजन सब अभिलाषाओंके पूर्ण करता है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसी हेतुसे मधुसूदन भगवान्में सदा भक्ति करनी चाहिये जगन्नाथ भगवान्की जलसे पूजा करनेपर भी क्लेशहारी हरि ॥४३॥ ऐसे प्रसन्न

तैश्च तोषं समायाति प्रददाति समीहितम् । लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः ॥ ४१ ॥ धर्मैः सूक्ष्मैश्च प्रीणाति न प्रयासैर्धनैरपि । भक्त्या संपूजितो विष्णुः प्रददाति समीहितम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन् सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषः । जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः ॥ ४३ ॥ परितोषं व्रजत्याशु तृषार्तः सलिलैर्यथा । महदप्यल्पदं कर्म तथा ह्यल्पादि भूरिदम् ॥ ४४ ॥ कर्मणो भूरिहेतुत्वे न हेतुर्महदल्पके । किंतु कर्मस्वरूपं च गहना कर्मणो गतिः ॥ ४५ ॥ वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पायासकृता अपि । बहुव्ययविहीनाश्च विष्णोः प्रीतिकराः शुभाः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वमपि भूपाल वैशाखोक्तान् समाचार । त्वद्राष्ट्रीयैर्जनैः सर्वैः कारयेमान् शुभावहान् ॥ ४७ ॥

होय हैं जैसे प्यासा मनुष्य जलके मिलनेसे प्रसन्न होय है । बडे २ कर्म करनेसे स्वल्प फल मिले हैं और छोटे कर्मोंसे बडे फल मिल जाते हैं ॥४४॥ कर्मोंके भूरिहेतुत्वमें महाकर्म और स्वल्पकर्म हेतु नहीं है किन्तु कर्मके स्वरूप हैं कर्मोंकी बडी गहन गति है ॥ ४५ ॥ वैशाखमें जो धर्म कहेगये हैं उनमें परिश्रमभी थोडा होय है द्रव्यभी बहुत व्यय नहीं होता है परन्तु विष्णुभगवान्के प्रसन्नकरनेका सुगम उपाय है ॥ ४६ ॥ अत एव हेराजन्

तुमभी वैशाखके धर्मोंको करो और अपनी सब प्रजासेभी करावो ॥ ४७ ॥ जो नराधम वारंवार कहनेपरभी वैशाखोक्त धर्मोंको न करे उसे दंड दो ॥ ४८ ॥ ऐसे सब शास्त्रोक्त बातोंको कह पीछे वैशाखोक्त संपूर्ण धर्म कह दिये ॥ ४९ ॥ उन सब धर्मोंको सुनकर गुरुकी भक्तिपूर्वक पूजा कर राजा अपने घर चला आया और संपूर्ण धर्म करने लगा ॥५०॥ देवदेव निरंजन केशवभगवान्में बडी प्रीति करता हुआ और पद्मनाभ देवदेव

न करोति च यो धर्मान् वैशाखोक्तान्नराधमः । बहुधा शिक्ष्यमाणोऽपि स दण्ड्यस्तव भूपते ॥ ४८ ॥ इत्यावश्यकर्ता सम्यक् शास्त्रे व्युत्पाद्य तस्य च । पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान् धर्मान् प्रोवाच सर्वशः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा तान् सकलन् धर्मान् गुरुं संपूज्य भक्तितः । स राजा गृहमागत्य सर्वान्धर्मांश्चक र ह ॥ ५० ॥ भक्तिमान् केशवे राजन् देवदेवे निरञ्जने । नान्यं पश्यति देवेशात् पद्मनाभान्महीपतिः ॥ ५१ ॥ भेरीमुद्घाह्य मातङ्गे स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः । अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते ॥ ५२ ॥ प्रातर्न स्नाति मेषस्थे सूर्ये सर्वोऽपि यो जनः । स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्वास्यो विषयाद्ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वाथ सुहृज्जनः । वैशाखधर्महीनश्च निग्राह्यो दस्युवन्मया ॥ ५४ ॥

भगवान्के अतिरिक्त किसीको न देखता हुआ ॥ ५१ ॥ फिर राजाने हाथीपर ढोल धरवाय अपने राज्यभरमें मुनादी करायदीनी कि आठवर्षसे अस्सी वर्षकी अवस्थाके वृद्धतक ॥ ५२ ॥ जो कोई मेषकी संक्रांतिमें सूर्योदयसे पहिले स्नान न करैगा उसे मैं दंड देऊंगा, मारूंगा और देशसे बाहर निकाल दूंगा ॥५३॥ पिता पुत्र भार्या वा इष्ट मित्र कोई होय जो वैशाखोक्त धर्मोंका संपादन न करैगा उसको दस्युके समान समझूंगा ॥ ५४ ॥

प्रातःकाल सुन्दर जलमें स्नानकर मुख्य ब्राह्मणोंको दान दो और शक्तिके अनुसार प्याऊ लगाओ तथा अन्यधर्मोंको करो॥५५॥गांव गांवमें एक एक धर्मका उपदेश करनेवाला ब्राह्मण नियुक्त करदिया और पांच पांच गावोंके ऊपर एक अधिकारी किया ॥५६॥ ऐसे धर्महीनोंको दंड देनेके निमित्त दस दस सवार नियत किये ऐसे इस सार्वभौम राजाके शासनसे ॥५७॥ यह धर्मवृक्ष सब देशोंमें विस्तारपूर्वक फैल गया जो मनुष्य प्रमादसेभी इस राजाके

दातव्यं विप्रमुख्येभ्यः स्नात्वा प्रातर्जले शुभे । प्रपादानादिधर्मांश्च कुरुध्वं शक्तितोऽनघाः ॥ ५५ ॥ विप्रं च धर्मवक्तारं ग्रामे ग्रामे न्यवेशयत् । पञ्चानामपि ग्रामाणामकरोदधिकारिणम् ॥ ५६ ॥ दण्डार्थं त्यक्तधर्माणां दशवाजिनिषेवितम् । एवं प्रवृत्तः सर्वत्र सार्वभौमस्य शासनात् ॥ ५७ ॥ प्रवृद्धो धर्मवृक्षोऽयं सर्वदेशेषु विस्तरात् । ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः ॥ ५८ ॥ प्रसादाच्च नृपश्रेष्ठ ते यान्ति हरिमन्दिरम् । अवश्यं वैष्णवो लोकः प्राप्यते मानवैर्द्रुतम् ॥ ५९ ॥ व्याजेनापि सकृत्स्नातः प्रातर्मेषगते रवौ । सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥ ६० ॥ न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः । वैलेख्य मगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप ॥ ६१ ॥

नगरमें मरजातेथे वे सीधे विष्णुलोकको चले जातेथे अवश्यही उनको वैकुण्ठकी प्राप्ति होतीथी ॥५८ ॥ ५९ ॥ जो कोई मेषकी संक्रांतिमें प्रातःकाल किसी मिषसेभी स्नान कर लेताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको चला जाता है ॥६०॥ वैशाखमें एकवारभी स्नान करनेसे प्राणी यमलोकको नहीं जाताहै, उस सूर्यवंशी राजाने यमके लेखोंको मिटा दिया, चित्रगुप्तको लिखनेके लिए कुछ काम न रहा विष्णुलोकको जानेवाले स्वकर्मस्थ

मनुष्योंके जो पुराने पापोंके लेखथे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ वे भी सब दूर कर दिये तथा सम्पूर्ण पापी प्राणियोंसे नरक शून्य होय गये ॥ ६३ ॥ तथा वैशाखके प्रभावसे नरकका मार्ग भग्नयान होगया सम्पूर्ण मनुष्य निर्मलरूप धारण करके विष्णुलोकको जाते हुए ॥ ६४ ॥ देवताओंके भी सम्पूर्ण लोक खाली होगये जब स्वर्ग और नरक सब शून्य होगये ॥६५॥ तब नारदजी धर्मराजके पास जायकर कहने लगे हे राजन्! नरकमें

लेख्यकर्मणि विश्रान्तश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा। मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च ॥६२॥ गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात्। शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापप्राणिविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ भग्नयानोऽभवन्मार्गो वैशाखस्य प्रभावतः। सर्वेऽपि विमलाकारा जना यान्ति हरेः पदम् ॥ ६४ ॥ दिवौकसां तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाभवन्। शून्ये त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च ॥६५॥ नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह। नाक्रन्दः श्रूयते राजन् प्राक्श्रुतो नरके यथा ॥ ६६ ॥ तथा न क्रियते लेख्यं किंचिद्दुष्कृतकर्मणाम्। चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनमास्थितः ॥६७॥ कारणं ब्रूहि राजेन्द्र न यान्ति तव मन्दिरम्। मनुष्याः पापकर्माणो मायादम्भविवर्धिताः ॥ ६८ ॥

जैसे पहिले हाहाकारके शब्द सुनाई देतेथे सो अब सुनाई नहीं देतेहैं ॥६६॥ और खोटे कर्म करनेवालोंकी कुछ लिखा पढीभी नहीं होय है चित्रगुप्तभी हाथपै हाथ धरे मुनिके समान मौन भाव धारण कर स्थितहै। ६७॥ राजेन्द्र! पापकर्मके करनेवाले माया और दंभसे विवर्धित मनुष्य तेरे लोकको नहीं

आय हैं इसका कारण तो कह ॥ ६८ ॥ जब महात्मा नारदने ऐसे कहा तब धर्मराज बडी दीनतासे कहने लगा ॥ ६९ ॥ हे नारद ! आजकलजो पृथ्वीमें राजा है वह हृषीकेश पुराणपुरुषोत्तमका बडा भक्त है ॥७०॥ उसने अपने देशभरमें मुनादी पिटवाय दीनी है कि आठमेंवर्षके बालकसे अस्सीवर्षके डोकरातक जो कोई वैशाखके धर्म न करै वह दंडका भागी होगा उसके डरके मारे प्रजाके लोग वैशाखके धर्मोंका कभी उल्लंघन नही करे हैं ॥७१॥

एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना । प्राह वैवस्वतो राजा किंचिद्दैन्यसमन्वितः॥६९॥ योऽयं नारद भूपालः पृथिव्यां सांप्रतं स्थितः । सोऽतिभक्तो हृषीकेशे पुराणपुरुषोत्तमे ॥ ७० ॥ प्रबोधयति वैशाखधर्मं भेरीस्वनेन च । अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते ॥ ७१ ॥ यो वै ह्यकृतवैशाखः स मे दण्ड्यो न संशयः । तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लङ्घन्ति कदाचन ॥ ७२ ॥ गच्छन्ति वैष्णवं धाम कर्मणा तेन नारद । वैशाखसेवनाल्लोका यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ॥ ७३ ॥ तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ मार्गो लुप्तो ममाधुना । कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चापि दिवौकसाम् ॥ ७४ ॥ विश्रान्तो लेखको लेखे लिखितं मार्जितं जनैः । वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वीदृशं मुने ॥ ७५ ॥

हे नारद ! इसी कर्मसे सब मनुष्य विष्णुधामको जाय हैं वैशाखके धर्मोंको करनेसे संपूर्ण मनुष्य वैकुंठको चले जाय हैं ॥ ७३ ॥ उस राजाने मेरे लोकमें आनेका मार्ग लुप्त कर दिया है नरकलोक और देवलोक सब शून्य होय गये हैं ॥ ७४ ॥ लेखकोंको लिखनेके लिये अब कुछ नहीं है और जो पहिले लेख लिखे गये हैं वे भी सब मनुष्योंने मेट दिये हैं हे मुनिवर ! यह सब वैशाखके धर्मोंका ऐसा माहात्म्य है ॥ ७५ ॥

वैशाखमें कर्तव्य कर्मोंके करनेसे ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूटकर मनुष्य विष्णुपदको प्राप्त होवे हैं ॥७६॥ सो मैं काष्ठक समान हो गया हूं मुझे कुछ दिखाई नहीं देय है मैं उस महाबलीसे युद्धकर उसे मारूंगा ॥७७॥ जो स्वामीके कार्यको विना किये निर्व्यापार रहता है उसका वैभव नष्ट होय जाता है और वह निश्चय नरकमें जाता है ॥ ७८ ॥ जो वह मुझसे न मरैगा तौ मै ब्रह्माके पास जाय उसको सब निवेदनकर स्वस्थ हो जाऊंगा ॥७९॥

ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनैर्द्विज । कृत्वा वैशाखकृत्यानि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ ७६ ॥ सोऽहं काष्ठसमो जातो न कश्चिन्मम गोचरः । युद्धं कृत्वा तु तं हन्मि सर्वथाद्य महाबलम् ॥ ७७ ॥ अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारो यदि स्थितः । तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ यदि देवादवध्यो हि तदा ब्रह्माणमेत्य च । निवेद्य तस्मै तत्सर्वं पश्चात् स्वस्थस्थितिर्भवेत् ॥७९॥ इत्युक्त्वा द्विजमामन्त्र्य सानुगः प्रययो भुवम् । स कालो महिषारूढो दण्डमुद्यम्य भीषणम् ॥८०॥ मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः । पञ्चाशत्कोटिसंख्य.कैर्यमदूतैर्वृतस्ततः ॥ ८१ ॥ स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलां पुरीम् । शङ्खं दध्मौ महाघोरं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ ८२ ॥

ऐसे नारदजीसे सलाहकर अपने सेवकोंको संग ले पृथ्वीपर गया। कालसहित भैंसापै चढ़ भीषण दंड उठाय॥८०॥ मृत्यु रोग जरा आदि उत्कटपार्षदोंको संग ले तथा पचास कोटि यमदूतोंको ले ॥ ८१ ॥ शीघ्रही उस राजाकी पुरी जा घेरी बडा घोर शंखनाद करता हुआ जिससे संपूर्ण लोक

भयभीत होय गये ॥८२॥ जब राजाने यह सुना कि यमने यह पुरी आय घेरी तब अत्यन्त क्रोधकर अपनी सब सेना सजाय नगरसे बाहर आता हुआ ॥८३॥ उन दोनोंमें ऐसा घोर युद्ध हुआ जिससे रोमांच खडे हो गये फिर राजाने मृत्यु काल रोग यमराजके दूतोंके स्वामीको जीतकर क्षण भरमें भगादिया तब तो स्वयं यमराज बडा क्रोधकर राजाके सन्मुख आया ॥८४॥८५॥ अनेकों बाण चलाय सिंहनाद करता हुआ फिर तो राजाने

तच्छ्रुत्वा स तु राजर्षिर्ज्ञात्वा वैवस्वतं यमम् । स सज्जीकृतसर्वस्त्रः पत्तनान्निर्ययौ रुषा ॥ ८३ ॥ तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम् । मृत्युं कालं तथा रोगं यमदूतपतिं तथा ॥ ८४ ॥ जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास रोषतः । ततः क्रुद्धो यमो राजा स्वयमभ्येत्य तं रुषा ॥ ८५ ॥ युयोध बहुभिर्बाणैः सिंहनादं चकार ह । चकर्त राजा तस्यापि कार्मुकं विशिखैस्त्रिभिः ॥८६॥ पुनश्चर्मासिमादाय यमो हन्तुमथागतम् । तं दृष्ट्वा तु नृपः क्रुद्धः पुनश्छित्त्वासिचर्मणी ॥ ८७ ॥ निजघान ललाटे च शरं कालोरगप्रभम् । यमस्तेनाहतः क्रुद्धस्ततो दण्डमुपाददे ॥ ८८ ॥ ब्रह्मास्त्रेण च संमन्त्र्य दण्डं तस्मै मुमोच ह । हाहाकारो महानासीज्जनानां पश्यतां तदा ॥ ८९ ॥

तीन बाणोंसे यमराजका धनुष काटकर फैंक दिया ॥८६॥ तब तो यमराज ढाल तलवार उठाय राजाको मारनेके लिये आता हुआ उसे आता देख अत्यन्त क्रोधसे राजाने उसकी ढाल तलवारभी काट गिराई और कालसर्पकी तरह फुङ्कार मारता हुआ एक तीक्ष्ण बाण यमराजके ललाटमें मारा तब यमने क्रोध करके अपना दंड उठाया ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ और उस दंडको ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित कर राजाके ऊपर छोडता हुआ तब तो सब

मनुष्योंके देखते देखते बडा हाहाकार मचगया ॥ ८९ ॥ तब तो विष्णुभगवान्‌ने अपने भक्तकी रक्षाके निमित्त सुदर्शन चक्र छोडा सोई रणमें आय ॥९०॥ यमदंडसे युद्ध करता हुआ फिर ब्रह्मास्त्रका निवारण कर यमके मारनेको उद्यत हुआ ॥९१॥ तब तो भक्तिमान् राजा डरकर उस महा अद्भुत भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगा कि हे विष्णुभगवान्‌के हाथके आभूषण, हे सहस्रार ! तेरे लिये नमस्कार है ॥ ९२ ॥ तुझे भगवा

चक्रं विष्णुः स्वभक्तस्य रक्षार्थं प्राहिणोत्तदा । विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे ॥ ९० ॥ यमदण्डेन संयुध्य तद्ब्रह्मास्त्रं निवार्य च । यमं हन्तुमथारेभे सहस्रारं महाद्भुतम् ॥ ९१ ॥ देवभक्तस्ततो भीतस्तदास्तौच्चक्रमञ्जसा । सहस्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणिविभूषण ॥ ९२ ॥ त्वं सर्वलोकरक्षार्थं हरिणा च धृतं पुरा । त्वां याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्तं महाबलम् ॥ ९३ ॥ नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हि न चापरः । तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते ॥ ९४ ॥ नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपान्तिकम् । पुनर्ययौ महाराज देवानां पश्यतां दिवि ॥ ९५ ॥ ततो यमोऽतिनिर्विण्णो ब्रह्मणः सदनं ययौ । स ददर्श समासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम् ॥ ९६ ॥

न्‌ने संपूर्ण लोगोंकी रक्षाके लिये प्रथम धारण किया था हे विष्णुभक्त ! हे महाबली ! आज मैं तुझसे यमको मांगूं हूं ॥ ९३ ॥ देवताओंके द्रोही मनुष्योंके काल तुमही हो कोई दूसरा नहीं है इस कारणसे हे जगत्पते ! इस यमकी रक्षा करिये ॥९४॥ ऐसे जब सुदर्शनचक्रकी राजाने स्तुति की तब तो चक्र यमको राजाके पास छोडकर सब देवताओंके देखते देखते वैकुंठको चला गया ॥९५॥ तब तो यम बहुत उदास होयकर ब्रह्माजीके

पास गया ब्रह्माजीके चारों ओर मूर्तामूर्त जन बैठे हैं कैसे ब्रह्माजी हैं देवताओंके आश्रय हैं जगत्के उत्पत्तिकारण हैं संपूर्ण लोकोंके पितामह हैं संपूर्ण लोकपाल और संपूर्ण दिक्पाल उपासना कर रहे हैं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इतिहास और पुराण मूर्तिधारण करे खडे हैं समुद्र नदी और सरोवर मूर्तिमान् विराजमान हैं ॥ ९८ ॥ पीपलसे आदि लेकर संपूर्ण वृक्ष खडे हैं, मूर्तिमान् वापी कुआ तालाब और पर्वत मौजूद हैं ॥९९॥ तथा दिन

देवाश्रयं जगद्बीजं सर्वलोकपितामहम् । उपास्यमानं विविधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥ ९७ ॥ इतिहासपुराणाद्यैर्वेदैर्विग्रहसंस्थितैः । मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः ॥ ९८ ॥ देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशेषितैः । वापीकूपतडागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः ॥ ९९ ॥ अहोरात्रैस्तथा पक्षैर्मासैः संवत्सरैस्तथा । कलाकाष्ठानिमेषैश्च ऋतुभिश्चायनैर्युगैः ॥ १०० ॥ संकल्पैश्च विकल्पैश्च निमिषोन्मेषणैस्तथा । ऋक्षैर्योगैश्च करणैः पूर्णिमाशशिसंक्षयैः ॥ १ ॥ सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभालाभैर्जयाजयैः । सत्त्वेन रजसा चैव तमसा च समन्वितम् ॥ २ ॥ शान्तमूढातिघोरैश्च विकारैः प्राकृतैरपि । वायुना देवदेवेन श्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम् ॥ ३ ॥ तेषां मध्येऽविशत्सौरिः सव्रीडा च वधूर्यथा । विलोकयन् धरापृष्ठं म्लानवक्त्रं व्यदर्शयत् ॥ ४ ॥

रात पक्ष मास संवत्सर कला काष्ठा निमेष ऋतु अयन युग ॥ १०० ॥ संकल्प विकल्प निमेष उन्मेष ऋक्षयोग करण पूर्णिमा अमावास्या ॥ १ ॥ सुख दुःख भय लाभ अलाभ जय अजय सतोगुण रजोगुण तमोगुण शांत मूढ अतिघोर प्राकृत विकार कफ वात पित्त आदि सब चराचर मूर्तिमान् सेवामें खडे हैं ॥२॥३॥ उनके बीचमें यम ऐसे जाता हुआ जसे लाजकी मारे कुलवधू होय है,धरतीकी ओर देखे हैं मुख मलीन होय रहा है॥४॥

सेवकोंको संग लिये पास जाय बैठा उसे देख बडे विस्मयसे सब आपसमें कहने लगे कि यमके यहां आनेका क्या कारण है ॥५॥ कहीं सृष्टिकर्ता पितामह ब्रह्माजीके दर्शनको तौ नहीं आया है यमराजको तौ क्षणभरभी कामसे अवकाश नहीं मिले है ॥६॥ इसके यहां आनेका कारण क्या है देवता तौ कुशलसे हैं बडे ही आश्चर्यकी बात है कि इसके पटभी फटरहे हैं ॥७॥ चित्रगुप्तभी इसके पीछे पीछे ही आया है यहभी बडा दिन होय रहा है

संप्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम्। विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह ॥ ५ ॥ संप्राप्तो लोककर्तारं द्रष्टुं देवं पितामहम्।निर्व्यापारः क्षणमपि योऽयं नास्ति रवेः सुतः ॥ ६ ॥ सोऽयमभ्यागतः कस्मात् कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम्। आचर्याति क्षयो यश्च संमार्जितपटस्त्वयम् ॥ ७ ॥ लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महतान्वितः। न कदाचित्पटो ह्यस्य मार्जितो धर्मभीरुणा। ॥ ८ ॥ यन्न दृष्टं श्रुतं वापि तदिहाद्य प्रपद्यते। एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः ॥ ९ ॥ निष्पपाताग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनन्दनः। कृन्तमूलो यथा शाखी त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ १० ॥ परिभूतोऽस्मि देवेश संमार्जितपटः कृतः। त्वयि नाथे न विफलं पश्यामि कमलासन ॥ ११ ॥

कहीं इसके पट यमने तौ नहीं फाड गेरे हैं जो बात न पहिले कभी सुनी न देखी सो आज यहां उपस्थित है जब वह सब ऐसे कह रहेथे तब ही प्राणियोंका शासनकर्ता सूर्यका पुत्र यम ब्रह्माके आगे पृथ्वीपर गिरता हुआ जैसे जड जिसकी कट जाय ऐसा वृक्ष गिरता है और त्राहि त्राहि पुकारने लगा॥९॥१०॥हे देवेश ! मेरी प्रतिष्ठा भंग होय गई है मुझे खूब पीडा है मेरे पट लूट लिये हैं, कमलासन ! आपके होते मेरी यह दुर्गति हुई है॥११॥

ऐसा कह मूर्छा खाय पृथ्वीमें गिर पडा तबतौ सभामें बड़ा भारी कोलाहल हुआ ॥१२॥ जो स्थावर जंगम सबका भक्षण करनेवालाहै सो यमराज दुःखार्त होयकर क्यों रोता है ॥१३॥ मनुष्योंको संताप देनेवाला यह दुःखी कैसे होय गयाहै दुष्कर्मोंका करनेवाला मनुष्य शोभाको प्राप्तनहीं होता है ॥१४॥ तब पवनने ब्रह्माकी सलाहसे उन सबकी वाणी रोंकदीनी ॥१५॥ और सबकोहटाकर धीरे२यमको अपनी बडीबडी और मोटीभुजाओंसे

एवमुक्त्वा हि निश्चेष्टो बभूव नृपसत्तम। ततः कोलाहलः शब्दः सभायां समजायत ॥ १२ ॥ यो हि खादयते मर्त्यान् सर्वान् स्थावरजङ्गमान्। स वै रुदति दुःखार्तः कस्माद्वैवस्वतो यमः ॥१३॥ जनसंतापकर्ता यः सोऽचिराद्यात्यशोभनम्। न हि दुष्कृत कर्ता हि नरः प्राप्नोति शोभनम् ॥ १४ ॥ ततो निवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा। लोकानां समवेतानां मतं ज्ञात्वा स वेधसः ॥१५॥ निवार्य लोकान् मार्तण्डि शनैरुत्थापयन्मरुत्। भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः ॥ १६ ॥ विह्वलन्तं परायत्तमासने सन्न्यवेशयत्। आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनू रवेः सुतम् ॥ १७ ॥ केन त्वमभिभूतोसि केन स्थानान्निवारितः। केनायं मार्जितो देव पटो लेखपटस्तव ॥ १८ ॥ ब्रूहि सर्वमशेषेण कुशकेतोस्त्वमग्रतः। यः प्रभुस्तात सर्वेषां स ते कर्ता ममापि च। अपह्नष्यति मार्तण्डे दुःखं हृदय संस्थितम्॥ १९ ॥

उठाया यह पवनसंसारमें विचरनेवाला बडा उदारबुद्धि है॥१६॥जो यमराज बहुत विह्वलहोय रहाथा उसे आसनपर बैठाय यह कहनेलगा॥१७॥तेरा पराभव किसने कियाहै किसने तुमको स्थानसे निकालदिया है,हे देव ! तुम्हारे वस्त्र और लेखपटकिसने मार्जित कियेहैं॥१८॥तू कुशकेतुके सामने

सब वृत्तान्त कह यह सबका प्रभु तथा मेरा और तुम्हारा भी कर्त्ता है यह यमके हृदयस्थ दुःखको दूर करैगा ॥११९॥ जब पवनने ऐसे कहा तब यमराज कुशकेतुके पुत्रके मुखकी ओर देखकर बड़े दीनस्वर और गद्गदवाणीसे सत्यबात कहने लगा॥१२०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ यम बोला हे शम्भो ! हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनो मेरा लोप होगया मैं

स एवमुक्तः श्वसनेन सत्यमादित्यसूनुर्वचनं बभाषे । विलोक्य वक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं चेदमहोऽतिदीनम् ॥ १२० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ छ ॥ यम उवाच ॥ शृणु मे वचनं शम्भो लोपितोऽहं पितामह । मरणादधिकं मन्ये मत्पदस्य च खण्डनम् ॥ १ ॥ नियोगी न नियोग्यं हि करोति कमलासन । प्रभोर्वित्तं समश्नाति स भवेत्काष्ठकीटकः ॥ २ ॥ योऽश्नाति लोभाद्वित्तानि प्रज्ञावांश्च महीपतेः । स तिर्यग्योनि नरकं याति कल्पशतत्रयम्॥३॥ निस्पृहो नाचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसंभव । भुक्त्वा तु नरकान् घोरान् स पुमान् वायसो भवेत्॥४॥

मरनेसे भी अपने पदके खंडनको अधिक मानता हूं ॥ १॥ हे कमलासन ! जो जिस कामपर नियुक्त किया जाय और वह अपने कामको न करै जो अपने स्वामीके वित्तको खाता है वह काठका कीडा अर्थात् घुन बनता है ॥ २ ॥ जो प्रज्ञावान् लोभसे राजाके वित्तको बिनाकाम खाताहै वह तिर्यक्योनिमें जायकर तीनसौ कल्पतक नरक भोगता है॥ ३॥हे ब्रह्मा ! जो निस्पृह होकर अपने स्वामीकेकार्यको संपादन नहीं करताहै वह घोरनरकोंको

भोगकर कौआकी योनि पाता है ॥ ४ ॥ अपने कार्यमें तत्पर रहकर स्वामीके कार्यको नष्ट कर देताहै वह तीनसौ कल्पतक चूहेकी योनि पाताहै ॥५॥ जो कार्यपर नियुक्त होकर कार्यके करनेकी सामर्थ्य होनेपरभी घरहीमें रह जाता है वह बिल्लीकी योनि पाता है ॥६॥ सो हे देव ! मैं आपकी आज्ञाके अनुसार प्रजाके धर्मोंका साधन करताहूं पुण्यकरनेवालेको पुण्यकर्मसे और पापीको पापकर्मसे ॥ ७ ॥ अच्छी तरह विचारकर धर्मशास्त्रके

आत्मकार्यपरो यस्तु स्वामिकार्यं विलुम्पति । भवेद्वेश्मनि पापात्मा आखुः कल्पशतत्रयम् ॥ ५ ॥ नियोगी यश्च भूत्वा वै तिष्ठन्नित्यं स्ववेश्मनि । शक्तस्तु कार्यकरणे मार्जारो जायते नरः ॥६॥ सोऽहं देव तवादेशात्प्रजा धर्मेण साधये । पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा ॥ ७ ॥ सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो । कल्पादौ वर्तमानाश्च यातना दापये प्रभो ॥८॥ कर्तुं नियोगमेवं हि त्वदीयं नैव शक्नुयाम् । राज्ञा कीर्तिमता भग्नो नियोगस्तव च क्षितौ ॥ ९ ॥ भयादस्य जगन्नाथ पृथिवी सागराम्बरा । वैशाखधर्मसहिता पालने वर्तते क्वचित् ॥ १० ॥ विहाय सर्वधर्मांश्च विहाय पितृपूजनम् । विहायाग्निसपर्यां तु तीर्थयात्रादिसत्क्रियाः ॥ ११ ॥

जाननेवाले मुनियों द्वारा कल्पके आदि वर्त्तमान जो यातना सो मैंने दीनी ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! ऐसे अब मैं आपके नियोगको करनेमें समर्थ नहीं हूं कीर्तिमान् राजाने पृथ्वीमें आपका नियोग उखाड दियाहै ॥ ९ ॥ हे जगत्पते ! इस राजाके भयके मारे समुद्रपर्यंत सब पृथ्वी वैशाखके कर्तव्य धर्मोंका पालन करे है ॥१०॥ प्रजाने सब धर्म, पित्रीश्वरोंकी पूजा, अग्निष्टोमादि यज्ञ,तीर्थ यात्रादि सब शुभ कर्म छोड़ दिये हैं ॥ ११ ॥

योग सांख्यका परित्याग कर दिया है, प्राणायाम करना छोड दिया है होम और स्वाध्यायका नामभी ग्रहण नहीं करते हैं तथा अनेक प्रकारके पापोंको करकरकेभी ॥१२॥ वैशाखमें किये हुए धर्मोंके प्रभावसे विष्णुलोकको चले जाय हैं उनकेभी पिता पितामह ॥ १३ ॥ उनकेभी पिता, पित्रीश्वरोंके पिता, तथा मातामह और उनकेभी पितासे आदि लेकर ॥ १४ ॥ तथा उनकेभी नाते और उनकेभी जनकादिकके पूर्वज विष्णु

योगसांख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राणिनिरोधनम् । त्यक्त्वा होमं च स्वाध्यायं कृत्वा पापानि भूरिशः ॥ १२ ॥ प्रयान्ति वैष्णवं लोकं कृत्वा वैशाखसत्क्रियाः । मनुजाः पितृभिः सार्धं तथैव च पितामहैः ॥ १३ ॥ तेषामतीतपितरः पितॄणां पितरस्तथा । तथा मातामहा यान्ति तेषां वै जनकादयः ॥ १४ ॥ तेषामपि च नतारो जनित्रीणां हि पूर्वजाः । एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम् ॥१५॥प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपिं मम । पितॄणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतो विभो ॥१६॥ यदेकेन कृतं कर्म तदेकेनैव भुज्यते । तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुले तु यः ॥ १७ ॥ तारयेत्तावुभौ पक्षौ षड्विंशोपर्यलं विभो । प्रियायाश्चापि वै तात सर्वे वै कुक्षिसंभवाः ॥ १८ ॥

लोकको चले जाय हैं, ये सब दुःख मेरे मस्तकको पीडा पहुंचावे हैं ॥ १५ ॥ मेरे लेखपत्र मिटायकर भार्याके पिता पितामह आदि तथा पित्रीश्वरोंके बीजसे धात्री आदिकी कुक्षिमें होनेवाले सब विष्णुलोकको चले जाय हैं ॥ १६ ॥ जो कोई एक मनुष्य कोई एक कर्म करै है उसके फलको वही भोगे है परन्तु कुलभरमें कोई एकही ऐसा धर्मात्मा होयहै जो सबको दूर करके दोनों पक्षकी छब्बीस छब्बीस पीढियोंको संसारसागरसे

पारकर देय है तथा अपनी भार्याके कुलके और वर्णसंकरतकको पार लगावै है ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! यह सब विष्णुके लोकको चले जाय हैं फिर अब इस कामपर मेरेको नियुक्त करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है॥ १९ ॥ वैशाखके धर्म कर करके मुझे त्याग सब हरिभगवान्‌के पास चले जांय हैं, तथा अपने संग अपनी इक्कीस पीढ़ीनकाभी उद्धार करे है पाप जिनके छूट गये वे ऐसे दिव्यदेह धारण करें हैं ॥ २० ॥ वे सब मेरे मार्गको छोडकर वैकुंठमें प्राप्त होय हैं वह देवताओंकी गति यज्ञादि करनेसे नहीं मिले है ॥२१॥ अनेकों तीर्थोंके करनेसे, दान करनेसे, तप करनेसे, व्रत करनेसे

तेऽपि सर्वे जगन्नाथ यान्ति विष्णोः परं पदम् । न मे प्रयोजनं देव नियोगेनेदृशेन वै ॥ १९ ॥ वैशाखधर्मनिरतः स मां त्यक्त्वा व्रजेद्धरिम् । त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य त्यक्तपापोऽतिशोभनः ॥ २० ॥ स त्यक्त्वा मम मार्गं हि प्रयाति हरिमन्दिरम् । न यज्ञैस्तादृशै र्दैवगतिं प्राप्नोति मानवः ॥२१॥ सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः । अपि वा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाप्नोति तां गतिम् ॥२२॥ प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद्भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम् । न तां गतिं यान्ति जनाश्च सर्वे वैशाखनिष्ठेन च या प्रपद्यते॥२३॥ प्रातः स्नात्वा देवपूजां च कृत्वा श्रुत्वा कथां मासमाहात्म्यसंज्ञाम्। धर्मान्कृत्वा चोचितान्वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः॥२४॥

अथवा अनेक प्रकारके धर्माचरण करनेसे वह गति नहीं मिलैहै ॥ २२ ॥ प्रयागमें पतन होनेसे, रणमें गिरनेसे, भृगुके पतनसे वा काशीमें मरनेसे जो गति नहीं मिलती है वह वैशाखके धर्मोंमें निष्ठावान्‌को सहजहीमें मिलजाती है ॥२३॥ जो कोई प्रातःकाल स्नान करके भगवान्‌का पूजनकर कथा-श्रवण करै और वैशाखका माहात्म्य सुनै और यथोचित वैष्णवीय धर्मोंका संपादन करै तो वह विष्णुलोकका अधिपति होय जाय है ॥ २४ ॥

हे ब्रह्मन् ! मेरी समझमें विष्णुलोक प्रमाण रहित है जो करोडों मनुष्योंसेभी नहीं भरै है ॥२५॥ मधुसूदन भगवान्के निवास करनेसे विकर्ममें स्थिति है जिनकी वे विकर्म रहैं हैं और जो पवित्र हैं वे पवित्र रहे आवे हैं ॥ २६ ॥ राजाकी आज्ञासे वैशाखके कर्मोंको कर करके सब मनुष्य वैकुंठको चले जांय हैं यह राजा मेरा बडा शत्रुहै और तुमारा तौ बहुतहीहै ॥ २७ ॥ हे जगत्पते ! इस राजाका निग्रह करना उचितहै संपूर्ण धर्म जिनने त्याग

अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पते । यो न पूर्येत कोटचौघैः सर्वतः कमलासन ॥ २५ ॥ माधवावसथेनेह समस्तेन पितामह । विकर्मस्था विकर्मस्थाः शुचयो शुचयस्तथा ॥२६॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि लोका यांति नृपाज्ञया । योऽस्माकं हि महच्छत्रुर्भवतां च विशेषतः ॥ २७ ॥ निग्राह्यो जगतां नाथ भवतासौ महीपतिः । हित्वा हि सकलान् धर्मान् सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ २८ ॥ असंस्कृतजना यान्ति वैकुण्ठं हरिमन्दिरम् । अस्माभिस्तु कृतोपेक्षो विष्णुपादैकसंश्रयः ॥२९॥ समस्तं नेष्यते लोकं पार्थिवो नात्र संशयः । एष दण्डः पटो ह्येषस्तव पद्भ्यां निवेदितः ॥ ३० ॥ लोकपालत्वमतुलं मार्जितं तेन भूभुजा । किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वे ॥ ३१ ॥

दिये ऐसे कुसंस्कारी मनुष्य केवल वैशाखमें स्नान करनेसे वैकुंठको चले जांय हैं जो हम उसकी उपेक्षा कर देंगे तौ केवल विष्णुभगवान्के चरणोंका आश्रय लेकर ॥ २८ ॥ २९ ॥ वह राजा इस संपूर्ण लोकको वैकुण्ठमें लेजायगा इसमें संदेह नहीं है, यह आपका दिया हुआ दंड और यह पट आपके चरणोंमें निवेदन है ॥३०॥उस राजाने अतुल लोकपालत्वका मार्जन किया है केवल माताको क्लेश देनेवाली संतानके होनेसे क्या फलहै ॥३१॥

जैसे ज्येष्ठमासमें सूर्य प्राणियोंको व्याकुल करदेता है उसी तरह जो शत्रुओंको नहीं गिराताहै वह अपनी माताके वृथाही पैदा हुआहै इसे कुपुत्री जाननी चाहिये ॥ ३२ ॥ जैसे बादलमें बिजली प्रकाशमान होयहै ऐसे उसकी कीर्ति नहीं बढै है जो विद्या वा बल करके अपने पिताका पापसे उद्धार नहीं करै है ॥३३॥ जो पुत्र धर्म अर्थ और काममें विमुख होताहै वह इस पृथ्वीमें केवल माताके उदररोगके समानहै ॥३४॥ उसे महात्मा

यो न पातयते शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः । वृथासुता हि युवतिर्जाता वेद कुपुत्रिणी ॥ ३२ ॥ न तस्याः स्फुरते कीर्तिर्घनस्थेव शतह्रदा । यः पितुर्नोद्धरेत्पापाद्विद्यया वा बलेन वा ॥ ३३ ॥ मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले । धर्मे चार्थे च कामे च यः प्रतीपो भवेत्सुतः ॥ ३४ ॥ मातृहा ह्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः । तन्माता नृपपत्नी च लोकविख्यातसत्क्रिया ॥ ३५ ॥ एकैकवीरसूर्लोके विरिञ्चे नात्र संशयः॥ यथा वै कीर्तिमान् जातो मल्लिपेर्मार्जनाय वै ॥ ३६ ॥ नेदं व्यवसितं देव केनचित्क्षत्रियेण हि । पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम् ॥ ३७ ॥ सोऽहं न जानामि जगत्पतीश ऋते क्षितीशं हरितत्परं तम् । प्रचोदयन्तं पटहंसुघोषविलोपमानं मम वेश्ममार्गम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्का०महा०वैशा०नार०यमदुःखनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥छ॥

लोग मातृघाती कहैं हैं वह पुत्र मनुष्योंमें अधम होयहै परन्तु इसकी माता राजपत्नी अपने सत्कर्मोंसे संसारमें विख्यातहै ॥ ३५ ॥ ब्रह्माने संसारमें ऐसी वीरमाता कोई कोई सजी हैं इस कीर्तिमान् राजाने मेरी लिपि दूरकर दीनी है॥३६॥ ऐसा किसी क्षत्रीने भी आजतक नहीं किया है प्रभो ! पटमार्जनकी बात तौ पुराणोंमें भी नहीं सुनी गई है ॥३७॥ हे जगत्पतीश ! इस राजाके सिवाय भगवान्में तत्पर राजा कोईभी नहीं हुआ जिसने

पटमार्जनकी घोषणा करदी और यमलोकमें आनेका मार्ग रोकदिया ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे यमदुःख निरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ब्रह्माजी कहनेलगे कि हे यम ! तुमने क्या आश्चर्यकी बात देखी तुम दुःखी क्यों होते हो सद्गुणोंमें ताप करनेसे वह ताप मरणांतिक होय है ॥१॥ उसके उच्चारणमात्रहीसे परमपदकी प्राप्ति होती है फिर राजाके शासनसे विष्णुलोकको क्यों नहीं जांय है ॥२॥

ब्रह्मोवाच ॥ किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थं खिद्यते भवान् । सद्गुणेषु कृतस्तापः स तापो मरणान्तिकः ॥ १ ॥ तस्योच्चारण मात्रेण प्राप्यते परमं पदम् । न गच्छन्ति हरेर्लोकं कथं भूपस्य शासनात् ॥ २ ॥ एकोऽपि गोविन्दकृतः प्रणामः शताश्वमे धावभृथेन तुल्यः । यज्ञस्य कर्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामी न पुनर्भवाय ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च तथा । जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाः श्वपचीं भुञ्जन्विशेषेण रजस्वलाम् । यदि विष्णुं स्मरेन्नित्यं तदाप्नोति परं पदम् ॥ ५ ॥

जो गोविन्दको एकबारभी प्रणामकर देय तौ सौ अश्वमेधयज्ञके समान फल मिलताहै, यज्ञके करनेवालोंको तौ फिर जन्म लेना पडताहै परन्तु जो हरिभगवान्को प्रणाम करतेहैं उनका फिर जन्मही नहीं होता ॥ ३ ॥ उस प्राणीको कुरुक्षेत्र जानेसे क्या है वा सरस्वतीमें स्नान करनेसे क्या है जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर हरि ये दो अक्षर विराजमान हैं ॥४॥ जो ब्राह्मण चांडाली अथवा विशेष करके रजस्वलासे संगम करता है यदि वह

नित्य प्रति विष्णुभगवान्‌का स्मरण करता है तो विष्णुलोकको चला जाता है ॥५। अभक्ष्यभक्षण करनेसे जो बहुतसे पाप संचय होयजाते हैं उन पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्‌का स्मरण करनेसे प्राणी विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्तकरताहै॥६॥ हे यम ! ऐसेही यह वैशाखमासभी विष्णुभगवान्‌को बहुत प्यारा है इसके धर्मोंके सुननेसे सम्पूर्ण पाप दूर होय जावेहैं ॥७॥ जो पुरुष वैशाखमें कहेहुए धर्मोंको करताहै, और उसके गुणानुवादोंको गानकरतेहो

अभक्ष्यभक्षणाज्जातं विहायाघस्य संचयम् । प्रयाति विष्णुसायुज्यं यतो विष्णुप्रिया स्मृतिः ॥६॥ एवं विष्णुप्रियो मासो वैशाखो नाम वै यम । यद्धर्मश्रवणादेव मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥ ७ ॥ यातीति किमु वक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः । यस्मिन् संगीतमात्रे हि प्रीयते पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥ कथं न याति च गतिं तस्यानुष्ठानतत्परः । अस्माकं जगतां नाथो जनिता पुरुषोत्तमः ॥९॥ तस्येष्टान्माधवे मासि धर्मांनेतान्करोत्ययम् । तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहायो सर्वदा स्थितः ॥ १० ॥ न तस्य भूपतिः सौरे प्रभावो मम शिक्षणे । न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥ ११ ॥

उससे भगवान् प्रसन्न होतेहैं ॥८॥ तथा वह निश्चयही वैकुंठको कैसा नहीं जाता है अर्थात् वैशाखोक्त धर्मोंका करनेवाला अवश्यही उसगतिको प्राप्त करताहीहै वह जगत्‌का स्वामी पुरुषोत्तम हमाराभी पिताहै ॥९॥ जो वैशाखके मासमें माधव भगवान्‌के प्रियधर्मोंको करताहै उसपर विष्णुभगवान् प्रसन्न होयकर सदा उसकी सहायता किया करतेहैं॥१०॥ हे सौरे !उस राजाका प्रभाव मेरे वशमें नहीं है वासुदेव भगवान्‌के भक्तोंका अशुभ कहीं भी

नहीं होयहै॥११॥उसको जन्म मृत्यु जरा व्याधि और भय कुछभी नहीं होतेहैं स्वामीका कार्य करनेमें जबतक नियुक्त पुरुषमें शक्ति रहे तबतक कार्य किये जाय तौ वह नरकगामी नहीं होता है और जब कार्य करनेकी शक्ति जातीरहे तब स्वामीसे निवेदन करदे तब उस समय सेवक अनृण होय जाताहै और वह नियोगी सुखभी पाताहै अत एव जो अपने प्रयोजनको निवेदन कर देता है वह ऋणरहित होय जाताहै और न उसे कुछ पातक रह-

जन्ममृत्युजराव्याधिभयं वाप्युपजायते । नियोगी स्वामिकार्येषु यावच्छक्तिः समीहते ॥ १२ ॥ तावता स कृतार्थः स्यान्नरका-न्नैव गच्छति । कार्ये शक्तिविनिष्क्रान्ते स्वामिने च निवेदयेत् ॥ १३ ॥ अनृणस्तावता भृत्यो नियोगी सुखमश्नुते । तस्मान्निवे-दितार्थस्य न ऋणं न च पातकम् ॥ १४ ॥ यत्ने कृते स्वकर्तव्ये नापराधोऽस्ति देहिनः । तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्न वै शोचितुम-र्हसि ॥ १५ ॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सौरिः पुनरत्यन्तखिन्नधीः । उवाच दीनया वाचा गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ १६ ॥ प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदङ्घ्रिभजनेन वै । नाहं यास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसंभव ॥ १७ ॥

ताहै ॥१२-१४॥ अपने कर्तव्यका पालन करनेपर देहधारियोंका कुछ अपराध नहीं होताहै हे यम । जब तू इस कार्यके करनेमें असमर्थ है तब तेरा क्या दोषहै तू शोच करनेके योग्य नहीं है ॥१५॥ जब ब्रह्माजीनें ऐसे कही तब तौ यम बहुतही दुःखी हुआ और आंखोंसे आंसू गेरता हुआ अत्यन्त दीनवाणीसे कहने लगा ॥१६॥ हे तात । आपके चरणोंका भजन करनेसे मुझे सब कुछ मिलगया परन्तु हे ब्रह्मन् ! अब मेरी अपने काम-

पर जानेकी इच्छा नहीं है ॥१७॥ जबतक पृथ्वीमंडलमें यह महावीर्यवान् राजा शासन करैगा हे प्रभो ! इस राजाको अपने धर्मसे चलायमान करादूंगा तब मैं कृतकृत्य होऊंगा जैसे गयामें पिंडदानकरनेवाला पुत्र होयहै हे कृपालु ! आप मेरे इस कार्यको सिद्धकर दीजिये तब मैं फिर शासन करूंगा। यमको यह बात सुनकर ब्रह्माजी बडे शोचमें डूब गये॥१८-२०॥और यमको अनेक प्रकारसे समझायकर कहने लगे हे यम ! विष्णुके

प्रशासति महावीर्ये भूपेऽस्मिन्भूमिमण्डले। चालयित्वा स्वधर्माच्च तमेकं भूपतिं विभो ॥ १८ ॥ कृतकृत्योऽस्मि तनयो गयायां पिण्डदो यथा ॥ कृपालो तदिदं कार्यं साधयस्व ममाव्यय ॥ १९ ॥ विज्वरस्तु ततो भूयः शासनं ते कराम्यहम्। श्रुत्वा ब्रह्मा यमेनोक्तं पुनश्चिन्तापरायणः ॥ २० ॥ तमुवाच पुनर्ब्रह्मा सान्त्वयन्बहुधाप्यमुम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ न निग्रह्यस्त्वया राजा विष्णु- धर्मपरायणः ॥ २१ ॥ यदिच्छलयसे कोपाद्गच्छामो ह्यान्तिकं हरेः। निवेद्य सकलं तस्मै कर्म पश्चात्तदीरितम् ॥२२॥ स एव कर्ता लोकस्य धर्मस्य परिपालकः। स च दण्डधरोऽस्माकं शास्ता कर्ता नियामकः ॥ २३ ॥ न तदुक्तेऽस्ति प्रत्युक्ति स्माकं विहिता वृष। न राजोक्तेस्तु प्रत्युक्तिर्दृश्यते क्वापि भूतले ॥ २४ ॥

धर्ममें परायण राजाका तू निग्रह नहीं करसके है ॥२१॥ जो तू कोपके मारे यही चाहेहै तो चल हम और तू दोनों विष्णुभगवान्‌के पास चलें और उनके सामने सब कथा कह सुनायें फिर जैसे वे आज्ञा करेंगे वैसेही करेंगे ॥२२॥ वेही विष्णुभगवान् संपूर्ण लोकके कर्ता और धर्मके पालनेवाले हैं वेही हमारे दंडदाता, शास्ता, और नियममें चलानेवाले हैं॥२३॥हे वृष ! भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध हम कुछ भी नही कर सकेहै और न पृथ्वीमंड-

लमें राजाकी उक्तिके प्रतिकूल कुछ दिखाई देयहै ॥२४॥ ऐसे यमको समझाय उसे संग ले ब्रह्माजी क्षीरसागरमें गये और उस चिन्मात्र निर्गुण-स्वरूप परमेश्वर अद्वितीय पुरुषोत्तम भगवान्‌की सांख्ययोग द्वारा स्तुति करतेहुए तब ब्रह्माकी स्तुति सुन विष्ण भगवान् प्रकट होतेभये ॥२५॥२६॥ तब यम और ब्रह्मा बहुत ही शीघ्र प्रणाम करते हुए और विष्णुभगवान् मेघके समान गंभीर वाणीसे कहने लगे ॥ २७ ॥ तुम यहां क्यों आये हैं

इत्याश्वास्य यमं तेन साकं क्षीराम्बुधिं ययौ । ब्रह्मा तुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणं परमेश्वरम् ॥ २५ ॥ सांख्ययोगरद्वितीयमेकं तं पुरुषोत्तमम् । आविरासीत्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा संस्तुतो हरिः ॥ २६ ॥ प्रणामं चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम् । तावुवाच महाविष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ॥२७॥ कस्माद्युवामिहायातौ किं दुःखं दनुजैरभूत् । ग्लानं यममुखं कस्मात्केन वा नतकन्धरः ॥ २८ ॥ एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तश्चाब्जजः । स्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै नराः ॥ २९ ॥ वैशाखधर्मनिरता यान्ति ते पदमव्ययम् । ततो यमपुरी शून्या तेन चातीव दुःखितः ॥३०॥ तेन युद्धं चकारासौ हन्तुं दण्डमथाददे । त्वच्चक्रेण पराभूतो ययावद्य ममान्तिकम् ॥ ३१ ॥

क्या दनुजोने तुम्हें दुःख दिया है ? यमका मुख मलीन कैसे होरहाहै इसके कंधे क्यों झुक रहे हैं ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! आप यह सब वृत्तान्त मेरे प्रति कहिये तब ब्रह्माजी बोले हे प्रभो ! आपके श्रेष्ठ दास राजाके शासनसे सब मनुष्य ॥२९॥ वैशाखके धर्मोंको करकरके आपके विष्णुपदको प्राप्त होते चले जांयहैं इसीसे यमपुरी शून्य होय गई इससे यम अत्यन्त दुःखी होयकर ॥३०॥ यह यम राजासे युद्धकरनेको गया और उसके

मारनेके लिये दंड उठाता हुआ सोई आपके चक्रने इसे परास्त करदिया तब यह दुखी होय मेरे पास आता हुआ ॥ ३१ ॥ हम आपके महात्मा भक्तोंको दंड देनेकी सामर्थ्य नहीं रखते हैं अतएव हे महाविभो ! हम आपकी शरण आये हैं ॥ ३२ ॥ इससे हे प्रभो ! उस राजाको दंड देयकर इस अपने यमकी रक्षा करिये ब्रह्माके ये वाक्य सुनकर विष्णुभगवान् हँसे और ब्रह्माजी तथा यमसे कहने लगे॥३३॥ मैं लक्ष्मीजी तथा प्राण और

न च शक्ता वयं दण्डं त्वद्भक्तानां महात्मनाम्। तस्मात्त्वामेव शरणं वयं प्राप्ता महाविभो ॥ ३२ ॥ तस्माद्भूपं दण्डयित्वा पालयैनं यमं स्वकम् ॥ इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं यममेव च ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीं वापि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथापि वा ॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथापि वा ॥ ३४ ॥ श्वेतद्वीपं च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च। शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३५ ॥ विसृज्य सकलान्भोगान्मदर्थे त्यक्तजीवितान्। मदात्मकान्महाभागान्कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥३६ ॥ तस्मात्त्वद्दुःखशमने ह्युपायं कल्पयाम्यहम्। तस्य चायुर्मया दत्तमयुतं भूपते भुवि ॥ ३७ ॥

देहका परित्याग करसकूं हूं श्रीवत्स कौस्तुभमणि तथा वैजयंतीमालाकोभी त्याग सकूं हूं ॥ ३४ ॥ श्वेतद्वीप, वैकुंठ, क्षीरसागर, शेष और गरुडको त्याग सकूं हूं परन्तु अपने भक्तको कदापि नहीं त्याग सकूं हूं ॥ ३५ ॥ भला ब्रह्माजी ! आपही बताओ कि जिसने मेरे लिये संपूर्ण भोग त्याग दिये, प्राण छोडदिये मेरे ही बीचमें अपने आत्मा लगायदीने उन्हें कैसे छोड सकूं हूं ॥३६॥ अतएव हे यम ! मैं तेरे दुःखके दूर करनेका उपाय

करूं हूं उस राजाको मैंने दशसहस्र वर्षकी आयु दीनी है ॥ ३७ ॥ उनमें आठ सहस्र तौ बीत गये और दो सहस्र वर्षोंकी आयु भोगकर वह मेरी सायुज्यताको प्राप्त होयगा ॥३८॥ तब एक वेननाम राजा बडा दुराचारी होयगा वह इन वेदोक्त सब धर्मोंका लोपकर देयगा ॥ ३९ ॥ तब वैशाखके धर्मभी नष्ट होय जांयगे फिर अपनेही पापसे वेन दग्ध होय जायगा ॥ ४० ॥ पीछे मैं पृथुका रूप धारणकर फिर धर्मोंको प्रवृत्त करूंगा

गतान्यष्टौ सहस्राणि तत्रेदानीं नरान्तक। आयुःशेषे तेन नीते मत्सायुज्यं गतेऽपि च ॥३८॥ भविष्यति ततो राजा वेनो नाम दुरात्मवान्। स लुम्पति महाधर्मान्सर्वानेताञ्छ्रुतीरितान् ॥ ३९ ॥ तदा वैशाखधर्मांश्च विच्छिन्नाः स्युर्न संशयः। स्वकृतेनैव पापेन वेनो दग्धो भविष्यति ॥ ४० ॥ पश्चादहं पृथुर्भूत्वा पुनर्धर्मान्प्रवर्तये। तदा जनेषु प्रख्यातान्वैशाखोक्तान्करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ मद्भक्तो मद्गतप्राणो यस्तु विन्यस्तसंग्रहः। एकः सहस्रे भविता तस्य प्रख्यापयेदिमान् ॥ ४२ ॥ कश्चिदेव हि जानातु धर्मानेतान्क्षितौ मम। ततस्ते भविता कार्यं मा विषीद नरान्तक ॥ ४३ ॥ दापयिष्यामि ते भागं मासेऽस्मिन्माधवेऽपि च। नरैः सर्वैश्च वैशाखधर्मनिष्ठैर्महात्मभिः ॥ ४४ ॥

और वैशाखोक्त प्रख्यात धर्मोंको मनुष्योंसे कराऊंगा ॥४१॥ जो कोई मेरा भक्तहै जिनने मेरे ऊपर प्राण लगाये हैं और सब वस्तु त्याग दीनी हैं ऐसा तौ सहस्रोंमें एकही होताहै उसको ये वैशाखोक्त धर्म कहना ॥४२॥ पृथ्वीमें मेरे इन धर्मोंकी कोई कोई ही जानैहैं इससे हे यम ! तेरे कार्यकी सिद्धि होयजायगी तू खेद मत करै ॥ ४३ ॥ वैशाखके धर्ममें निष्ठ महात्माओं द्वारा इस वैशाखमासमें भी तुझे भाग प्राप्त होयगा ॥ ४४ ॥

राजासे भी तेरा भाग मिलैगा तू खेदको दूरकर पराक्रमसे प्राप्त होनेके योग्य तेरे भागको वह राजा अपने बलकी अधिकतासे शत्रुसे ग्रहण करें हैं ॥४५॥ अपने अपने भागको ग्रहण करताहुआ भागी दुःखके योग्य नहीं है जो मनुष्य पृथ्वीमें तेरे उद्देश्यसे प्रतिदिन स्नान अर्घ्य जलकुंभ दही अन्नादिका दान न करेंगे उनके वैशाखमें कियेहुए सब कर्म निष्फल होयजायेंगे ॥४६॥४७॥अतएव उस राजाके ऊपर तू क्रोधका परित्याग कर

भूपेनापि च कालेन खेदं शमयते न च। वीर्यशुल्कं तु ते भागं शत्रोर्भुङ्क्ते बलाधिकात् ॥ ४५ ॥ गृह्णन्गृह्णन्स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति। त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहं ये नरा भुवि ॥४६॥ स्नानं चार्घ्यं सोदकुम्भं दध्यन्नं चान्तिमे दिने। वैशाखे सकलं कर्म तेषां च विफलं भवेत् ॥ ४७ ॥ तस्मात्क्रोधं त्यज नृपे भागदे मत्परायणे। ये के चापि प्रकुर्वन्ति लोके ते भागदा नराः ॥ ४८ ॥ वैशाखोक्ते महाधर्मे तेषां विघ्नं च मा कुरु। मामेव ये यजन्त्यद्धा त्वां हित्वा धर्मपालकम् ॥ ४९ ॥ मदाज्ञया महाभाग तदा दण्डं च त्वं कुरु। नृपाद्भागं दापयितुं सुनन्दं प्रेषयामि च ॥ ५० ॥ मच्छासनात्स वै गत्वा भागं ते दापयिष्यति। तिष्ठ त्येवं यमे स्वस्य सांन्नधौ गरुडासनः ॥ ५१ ॥

वह राजा तेरा भाग देयगा वह मेरा अत्यन्त भक्त है औरभी जो कोई प्राणी तेरा भाग देयकर वैशाखोक्त धर्मोंमे प्रवृत्त होय उनके धर्ममें तू विघ्न मतकरै, जो धर्मके पालनकर्त्ता तुम्हें छोड केवल मेराही भजन करै ॥४८॥४९॥ उनको मेरी आज्ञासे तुम अवश्य दंड देना तथा उस राजासे तुम्हें भाग दिवानेके लिये मैं सुनन्दको अभी भेजूं हूं ॥५०॥ मेरी आज्ञासे वहां जायकर वह तुम्हें भाग दिवावेगा तब भगवान्ने यमके सामने ही ॥५१॥

राजाके समझानेके लिये सुनंदको भेज दिया वह जायकर राजाको समझाय फिर भगवान्‌के पास आगया ॥५२॥ ऐसे यमका आश्वासन कर विष्णु भगवान् वहीं अन्तर्धान होयगये तथा ब्रह्मा भी यमको समझाय उसे आज्ञा दे ॥ ५३ ॥ अत्यन्त विस्मययुक्त होय अपनेअनुचरोंको संग लिये चलेगये और यम भी कुछ प्रसन्न चित्त होय अपनी पुरीको चला गया ॥५४॥ पीछे विष्णुभगवान्‌की आज्ञासे जसे सुनन्द कह आया था वैसेही

सुनन्दं प्रेषयामास नृपं बोधयितुं विभुः । सोऽपि गत्वा बोधयित्वा पार्श्वं च पुनरागवत् ॥ ५२ ॥ इत्याश्वास्य यमं विष्णुस्तत्रै वान्तरधीयत । यमं स्वयं सान्त्वयित्वा तमनुज्ञाप्य वेगतः ॥ ५३ ॥ अतिविस्मयमापन्नो ययौ धाम सहानुगैः । यमोऽपि स्वपुरीं प्रायात्किंचित्संहृष्टमानसः ॥ ५४ ॥ पश्चाद्विष्णोर्निदेशेन सुनन्दपरिबोधितः । भागदाः सकला लोका ये वैशाखपरायणाः ॥ ५५ ॥ धर्मराजं पुरस्कृत्य येन कुर्वन्ति मानवाः । तेषां हि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसंभवम् ॥ ५६ ॥ कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै । वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥ ५७ ॥ सोदकुम्भं च दध्यन्नं पौर्णमास्यां च माधवे । धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमं जनैः ॥ ५८ ॥

वैशाखके धर्मोंमें परायण सब मनुष्य भाग देने लगे ॥ ५५ ॥ और राजाने सबसे यह कह दीनी कि जो कोई धर्मराजका भाग नहीं देयगा उनके वैशाखमें किये कर्मोंको यमराज स्वयं लेलेंगे ॥ ५६ ॥ प्रतिदिन यमके निमित्त स्नान और अर्घ्यादि करनेचाहिये नहीं तो वैशाखके सब कर्म निष्फल होय जायंगे ॥५७॥ वैशाखकी पूर्णमासीके दिन सबसे पहिले धर्मराजके निमित्त जलका कुंभ और दही तथा अन्नका दान करना चाहिये ॥५८॥

पीछे पित्रिश्वरोंके निमित्त, गुरुके निमित्त, पीछे जनार्दन मधुसूदन भगवान्के निमित्त ॥५९॥ शीतल जल, दही, अन्न, तांबूल, दक्षिणा और फल कांसीके पात्रमें रखकर ब्राह्मणको निवेदन करे ॥६०॥ और मधुसूदन भगवान्की प्रतिमा बनवायकर मासधर्मके प्रवर्त्तक गरीब ब्राह्मणको देय ॥ ६१ ॥ और सम्पूर्ण पूजाकी सामग्रीसे उसी धर्मवक्ता ब्राह्मणकी पूजाकरै, सुनन्दकी ऐसी आज्ञा पाय राजा ऐसेही करता हुआ ॥ ६२ ॥ फिर

पश्चात्पितॄन्समुद्दिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः । मधुसूदनमुद्दिय पश्चाद्देवं जनार्दनम् ॥ ५९ ॥ शीतलोदकदध्यन्नं ताम्बूलं च सदक्षिणम् । सफलं कांस्यपात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६० ॥ दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम् । मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्यात् विप्राय सीदते ॥ ६१ ॥ तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः । इति दिष्टः सुनन्देन पथा राजा चकार ह ॥ ६२ ॥ स नीत्वा चायुषः शेषं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् । पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ६३ ॥ वैकुण्ठस्थे नृपे तस्मिन्वेनो राजाधमोऽभवेत् । सर्वे धर्माश्च वैशाखधर्मा अपि विशेषतः ॥ ६४ ॥ दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे । न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः ॥ ६५ ॥

वह राजा अपनी बची हुई आयुको पूरी करके यथेच्छ भोगोंका भोग पुत्र पौत्रादि करके संयुक्त वैकुंठको जाता हुआ ॥६३॥ ऐसे जब यह राजा वैकुंठधामको प्राप्त हुआ तब वेननाम एक बडा नीच राजा होता हुआ उसने सम्पूर्ण धर्म और विशेष करके वैशाखके धर्मोंका लोप कर दिया था मोक्षके हेतु इन धर्मोंको प्राणी फिर भूल गये ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

कोईभी वैशाखोक्त शुभ धर्मोंको नहीं जानता हुआ बहुत जन्मान्तरके पुण्योंके इकट्ठे होजानेसे ॥६६॥ प्राणियोंकी वैशाखोक्त धर्मोंके करनेमें बुद्धि अधिक प्रवृत्त होय है यह सुन राजा मैथिल पूछता हुआ महाराज ! आपने पहिले यह कथा कही कि दुरात्मा राजा वेन पूर्व मन्वन्तरमें हुआ ॥६७॥ और यह सूर्यवंशमें इक्ष्वाकुके कुलमें जन्मे रहे यह कथा मैंने आपसे पहिले सुनीही और अब आपने यह कही ॥ ६८ ॥ पूर्वराजाके वैकुंठधाम

यः कश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तानिमाञ्छुभान् । बहुजन्मार्जिते पुण्ये परिपक्व उपागते ॥ ६६ ॥ वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यन्तिकी भवेत् । मैथिल उवाच ॥ पूर्वमन्वन्तरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान्॥६७॥अयं वैवस्वतस्थो हि राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः॥ इति श्रुतं मया पूर्वमिदानीं चोच्यते त्वया ॥ ६८ ॥ अथ वैकुण्ठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति । इत्येतं संशयं छिन्धि श्रुतदेव महामते ॥६९॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पुराणेषु च वैषम्ययुगकल्पव्यवस्थया । न चाप्रामाण्यशंका ते कथाया व्यत्यये क्वचित् ॥७०॥ गते दैनन्दिने कल्पे कथैषा शाश्वती शुभा । मार्कण्डेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्ता तव भूपते ॥७१॥ तस्मान्न ख्यातिमायान्ति धर्मा वैशाखसंभवाः । कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः॥७२॥इति श्रीस्का० यमदुःखसांत्वनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जानेपर वेन राजा होयगा, हे महामते श्रुतदेव ! मेरे इस संशयको दूर करिये ॥६९॥श्रुतदेवजी बोले हे राजन् ! युग और कल्पोंकी व्यवस्था पुराणोंमें विषम रीतिसे है इस कथाकी अप्रसंगतामें तुम्हें शंका करनी उचित नहींहै॥७०॥ जैसे २ यह जिन जिन कल्पोंमें शुभ कथा हुई है और मार्कण्डेयजीने मेरे प्रति कही हैं सो सब मैंने तुमको सुनाई ॥ ७१ ॥ अतएव वैशाखोक्त धर्म बहुत प्रसिद्ध नहीं हैं कोई २ विष्णुभगवान्‌का भक्त इन

धर्मोंको जाने हैं ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कान्दमहापुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे यमदुःखशान्तवनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
श्रुतदेवजी कहने लगे मेषकी संक्रांतिमें वैशाखके महीनामें जो प्राणी प्रातःकाल स्नान करे और मधुसूदन भगवान्‌की पूजा करके भगवान्‌की यह मनोहर कथा सुनै॥१॥सो सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको प्राप्त होयहै जो दुर्बुद्धि बांचती हुई कथाको छोडकर अन्य काम करनेमें प्रवृत्त होयजायहै॥२॥

श्रुतदेव उवाच ॥ यः प्रातः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे । मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥१॥ स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् । वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेत मूढधीः ॥२॥ रौरवं नरकं प्राप्य पैशाचीं योनिमाप्नुयात । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥३॥ पापघ्नं पावनं धर्म्यं सद्योवन्द्य पुरातनम् । पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे ॥ ४ ॥ दुर्वासशिष्यौ परमहंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ । सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ ॥५॥ भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ । सत्यनिष्ठतपोनिष्ठाविति ख्यातौ जगत्त्रये ॥ ६ ॥

वह रौरवनरकमें जायकर फिर पिशाचकी योनि पावे हैं यहां हम एक प्राचीन इतिहास कहे हैं ॥३॥यह इतिहास पापोंका दूर करनेवाला पवित्र करनेवाला धर्मवर्धक और तत्काल सेवनीय है, प्राचीनकालमें गोदावरीके किनारेपर ब्रह्मेश्वरक्षेत्रमें ॥४॥ ब्रह्मनिष्ठ बडे परमहंस दुर्वासाऋषिके दो शिष्य होतेहुए ये सदा उपनिषदशास्त्रोंमें निष्ठावान् थे और किसीसे कुछ अपेक्षा नहीं रखते थे॥ ५ ॥ भीख मांगकर जो कुछ मिलता था उसीको

खाकर पर्वतकी गुहामें पडे रहतेथे ये दोनों तीनों लोकमें सत्यनिष्ठ और तपोनिष्ठके नामसे विख्यात होते हुए ॥६॥ इन दोनोंमेंसे सत्यनिष्ठ तो सदा भगवान्‌की कथामें तत्पर रहता था जो श्रोता और वक्ता न होय तो वह मुनीश्वर स्वयं कर्म करनेमें तत्पर रहता था जो कोई श्रोता होता था और तो स्वयं कथा कहने लगता था ॥ ७ ॥ ८ ॥ और जो कोई उस पुण्यरूपी कथाको व्याख्या करता तो संपूर्ण कर्मोंको छोड कथा सुननेमें

तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठः सदा विष्णुकथापरः । श्रोतॄणामप्यभावे च व्याख्यातॄणां तथा नृप ॥ ७ ॥ तदा कर्मकला नित्याः करोत्यद्धामुनीश्वरः । श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम् ॥ ८ ॥ यदि व्याख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् । तदा संकुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥ ९ ॥ अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च । हित्वा कथाविरोधीनि तथा कर्माणि भूरिशः ॥ १० ॥ शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम् । विना कथां न जानाति सेव्यमन्यन्नरेश्वर ॥ ११ ॥ व्याख्याति च गृहे स्वस्य वक्ता रोगाद्युपद्रुतः । कूपस्नानपरो भूत्वा शृणोत्येव कथां मुनिः ॥ १२ ॥

प्रवृत्त होजाता ॥९॥ जो तीर्थ बहुत दूर थे और जो देवताओंके मंदिर अत्यन्त दूरवर्ती थे उन कथासे विक्षेप करनेवाले संपूर्ण तीर्थोंको तथा कर्मोंको छोडकर स्वयं दिव्य कथाओंका श्रवण करता हुआ और श्रोताओंके प्रति स्वयं कथा कहता था हे राजन् ! विना कथा श्रवण किये अन्नको ग्रहण नहीं करताथा ॥१०॥११॥ रोगसे पीडित जो वक्ता अपने घरमें यह कथा कहै, कूप जलसे स्नान करके वह मुनि कथा सुनता हुआ ॥१२॥

कथा समाप्त होनेपर अपने नित्य कर्म करते हुआ, जो मनुष्य ऐसे कथा श्रवण करै उसको जन्मके बंधन नहीं व्यापते हैं ॥१३॥ तथा विष्णुभगवान्‌में सत्त्वशुद्धि उत्पन्न होय है और अरति दूर होयजायहै विष्णुभगवान्‌में स्नेहकी उत्पत्ति होय और साधुमहात्माओंमें सुहृदता उत्पन्न होय है ॥ १४ ॥ और निरंजन निर्गुण ब्रह्म हृदयमें आयकर विराजे हैं जो पुरुष ज्ञानहीन है उसके सब कर्म नष्ट होजांय हैं॥ १५ ॥ जैसे अंधेके हाथमें दर्पण

कथायाश्च विरामे तु स्वकृत्यं साधयत्यलम् । कथां वै शृण्वतः पुंसो जन्मबन्धो न विद्यते ॥ १३ ॥ सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णा वरतिश्चैव गच्छति। रतिश्च जायते विष्णौ सौहृदं चैव साधुषु ॥ १४ ॥ निरञ्जन्निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते। ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत् ॥ १५ ॥ बहुधाचरितं चापि यथैवान्धकदर्पणम् । कर्माणि क्रियमाणानि बहुधा शोचितात्मभिः ॥ १६ ॥ सत्त्वशुद्ध्यै भवन्त्येव सत्त्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत्। श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञानाद्ध्यानाय कल्पते ॥ १७ ॥ बहुधा श्रवणं ध्यानं मननं श्रुतिचोदितम् । यत्र विष्णुकथा नास्ति यत्र साधुजना न हि ॥१८॥ साक्षाद्गङ्गातटं वापि त्याज्यमेव न संशयः। यद्देशे तुलसी नास्ति वैष्णवं धाम वा शुभम् ॥ १९ ॥

निष्फल होय है वैसेही बिना ज्ञानके बहुधा किये हुए कर्मभी निष्फल होंय हैं जो महात्मा बहुधा कर्म करें हैं उन्हें सत्त्वशुद्धि प्राप्त होय है और सत्वशुद्धिसे वेदमें मति उत्पन्न होय है, वेदसे ज्ञान और ज्ञानसे ध्यानकी उत्पत्ति होय है ॥१६॥१७॥ जो बहुधा वेदोक्त रीतिसे ज्ञान, ध्यानादिकमें प्रवृत्त होय परन्तु जहां विष्णुभगवान्‌की कथा न होती होय जहां साधुमहात्मा न होय वहां जो साक्षात् गंगाजीका किनारा होय तौ भी त्यागदेय

जिस देशमें तुलसी न होय अथवा विष्णुका मंदिर न होय,जहां विष्णुभगवान् कथा न होय वहांका मरा हुआ प्राणी अंधतामिस्रनरकमें पडता है जिस ग्राममें विष्णुका मंदिर न होय अथवा काला मृग न होय॥१८-२०॥ जहां विष्णुकी कथा न होती हो जहां साधुमहात्मा न हों वहांका मरा हुआ प्राणी सौ जन्मतक कुत्ताकी योनि पावै है॥२१॥उपनिषद विद्याका विचार कर उस मुनीश्वरने यह बात निश्चय करलीनी सदा विष्णुकी भक्तिमें

यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो व्रजेत् । यद्ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥२०॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति साधवो वा तदाश्रयाः । मृतस्तत्र पुमान्क्षिप्रं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥ २१ ॥ विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः । सदा विष्णुकथासक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः ॥ २२ ॥ न किंचिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात्परम् । इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥२३॥ न व्याख्याति स्वयं वापि न शृणोति च सत्कथाम्।वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति॥२४॥ तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायां कथायां भूमिपालक । कर्मलोपभयाद्दूरं याति चाञ्चल्यशङ्कितः ॥२५ ॥ व्रजन्ति गृहकृत्यार्थं संगमात्परतो जनाः । न श्रोतारो न वक्तारस्तस्य पार्श्वे तु कार्मिणः ॥ २६ ॥

तत्पर रहै और विष्णुकी कथा श्रवण करै ॥२२॥ कथाश्रवणसे अधिक और किसी कार्यको न मानै और दूसरा जो तपोनिष्ठ था वह बडा दुराग्रही कर्ममें निष्ठावान् था॥२३॥न तौ स्वयंही कथा कहता था न स्वयं सुनता था और बांचती हुई कथाको छोड तीर्थस्नानके लिये चलाजाता था॥२४॥ हे राजन् ! तीर्थपर होतीहुई कथाको इस डरसे छोडदेता हुआ कि कहीं तपमें विघ्न न होयजायगा ॥ २५ ॥ श्रोता और वक्ता कोईभी उस कर्मनिष्ठके

निकट होयकर घरोंके कृत्यके लिये नहीं निकलताथा ॥२६॥ वह दुरात्मा दुर्बुद्धि अपना कालक्षेप ऐसे ही किया करता था जिह्वासेन विष्णुकथाकहवा था न कानोंसे सुनता था ॥२७॥ विष्णुभगवान्‌की कथाको न सुननेसे न कहनेसे तथा अपनी मूढता और दुराग्रहसे जब उसने अपनी देह छोडी ॥२८॥ तब वह शमीके वृक्षपर छिन्नकर्णनाम महाबलवान् पिशाच होताहुआ, आश्रयहीन क्षुधासे व्याकुल कंठ ओष्ठ और तालु जिसके सूखगय ॥ २९ ॥

दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवं क्षयं गते । जिह्वां श्रुतिं च न क्वापि न प्राप्ता हि कथा विभोः ॥ २७ ॥ अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात् । पश्चात्पञ्चत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥२८॥ पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षे छिन्नकर्णाह्वयो बलः । निराश्रयो निराहारः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥ २९ ॥ एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्यायुता गताः । नापश्यत्स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥ स्वकृतं चिन्तयानस्य मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् । क्षुधया पर्यटन् वापि निवृत्तिं नाप मूढधीः ॥ ३१ ॥ कृशानुसदृशो वायुरङ्गं स्पृष्ट्वाऽकृतात्मनः । कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकं विषम् ॥ ३२ ॥

ऐसे अत्यन्त दुःख भोगते २ दससहस्र वर्ष व्यतीत होयगये कहीं भी वह अपने रक्षकको नहीं देखता हुआ भूखसे व्याकुल अत्यन्त दुःखी॥३०॥ अपने किये हुए कर्मोंपर विचार करता हुआ उन्मत्तकी नाई भ्रमने लगा भूखके मारे इधर उधर भटकता हुआ कहींभी निवृत्तिको प्राप्त न हुआ॥३१॥ उस अकृतात्माकी देहपर पवन अग्निके समान लगती थी जल कालाग्निके तुल्य और फल पुष्पादिक विषके सदृश मालूम होते थे ॥३२॥ ऐसे उस

दुर्बुद्धि कर्मठको कहीं भी सुखकी प्राप्ति न हुई इस प्रकारसे वह उस जनशून्यवनमें फिरताथा ॥३३॥ जहां कथा न वांचै ऐसे साधुवर्जित आश्रय स्थानमें वह भटकताथा कदाचित् दैवयोगसे सत्यनिष्ठ पैठीनसी पुरीमें आता हुआ ॥३४॥ मार्गमें दुःखसे पीडित छिन्नकर्ण नाम पिशाचको देखता हुआ क्षुधासे आतुर अपने आत्माको द्रावित करता बुरी तरहसे रोता था॥३५॥ उसे देख मुनीश्वर कहने लगा डरो मत तू कौन है तेरी यह दशा

न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् । एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥ ३३ ॥ कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रये साधु-वर्जिते । देवादायात सत्यनिष्ठस्तदा पैठीनसीं पुरीम् ॥ ३४ ॥ गच्छन्मार्गे ददर्शासौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम् । दृष्ट्वात्मानं द्रावयन्तं रुदन्तं क्षुधयातुरम् ॥ ३५ ॥ माभैषीति समाभाष्य कोऽसीत्याह मुनीश्वरः । दशेदृशी च कस्मात्ते न ते दुःखमतः परम् ॥३६॥ इत्याश्वस्तोऽमुनाच्छिन्नकर्णः प्राहातिविह्वलः । तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः प्रभो ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही । कर्मलोपभयान्मोढ्यान्मया दुर्बुद्धिना मुने ॥ ३८ ॥ साधुभिर्वाच्यमानापि नादृता विष्णुसत्कथा । न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृन्तनी ॥३९ ॥

कैसे होयगईहै अब यहांसे आगे तुझे दुःख नहीं होयगा ॥३६॥ जब सत्यनिष्ठने ऐसा आश्वासन किया तब छिन्नकर्ण अत्यन्त व्याकुल होय कहता हुआ हे प्रभो ! मैं दुर्वासाका शिष्य तपोनिष्ठ नाम यती हूं ॥३७॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रनिवासी मैं बडा दुराग्रही कर्मनिष्ठ होता हुआ कर्मके लोप होजानेके भयसे मैंने अपनी मूर्खता और अपने दुर्बुद्धिपनेसे ॥३८॥ महात्माओंकी होतीहुई विष्णुकथाका आदर नहीं किया और कर्मोंके काटनेहारी

कथा मैंने श्रोताओंको भी नहीं सुनाई ॥३९॥ उसी कर्मके घोर परिणामसे मेरी मृत्यु हुई और मैं छिन्नकर्ण नाम पिशाच दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हुआ ॥ ४० ॥ इस घोर दुःखसे छुडानेवाले मुझे कोई नहीं दीखै है मार्गमें जावेहुए तुम्हें देखनेसे मेरे भाग्य फिरगये मेरे पाप जातेरहे ॥ ४१ ॥ आज मेरे ऊपर सब देवता, गुरु और साधु, संतुष्ट हैं आज हरिभगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, जो तुम्हारे दर्शन हुए हैं ॥४२॥ ऐसे 'त्राहि त्राहि'

तेन कर्मविपाकेन महताहं मृतिं गतः । छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचो दुःखविह्वलः ॥ ४० ॥ न पश्यामि च त्रातारं दुःखादस्मात्कथञ्चन । तव दृष्टिपथं यातो दिष्ट्याहं गतकल्मषः ॥४१॥ अद्य मे देवतास्तुष्टा गुरवः साधवश्च ये । हरिश्च मे प्रसन्नोऽभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥४२॥ पपात पादयोर्भूमौ त्राहि त्राहीति वै रुदन् । ततस्तु कृपयाविष्टः सत्यनिष्ठो महायशाः ॥ ४३ ॥ दोर्भ्यामुत्थापयामास शन्तमाभ्यां मुनीश्वरम् । ततस्त्वप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम् । तेन पुण्यप्रभावेण सद्यो ध्वस्ताखिलाशुभः ॥४५॥ पिशाचदेहान्निर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम् ॥४६॥ आमंत्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोः परं पदम् । सत्यनिष्ठस्ततो धीमान् ययौ पैठीनसीं पुरीम्॥४७॥

करता हुआ बुरी तरह रुदन करता उसके चरणोंपर गिरपडा तब तौ महायशस्वी सत्यनिष्ठको बडी दया आई ॥४३॥ दोनों हाथसे पकडके उठाय लिया और हाथमें ले अपने सुकृतका पुण्य देताहुआ ॥ ४४ ॥ वैशाखमासके माहात्म्यको क्षणभर सुननेका फल देता हुआ इससे तत्काल उसके पाप दूर होगये ॥ ४५ ॥ पिशाचका देह छोड दिव्यदेह धारणकर दिव्यविमानपर बैठ महामुनिको प्रणाम कर ॥ ४६॥ आमन्त्रण कर परिक्रमा

करके विष्णुलोकको जाता हुआ तब सत्यनिष्ठ पैठीनसी पुरीको जाता हुआ ॥ ४७ ॥ बारम्बार महात्म्यश्रवणकी चिन्ता करता हुआ श्रुतदेवजी बोले जहां शुभफलके देनहारी सब लोकके पाप दूर करनहारी विष्णुभगवान्‌की कथा होयहै ॥ ४८ ॥ वहांही संपूर्ण तीर्थ और अनेक क्षेत्र आय जायहैं जहां विष्णुभगवान्‌की कथारूपी नदी बहैहै उस देशमें वास करनेवालोंके हाथमें मुक्ति रहैहै इसमें कोई सन्देह नहीं है॥४९॥५०॥

माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलापहा ॥४८॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च । यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथापगा ॥४९॥ तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः॥५०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ छ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ भूयः शृणुष्व भूपाल माहात्म्यं पापनाशनम् । वैशाखस्य च मासस्य वल्लभस्य मधुद्विषः ॥१॥ पुरा पाञ्चाल देशे तु राजा पुरुयशाभवत् । तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २ ॥ पितर्युपरते भूप राज्यस्थो धर्मलालसः । शौर्यौदार्यगुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रुतदेवजी बोले–हे राजन् ! मधुसूदन भगवान्‌के प्यारे वैशाखमाहात्म्यके फलको और भी सुनो यह पापनाशक है ॥१॥ प्राचीनकालमें पांचालदेशमें पुण्यशील और बुद्धिमान भूरियशका पुत्र पुरुयश होताहुआ ॥२॥ पिताके मरनेपर आप राजा हुआ यह बहुत शूर वीर और उदार था धनुर्विद्यामें बडा प्रतापी था॥३॥

धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करता हुआ परन्तु पूर्वजन्ममें इसने जलका दान नहीं किया था इस पापके मारे कुछ कालमें इसकी सब संपत्ति नष्ट होय गई, बडे २ रोगोंसे पीडित होयकर घोडा हाथी मर गये ॥५॥६॥ फिर राज्यमें ऐसा दुर्भिक्ष पडा कि सब मनुष्य नष्ट होतेहुए तथा राज्य और कोष हाथीसे भक्षण कियेहुए कैथके समान होयगये ॥६॥ कोष और राज्य नष्ट होयगये हैं जिसके ऐसे राजाको बलहीन जान उसे जीतनेका मनमें

शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः । पूर्वजन्मजलादानाद्दोषेण महता वृतः ॥ ४ ॥ संपद्धानिमवापासौ कालेन कियताऽनघ । हया गजा मृतिं याता महद्रोगेण पीडिताः ॥ ५ ॥ दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् । राज्यं कोशस्तदा चासीद्गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ६ ॥ बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवार्जितम् । तंजेतुमेष समय इति निश्चितमानसाः ॥ ७ ॥ आजग्मुः शतशो भूपरिपवस्तस्य भूपतेः । जिग्युर्युद्धेन तं भूपं पाञ्चालविषयाधिपम् ॥ ८ ॥ पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे । शिखिन्या भार्यया साकं धात्र्यादिगणसंयुतः ॥ ९ ॥ अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः । त्रिपञ्चाशत्समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता ॥ १० ॥ चिन्तयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः । कर्मणा जन्मशुद्धोऽहं मातृपितृहिते रतः ॥ ११ ॥

निश्चय कर ॥७॥ उसके वैरी सैकडों राजा आते हुए और उस पांचालदेशके राजाको युद्धमें जीतलेते भए ॥ ८ ॥ ऐसे राजा परास्त होयकर पहाडकी कंदरामें प्रवेश करताहुआ संगमें शिखिनी रानी और धात्र्यादिगण थे॥९॥वहांका मार्ग और कोई नहीं जानते थे राजा बडे कष्टसे व्याकुल हो तिरेपन वर्ष व्यतीत करता हुआ ॥१०॥ तब राजाके मनमें चिन्ता उत्पन्न हुई कि मेरी ऐसी दशा कौन कर्मसे हुई मैंतो कर्म और जन्मसे शुद्ध हूँ माता

पिताका सदैव हित साधन करता रहाहूं ॥११॥ मैं सदा गुरुमें भक्ति ब्राह्मणोंकी सेवा तथा धर्ममें तत्परता करता रहा हूं, सम्पूर्ण प्राणियोंपर दयावान्, देवभक्त और जितेंद्रिय रहाहूं ॥१२॥ मेरा भाई पुत्र सुहृद हितकारी कोई नहीं है उत्तम कुलमें मैंने जन्म लिया मेरे दया पौरुषभी कहांगये॥१३॥ यह घोर दुःखदायक दरिद्र कौन कर्म द्वारा उपस्थित हुआ है कौन कर्मसे मेरी पराजय हुई है और कौनकर्मसे मैं वनवास करूं हूं ॥१४॥ ऐसे चिन्ता

गुरुभक्तः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः । दयावान् सर्वभूतेषु देवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ न भ्राता मे न पुत्रो मे न च मे सुहृदो हिताः । दयापौरुषविख्याताः कुलीनस्यापि मे कुतः ॥ १३ ॥ केन वा कर्मणा चासीद्दारिद्र्यं भूरिदुःखदम् । केन वाप जयो मेऽद्य केन वा वनवासिता ॥ १४ ॥ इति चिन्ताकुलो राजा गुरुं सस्मार खिन्नधीः । याजोपयाजको नाम सर्वज्ञौ मुनिसत्तमौ ॥ १५ ॥ आजग्मतुर्मुनीन्द्रौ तौ राज्ञाहूतौ महामती । तौ दृष्ट्वा सहसोत्थाय राजा पाञ्चालवल्लभः ॥ १६ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनातिपीडितः । राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः ॥ १७ ॥ तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः । दोर्भ्यां मुत्थापितस्ताभ्यां परिमृष्टाश्रुलोचनः ॥ १८ ॥

करताहुआ बुद्धि जिसकी खिन्न ऐसा राजा अपने गुरुको स्मरण करताहुआ तब याज और उपयाजक नाम दो मुनीश्वर सर्व ज्ञाता ॥१५॥ राजाके यादकरनेपर आय पहुंचे राजा उन्हे देख सहसा उठ खडा हुआ ॥ १६ ॥ और भक्तिपूर्वक शिर झुकाता हुआ वनमें वास करनेसे पीडित राज-चिन्हसे हीन वनके मार्गको जाने नहीं॥१७॥ थोडीदेरतक चुप खडा रहा फिर उनके चरणोंपर गिरपडा तब वे दोनों मुनि अपने हाथसे राजाको

उठाते हुए आंसु पौंछ गेरे और वनके पुष्पादिकसे राजा उनकी विधिवत् पूजा करताभया ॥ १८ ॥ ऐसे जब वह दोनों ऋषि सुखपूर्वक बैठ गये तब शिर नवाय राजाने प्रश्न किया॥१९॥ हे मुनिवरो ! मेरे दुःखके कारण कहिये मैं तौ कर्म और जन्मसे शुद्ध हूं पित्रीश्वर और देवता सबका हित करता रहाहूं ॥ २० ॥ पापसे डरूं हूं प्राणियोंपर दयावान् और गुरुमें भक्तिरखनेवाले मुझको दरिद्रका क्या कारण है मेरा कोश नष्ट क्यों

विधिवत्पूजयामास वन्यैरेवार्हणैः शुभैः । सूपविष्टौ तु तौ विप्रौ पप्रच्छानतकन्धरः ॥ १९ ॥ब्राह्मणौ वदतं दुःखकारणं च क्षितीशितुः । कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्य च ॥ २० ॥ पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः । दारिद्र्यं कोशहानिश्च रिपुभिश्च पराभवः ॥ २१ ॥ कस्मादरण्यवासश्च कुत एकाकिता मम । न पुत्रौ न च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे ॥ २२ ॥ दुर्भिक्षं वा कुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघे । एतद्विस्तार्य मे ब्रूतं कारणं मुनिपुङ्गवौ ॥ २३ ॥ इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूपेनात्यन्त दुःखिना । प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किंचिद्ध्यानपरायणौ ॥२४॥ याजोपयाजावूचतुः ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्य कारणम् । पुरा भूप महापापी व्याधस्त्वं दशजन्मसु ॥ २५ ॥

होगया शत्रुओंने मुझे क्यों जीतलिया ॥२१॥ मैं वनमें वास करूं हूं मैं अकेले किस कारणसे रहगयाहूं मेरे पुत्र पौत्र भाई बंधु हित सुहद कोई नहीं रहे ॥२१॥ मैंने निष्पाप होय अपने राज्यका पालन किया फिर अकाल कैसे पडा, हे मुनिपुंगव ! यह सब कथा विस्तारपूर्वक मेरे सामने कहिये॥२३॥ राजाके अत्यन्त दुःखसे भरेहुए यह वचन सुन थोडी देर ध्यान कर वह दोनों मुनि कहने लगे ॥ २४ ॥ याज और उपयाज बोले–हे राजन् न

सुन हम तेरे दुःखका कारण कहै हैं तू पहिले दश जन्मपर्य्यन्त अत्यन्त घोर पापी व्याध हुआ ॥ २५ ॥ तू बहुत निष्ठुर संपूर्ण जीवमात्रकी हिंसामें तत्पर रहता था धर्म इन्द्रियदमन और शांति लेशमात्र भी न थे ॥२६॥ तेरी जिह्वासे कभी विष्णुके नामोंका उच्चारणभी नहीं होताथा। कभी तैंने मनमें गोविन्दचरणारविन्दका ध्यान न किया ॥२७॥ न तैंने कभी परमात्माके अर्थ नमस्कार करी हे राजन् । ऐसेही पाप करते करते

निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः। धर्मलेशाकरः क्वापि न दमो न च वै शमः ॥२६॥ न जिह्वा वक्ति नामानि विष्णोर्वापि कथंचन । चेतः स्मरति गोविन्दचरणाम्बुरुहद्वयम् ॥२७॥ न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने । नवजन्मानि ते भूप गतान्येवं दुरात्मनः ॥ २८ ॥ दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे । निष्ठुरः सर्वलोकानां नराणां त्वं नरान्तकः ॥ २९ ॥ दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः । निर्गुणः सकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः ॥ ३० ॥ प्रजानां गौडदेश्यानां राक्षसो मानुषाशनः । एवं चाब्दान्यतीतानि नैजं हितमजानतः ॥३१॥ बालापत्यमृगाणां च पक्षिणां च वधात्तव । दयाहीनस्य दुर्बुद्धे र्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता ॥ ३२ ॥

तेरे नौ जन्म व्यतीत होयगये ॥२८॥ फिर दशवें जन्ममें तू सह्याद्रिपर व्याधका जन्म धारण कर बडा निष्ठुर हुआ सब प्राणियोंके प्राणनाश करने यमराजके समान हुआ ॥ २९ ॥ दयाहीन शस्त्रद्वारा जीविका करनेवाला सदा हिंसामें तत्पर निर्गुणमार्गमें जानेवालोंको कष्टदायक शठ ॥ ३९ ॥ गौडदेशकी प्रजाके मनुष्योंका मांस भक्षण करता हुआ अपने हितकी बात न जानते हुए समयको व्यतीत करता हुआ ॥३१॥ मृग और पक्षियोंके

छोटे २ बच्चोंका वध करनेसे दयाहीन और दुर्बुद्धि तेरे इस जन्ममें संतान नहीं हुई है ॥३२॥ तैंने विश्वासघात किये इससे इस जन्ममें तुझे सहोदर भाई नहीं मिले हैं तैने मार्गमें यात्रियोंको बडे कष्ट दिये इस कारणसे तेरे कोई सुहृद नहीं हैं ॥३३॥ साधुओंका तिरस्कार करनेसे शत्रुओंने तुझे पराजित किया है तैंने कभी दान नहीं दिया इस दोषसे तेरे घरमें दरिद्र आया है ॥३४॥ सदा उद्वेग करानेसे तुझे देश निकाला हुआ है सबका अहित करनेसे तुझे अत्यन्त दुःसह दुःख हुआ है ॥३५॥ पूर्वजन्ममें सदा क्रूरकर्म करनेसे अब तुझे भोजन नहीं मिलता है इन सब कर्मोंद्वारा इस

विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः। मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवार्जितः ॥३३॥ साधूनां च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः। कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥३४॥ सदैवोद्वेगकारित्वात्प्रवासस्ते दुरासदः। सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यन्तदुःसहम् ॥३५॥ निराहारोऽप्यतः पूर्वं सदा क्रूरेण कर्मणा। तस्माद्राज्यापहारस्ते जन्मन्यस्मिन्महामते ॥३६॥ अथ ते सत्कुलीनावे हेतूंश्चापि ब्रवीम्यहम्। यदाभूगौडदेशीयो ह्यन्तिमे व्याधजन्मनि ॥३७॥ स्वकर्मनिरते क्रूर विपिने कण्टकाविले। तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतान्तके पथि ॥३८॥ वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ धर्मपीडितौ। मुनिश्च कर्षणो नाम वेदवेदाङ्गपारगः॥३९॥

जन्ममें तेरा राज्य छिन गया है ॥३६॥ अब हम तेरे सत्कुलमें जन्म लेनेका कारण कहे हैं जब तू दशवें जन्ममें गौडदेशमें था तब ॥३७॥ तू अपने घोर दुष्कर्ममें प्रवृत्त था और कंटकयुक्त वनमें बड़ी निर्दयतासे सब मार्गके चलनेवालोंको बड़ा कष्ट दिया करता था ॥३८॥ उस समय धूपसे व्याकुल बडे धनवान् दो वैश्य आये और वेदवेदांगका ज्ञाता कर्षण नाम मुनि भी आता हुआ ॥ ३९ ॥

शिरपर जटा देहपर चीर (वल्कल) हाथमें कमंडलु लिये हुए इन्हें आते देख तू हाथमें धनुष लेय मार्गको रोक खडा होता हुआ ॥४०॥ बाण मारमारके तैंने उन दोनों वैश्योंके शरीर छिन्नभिन्न करदिये फिर इन दोनोंमेंसे एकको मारकर सब धन तू छीन लेता हुआ ॥४१॥ जब तू दूसरेके मारनेके लिये उद्यत हुआ सोई वह तेरे डरके मारे भाग गया और अपने प्राणोंकी रक्षाके निमित्त सब धनको कहीं लतापत्तोंमें फेंकदेता हुआ ॥४२॥

जटाचीरधरः पुण्यः कमण्डलुपरिग्रहः । तान् दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः ॥ ४० ॥ अनुद्रुत्य शरी वैश्यौ कृत्वा च्छिन्नशरीरकौ । तयोरेकं च त्वं हत्वा गृहीत्वाखिलतत्पणम् ॥ ४१ ॥ अपरं हन्तुमुद्युक्ते स दुद्राव भयाद्द्रुतम् । पणं गुल्मे विनिक्षिप्य भीतः प्राणपरीप्सकः ॥ ४२ ॥ कर्षणोपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशङ्कया । आतपे धावमानः सन् तृषाधर्मप्रपीडितः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेषितः । विहायैनं दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः ॥४४॥ त्वं तावनुद्रुतौ दृष्ट्वा मूर्च्छितं पथि भूसुरम् । पणं कुत्र विनिक्षिप्तं कियद्दूरं गतो वणिक् ॥ ४५ ॥ इति पृष्टं द्विजं श्रान्तमुज्जीवयितुमुद्यतः । फूत्कृत्य कर्णयोस्तस्य चकार स्मृतिकारिणम् ॥ ४६ ॥

तब कर्षण मुनि भी व्याधके हाथसे मृत्युकी शंकाकर धूपमें दौड़ने लगे सोई तृषा और धूपसे व्याकुल होय मूर्च्छा खाय गिरपडे पसीना टपकने लगे केवल संज्ञामात्र शेष रहगई वह वैश्य अपने प्राणोंकी रक्षाके निमित्त इस ऋषिको वहीं छोड भागगया ॥४३ ॥ ४४॥ जब वह दोनों भाग गये तब तू मार्गमें उनमेंसे मूर्च्छित पडा ब्राह्मणको देख धन कहां फेंका है और वह वैश्य कितनी दूर गया है ॥४५॥ ऐसे पूछने लगा ऐसे कह उस थकेहुए

ब्राह्मणको उठानेका उद्योग करनेलगा उसे चेत करानेके लिये तैंने कानोंमें फूंक मारी ॥ ४६ ॥ तथा कृमि और कीचड मिलेहुए चोहडके जलसे उसके नेत्र धोय पंखासे पवन करनेलगा ॥ ४७ ॥ ऐसे मुनिको चेत कराय स्वस्थचित्त होय कहने लगा हे मुने ! तुम शंका मत करो इस वनमें मैं शस्त्र धारण कर रहा हूं जबतक मुझे तुम्हें किसी बातका डर नहीं है ॥ ४८ ॥ निर्धन मनुष्य संसारमें सदा सुखी रहैहै फिर तुम क्यों डरोहो तुम्हारे

पल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा । नेत्रे संमृज्य श्रान्तस्य पर्णैः संवीज्य तन्मुखे ॥ ४७ ॥ ससंज्ञं च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः । मा शङ्का ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥ ४८ ॥ निष्किञ्चनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम् । भिन्न पात्रेण जीर्णेन न मे किंचिद्भविष्यति ॥ ४९ ॥ एतावद्वद मे विद्वन् वणिक्कुत्र पलायितः । कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन शीघ्रं पलायता ॥ ५० ॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि ॥ कर्षण उवाच ॥ धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गादस्मात्पलायितः ॥ ५१ ॥ इति प्राह भयात्सोऽपि पृष्टः प्राणपरीप्सया । गच्छ विप्र सुखं मार्गं मत्तो भीतिं विहाय च ॥ ५२ ॥

टूटे पात्र और फटे वस्त्रसे मुझे क्या लाभ होगा ॥ ४९ ॥ हे मुने ! तुम यह कहो कि वैश्य कहां भागगया और भागते समय कौनसे पेडपत्तोंके नीचे अपने धनको गेरताहुआ ॥५०॥ जो तू ठीक न बतावैगा तो मैं तेरे प्राण हरण करूंगा । कर्षण बोले—वह वैश्य धनको तो इन वृक्षोंमें फेंकगया है और स्वयं इस मार्गमें होकर भागगया है॥५१॥ऐसा अपने प्राणकी रक्षाके निमित्त ऋषिने डरके मारे यह बात कही तब व्याधने कहा हे विप्र ! तुम

निडर होय सुखपूर्वक चले जाओ ॥ ५२ ॥ यहांसे थोडी दूरपर एक तालाबमें निर्मल जल है उस जलको पी परिश्रम दूर कर अपने गांवको चले जाओ ॥५३॥ राजाके कर्मचारी वणिक्के रुदनको सुनकर मेरे पांवोंका खोज लगाते अबही आवेंगे ॥ ५४ ॥ हे ब्राह्मण ! इस कारणसे मैं तृषार्त्त तेरे पीछे चलनेमें असमर्थ हूं, इस पंखासे हवा करनेपर कुछ गर्मी शान्त होयजायगी ॥ ५५ ॥ तू उस ब्राह्मणको पत्ता देकर गह्वर वनमें चलागया

इतोऽविदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम्। तत्पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छ ग्रामं गतश्रमः ॥ ९३ ॥ अधुनैवागमिष्यन्ति राजकीयाः पथा जनाः। मत्पदान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥ ९४ ॥ तृषार्तमनुगन्तुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज। वीजयानेन पर्णेन घर्मः किंचिद्गमिष्यति ॥ ९५॥ तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमगा विपिनं पुनः। तेन पुण्यप्रभावेण वैशाखे घर्मघर्घरे॥९६॥ स्वकायार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणेन पद्धतौ। जन्मासीत्ते महापुण्ये राजवंशेऽतिविस्तृते ॥ ९७ ॥ यदिच्छसि सुखं राज्यं धनधान्यादिसंपदः। स्वर्गापवर्गौ यदि वा सायुज्यं वा हरेः पदम् ॥ ९८ ॥ कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि। मासोऽयं माधवो नाम तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ ९९ ॥

उस पुण्यके प्रभावसे वैशाखकी प्रचंड धूपमें ॥ ५६ ॥ यद्यपि तैंने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये मुनिकी रक्षा की उसीकी प्रभावसे महापुण्यवान विशाल राजवंशमें तेरा जन्म हुआ ॥ ५७॥ अब जो तेरी इच्छा सुख राज्य धन धान्य लक्ष्मी स्वर्ग अपवर्ग सायुज्यमुक्ति आदिकी हैं ॥ ५८ ॥ तौ तू वैशाखोक्त धर्मोंको कर तू सम्पूण सुखोंको प्राप्त करैगा, इस मासका नाम माधवमास है औ तृतीयाका नाम अक्षय है इस दिन तत्कालकी

ब्याई गौ ब्राह्मणको दे इससे तेरे कोशादिकको पूर्ति होयगी शमीका दान कर उससे सुख होयगा ॥५९॥६०॥ छत्रीका दान कर इससे साम्राज्यकी प्राप्ति होयगी, विधिपूर्वक स्नान करके माधव भगवान्‌की पूजाकर॥६१॥ और दिव्य प्रतिमाका दान कर इससे तेरी जीत होयगी और हे राजन् ! जो तू अपने समान पुत्रोंकी इच्छा करताहै ॥६२॥ तौ संपूर्ण प्राणियोंके हितसाधनके निमित्त प्रपादान कर और हे राजन् ! वैशाखोक्त इन सम्पूर्ण

गां च सकृत्प्रसूताख्यां देहि विप्राय सीदते । तेन ते कोशपूर्तिः स्याच्छम्यां देहि सुखं भवेत् ॥ ६० ॥ कुरु च्छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति । स्नानं कुरु यथान्यायं तथैवार्चय माधवम् ॥ ६१ ॥ देहि त्वं प्रतिमां दिव्यां कृत्वा तेन जयो भवेत् । आत्मतुल्यगुणान् पुत्रान् यदि कामयसे नृप ॥ ६२ ॥ सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च त्वं कुरु । वैशाखोक्तानिमान् धर्मान् सम्यगाचर भूमिप ॥ ६३ ॥ तेन ते सकला लोका वशं यान्ति न संशयः । निष्कामकेन चित्तेन यदि धर्मान् करिष्यसि ॥ ६४ ॥ वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन् प्रीतये मधुघातिनः । प्रत्यक्षो भविता विष्णुस्तव निर्मलचेतसः ॥ ६५ ॥ येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः । तेषां च ह्यक्षया लोकाः पुराणे कवयो विदुः ॥ ६६ ॥

धर्मोंको कर ॥६३॥ इससे सब लोक तेरे वश होय जांयगे जो तूं निष्कामनासे इन सम्पूर्ण धर्मोंको करैगा ॥ ६४ ॥ इस वैशाखके महीनामें मधुसूदन भगवान्‌की प्रसन्नताके अर्थ होय तौ विष्णुभगवान साक्षात् दर्शन देंयगे॥६५॥ जो मनुष्य इन कल्याणकारी धर्मोंको करै है उसको अक्षय लोककी प्राप्ति होयहै यह बात पुराणोंमें लिखी है ॥ ६६ ॥

यह बात जैसे कानसे सुनी है अथवा आंखसे देखी है सो सब तेरे सामने कही ऐसे कुलपुरोहित दोनों ब्राह्मण याज और उपयाजक राजाको समझायकर अपने अपने घर जातेहुए तब राजा महापराक्रमी अपने पुरोहितोंकी आज्ञाके अनुसार ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ श्रद्धापूर्वक वैशाखोक्त संपूर्ण धर्मोंको करताहुआ और उपदेशके अनुकूलही मधुसूदन भगवान्‌का पूजन करताहुआ ॥ ६९ ॥ इनके प्रभावसे अपने संपूर्ण कुटुंबसहित बची हुई सेनाको

एतत्सर्वं तव प्रोक्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् । इति राजानमामंत्र्य ब्राह्मणौ च पुरोधसौ ॥ ६७ ॥ याजोपयाजकौ नाम जग्मतुस्तौ यथागतौ । ततो राजा महावीर्यः पुरोधोभ्यां च बोधितः ॥ ६८ ॥ वैशाखधर्मान् सकलांश्चकार श्रद्धयान्वितः । यथोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमार्चयत ॥ ६९ ॥ ततो लब्धप्रभावः सन् बन्धुभिः सकलैर्वृतः । पाञ्चालनगरीं प्राप हतशेषबलान्वितः ॥७०॥ ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः । प्रवेशं च पुरस्याथ पुनराजग्मुरुद्धताः ॥७१॥ तदा पाञ्चालभूपेन नृपाणामभवद्रणम् । जिग्ये सर्वान्महाबाहुरेक एव महारथः ॥ ७२ ॥ पलायितेषु भूतेषु नानादेशागतेष्वपि । राज्ञां कोशं गजानश्वान् स्वयं जग्राह वीर्यवान् ॥ ७३ ॥

संग ले पांचालनगरीमें प्रवेश करताहुआ ॥ ७० ॥ तब राजाके शत्रुओंने सुना कि राजा फिर आयगया है तब मदोन्मत्त होयकर पुरीपर चढाई करनेलगे॥७१॥ऐसे पांचालदेशके राजा और इन शत्रुओंका संग्राम सदैव होतारहा परन्तु एकही महारथी सबको जीतताहुआ ॥ ७२ ॥ जो राजा अपने अपने देश छोडकर भागगये उनके कोश हाथी घोडा स्वयं राजा ले आया ॥ ७३ ॥

दस अर्ब घोडा, तीन कोटि हाथी, एक अर्ब रथ, दस सहस्र ऊंट ॥७४॥ तीन लाख गधा उस पुरीमें लावा हुआ, वैशाखोक्त धर्मके प्रभावसे तत्क्षणही सब उस राजाको ॥७५॥ कर देने लगे, संकल्प जिनके जातेरहे चरणोंमें आयपडे और पांचालदेशोंमें बडा सुभिक्ष होता हुआ ॥७६॥ और मधुसूदन भगवान्की कृपासे एकछत्र राज्य होताहुआ तथा पांच पुत्र बडे गुणवान् शूर वीर और उदार होते हुए॥७७॥ धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न,विजय,

अश्वानां निर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम् । रथानामर्बुदं चैव दीर्घग्रीवायुतं तथा ॥७४॥ रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् । वैशाखधर्ममाहात्म्यात् क्षणात्सर्वे च भूभृतः ॥ ७५ ॥ करदा भग्नसंकल्पाः पादाक्रान्ता बभूविरे । सुभिक्षमतुलं चासीत् पाञ्चालविषयेषु च ॥७६॥ एकच्छत्रमभूद्राज्यं प्रासादान्मधुघातिनः । पुत्राः पञ्चापि तस्यासञ्छौर्यौदार्यगुणान्विताः ॥ ७७ ॥ धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्नस्तथापरे । विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ॥ ७८ ॥ अनुरक्ताः प्रजाश्चासन् धर्मेण प्रतिपालिताः । वैशाखस्य प्रतापेन प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत् ॥ ७९ ॥ पुनश्चकार तान् धर्मान् पाञ्चालनगरीश्वरः । अकामकेन चित्तेन प्रीतये मधुघातिनः ॥ ८० ॥ धर्मेणानेन संतुष्टो भगवान् मधुसूदनः । अक्षयायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ॥ ८१ ॥

चित्रकेतु, मयूरध्वजके सदृश होते हुए ॥७८॥ धर्मसे प्रतिपालित संपूर्ण प्रजा राजामें अनुराग करतीहुई और वैशाखके प्रतापसे तत्क्षण सब विश्वास करने लगे ॥७९॥ फिर पांचाल देशका राजा निष्कामचित्त होय मधुसूदन भगवानकी पूजाके निमित्त संपूर्ण धर्म करता हुआ ॥८०॥ मधुसूदन भगवान्

इन धर्मोंसे प्रसन्न होय अक्षयतृतीयाके दिन साक्षात् दर्शन देते हुए ॥८१॥तब अच्युत भगवानको देख राजा बडा विस्मित हुआ कैसे हैं नारायण चतुर्भुजाधारी शंख चक्र गदा पद्म लिये ॥८२॥ पीतांबर धारण किये बनमाला पहरे लक्ष्मी तथा अनुचरोंसहित गरुडपर बैठे हैं ॥८३॥ इनके असहनीय तेजको देख नेत्र बंद करलिये फिर उनके दर्शनकर हर्षके मारे उन्मत्तकीसी चेष्टा करने लगा ॥८४॥ सब देहपर रोमांच खडे होयगये

तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् । नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ८२ ॥ पीताम्बरधरं देवं वनमाला विभूषितम् । सलक्ष्मीकं सानुगं च गरुडोपरि संस्थितम् ॥ ८३ ॥ निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्यो मीलितलोचनः । उत्पतन् संपतन् हर्षोन्मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ॥ ८४ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः । तुष्टाव परया भक्त्या प्राञ्जलिः प्रणतो भुवि ॥८५॥ इति श्रीस्कन्दपु० वै० नारदाम्बरीषसंवादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिर्दरिद्रनाशनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥ छ ॥ श्रुतदेव उवाच॥तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना । चिरं निरीक्ष्याकुललोचनोऽमुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम्॥१॥

नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे अत्यन्त भक्तिपूर्वक हाथ जोड शिर झुकाय स्तुति करने लगा॥८५॥ इति श्री स्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीष-संवादे पांचालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिर्दरिद्रनाशनं नाम पंचदशोऽध्यायः॥ १५॥श्रुतिदेवजी कहने लगे—भगवान्के दर्शनके आनन्दमें मग्न है हृदय जिसका वह राजा तत्काल शिर झुकाय प्रणाम करता हुआ और बहुत कालपर्यन्त आकुल नेत्रोंसे विश्वात्मदेव जगदीशके दर्शन करता हुआ ॥१॥

और चरण धोये जलको शिरपर धारण करता हुआ जिन चरणोंसे उत्पन्न हुइ गंगा संपूर्ण जगत्‌को पवित्र करै है तथा बहु मूल्यवान् वस्त्र आभूषण चंदनादिसे पूजन करता हुआ ॥२॥ धूप दीप फूल माला नैवेद्य और आत्मसमर्पणादिसे पुराणपुरुष नारायण अद्वितीय विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न करता हुआ ॥ ३ ॥ भगवान्, निरंजन, जगत्‌के रचनेवालोंके स्वामी, परात्पर ब्रह्मादिसे पूजित हैं जिनकी मायासे तत्त्ववेत्ता बडे २ उत्तम

दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजाऽऽब्रह्म जगत्पुनाति। समर्चयामास महाविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः॥२॥स्रग्धूपदीपामृतभक्षणाविभिस्त्वग्गात्रवित्तात्मसमर्पणेन। तुष्टाव विष्णुं पुरुषं पुराणं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ॥३॥ निरञ्जनं विश्वसृजामधीशं परात्परं पद्मभवादिवन्दितम् । यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम् ॥४॥ मुह्यन्ति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम् । अनीह एतद्बहुधक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ ॥५॥ समस्तदेवासुरसौख्यदुःखप्राप्त्यै भवान् पूर्णमनोरथेऽपि । तत्रापि काले स्वजनाभिगुप्त्यं बिभर्षि सत्त्वे खलनिग्रहाय ॥६॥ तपोगुणं राक्षसबन्धनाय रजोगुणं निर्गुणविश्वमूर्ते । दिष्ट्या त्वदङ्घ्रिप्रणतापनाशनं तीर्थास्पदं हृदि धृतं सुविपक्कयोगैः ॥ ७ ॥

मनुष्यभी मुग्ध होय रहे हैं, विश्वस्रष्टाओंके अधीश्वर ॥४॥ जिनकी मायामें मूढबुद्धिवाले मोहित होते हैं और गुणोंमें भगवान्‌के अनेक प्रकारकी चेष्टा है, स्वयं चेष्टारहित हैं बहुत प्रकारका हैं स्वयं जगत्‌का पालन पोषण और संहार करै हैं संपूर्ण देवता और असुरोंकी सुख दुःखकी प्राप्तिके निमित्त आप लीन नहीं होय हैं आप पूर्ण मनोरथ हैं तथापि कालपायकर आत्मीय जनोंकी रक्षाके निमित्त सतोगुण धारण करै हैं॥५॥६॥ दुष्टोंका निग्रह

करनेको तमोगुण और राक्षसोंका बंधन करनेको रजोगुण धारण करें हैं हे निर्गुण विश्वमूर्ते ! आपके चरणारविंदको धन्य हैं ये चरण शरणागतोंके पापोंको दूर करनेवाले हैं जब धर्मोंके योगसे तीर्थरूप आपके चरण हृदयमें धारणकरे जाय हैं ॥७॥ बढी भई भक्तिसे उपहत हैं आशय और जीवभाव जिनके सो तेरे चरणोंके स्मरण मात्रहीसे गतिप्राप्त करते भये और सांसारिक कालरूपी सर्पकी पाशमें बंधाहुआ जन्मजरादिदुःखोंसे व्याप्त तेरे चरणारविंदकी विस्मृतिसे मार्जारीकी तरह तृषासे व्याकुल अनेक योनियोंमें भ्रमण करूं हूं मैंने न दान किया न तेरी कथा सुनी न साधुसेवा करी

उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतो ये । भवाख्यकालोरगपाशबन्धः पुनः पुनर्जन्मजरादिदुःखैः ॥ ८ ॥ भ्रमामि योनिष्वहमाखुभक्षवत्प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः । नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता न साधवो जातु मयापि सेविताः ॥ ९ ॥ तेनारिभिर्ध्वस्तपराध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरू ह्यहं स्मरन् । स्मृतौ च तौ मां समुपेत्य दुःखात्सम्बोधयांचक्रतुरार्तबन्धू ॥ १० ॥ वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः स्वर्गापवर्गादिपुमर्थहेतुभिः । तद्बोधतोऽहं कृतवान्समस्ताञ्छुभावहान् माधवमासधर्मान् ॥ ११ ॥

॥८॥९॥ उसी अपराधसे शत्रुओंने मुझे पराजित करदिया मेरा वैभव नष्ट होगया तब वनमें गया वहां मैंने अपने गुरुओंका स्मरण किया स्मरण करतेही मेरे पास आय मेरी दीनदशापै दयाकर दुःखसे छुडातेहुए ॥१०॥ वेदोक्त शुभ स्वर्गापवर्ग पुरुषार्थचतुष्टयके देनहारे वैशाखके धर्म जैसे मेरे गुरुओंने बताये वैसेही मैं करता हुआ ये माधवमासके धर्म बडे शुभ फल देनेवाले हैं ॥ ११ ॥

उनहीके प्रभावसे मैं अत्यन्व प्रसन्न हूं, उन्हीके प्रतापसे संपूर्ण वैभव मिलाहै, अग्नि सूर्य चन्द्रमा तारागण पृथ्वी जल आकाश वायु वाणी और मन ॥१२॥ इसकी उपासना नहीं करी ये उपासना करनेपरभी बहुत दिनमें दुःख दूर करें हैं परन्तु महात्मा तो क्षणभरमेंही पापोंको नष्ट कर देयहैं ये महात्मा कैसे हैं कि जिनने संपूर्ण इच्छा त्याग दीनी हैं और तेरेही बीचमें चित्त लगायकर रक्खा है ॥१३॥ हे स्वतंत्र ! हे विचित्र कर्मोंके करनेहारे ! हे परमात्मन्!

तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्तेनाखिलाः संपद ऊर्जिता इमाः नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥ १२ ॥ उपासितास्तेऽपि हरन्त्यघं चिराद्विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त्तसेवया । यान्मन्यसे त्वं भवतोऽपि भूरिशस्त्यक्तैषणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान् ॥ १३ ॥ नमः स्वतंत्राय विचित्रकर्मणे नमः परस्मै सदनुग्रहाय । त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थरूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक् ॥ १४ ॥ यत्पादपद्मं सृतिमूलनाशनं समस्तपापापहरं सुनिर्मलम् । सुखेच्छयानर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः ॥ १५ ॥ न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् । लब्ध्वा दुरापं नरदेवजन्म त्वयत्नतः सर्वपुमर्थहेतु ॥ १६ ॥

हे सन्तोंपर अनुग्रह करनेवाले ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है मैं आपकी मायामें मोहित होय अनर्थ दृष्ट स्त्री धन आदि गुणोंमें भ्रमरहा हूं॥१४॥तेरे चरण कमल संसाररूप दुःखको जडसे नाश करनेवाले हैं संपूर्ण पापोंके दूर करनेवाले और निर्मल हैं इन्हें छोड सुखकी इच्छासे अनर्थके मूलकारण जो स्त्री पुत्रादि हैं तिनकी ममतामें पड मोहि न नींद आवै न चैन मिले है क्योंकि इन्हींमें मेरी तृषा बढरहीहै दुर्लभ राजाका देह पायकर जो अर्थ धर्म काम

मोक्षका एक मात्र हेतुहै ॥ १५ ॥ १६ ॥ ऐसा मैं भगवान्‌के चरणोंका ध्यान नहीं करूं हूं क्योंकि मेरी बुद्धि बडी मूढहै विषयोंमें आसक्तहै सो मैं अनेक प्रकारके कर्म करूं हूं इन विषयोंमें मेरी तृषा बढ रही है और रातदिन सैकडान प्रकारकी ऐसी चिन्तामें मन डोले है कि आज मैं ऐसा होऊं कल ऐसा होऊं हे दुरन्तशक्त ! हे विश्वमूर्ते ! जब आपकी कृपा इस जीवपर होयहै ॥१७॥१८॥ तब महात्माओंका समागम होय है जिससे यह संसारसमुद्र गौके चरणकी समान होयजायहै हे देव ! जब संतोंका समागम होयहै तबही आपमें बुद्धि प्रवृत्त होय है ॥ १९ ॥ आपने जो मेरे ऊपर

पादारविन्द न भजामि देव सम्मूढचेता विषयेषु लालसः । करोमि कर्माणि सुनिश्चितः सन् प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया दधन् ॥ १७ ॥
पुनश्च भूय महमद्य भूयामित्येव चिन्ताशतलोलमानसः । तदेव जीवस्य भवेत्कृपा विभो दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्तेः ॥ १८ ॥
समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवांबुधिर्येन हि गोष्पदायते । तत्संगमो देव यदेव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः॥१९॥
समस्तराज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमञ्जसा । यत्प्रार्थ्यते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृत्ततर्षैरपि हंसयूथैः ॥ २० ॥ इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभो । अकिंचनप्रार्थ्यममन्दभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात् ॥ २१ ॥

अनुग्रह कियाहै इससे अपने समस्त राज्यको निष्फल ही मानूं हूं और समस्त सुरासुर तथा निवृत्त भई है तृषा जिनकी ऐसे संन्यासिगण यही प्रार्थना करै हैं ॥ २० ॥ मैं अच्युत भगवान्‌को सादर स्मरण करूं हूं जिनके चरणकमल सांसारिक तापोंको दूर करे हैं दरिद्रियोंसे प्रार्थनाके योग्य अमन्द सौभाग्यके दाताहै तेरे चरणकमलसे भिन्न किसी बातकी कामना नहीं करूं हूं न मुझे राज्यकी इच्छा है न पुत्र पौत्रादिक वा धनकी इच्छाहै

इस निन्तर पतन होनेवाली मिट्टीसे उत्पन्न देह करके उपासनाके योग्य आपके चरण कमलोंका ध्यान करू हूं मुनिलोग भी आपके इन चरणोंका निरंतर ध्यानकरेंहै ॥२१॥२२॥ हे जगन्निवास ! हे देवेश ! आप प्रसन्न हूजिये जिससे आपके चरणकमलमेमेरी स्मृति होय; हे प्रभो ! स्त्रीपुत्र कोशादिमें मेरी आसक्ति न होय ॥२३॥ मेरा मन आपके चरणारविन्दमें लगै, मेरी वाणी आपकी दिव्यकथा कहनेमें प्रवृत्त होय, मेरे नेत्र आपकी

अतो न राज्यं न सुतादि कोशं देहेन शश्वत पतता रजोभुवा । भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविन्दं मुनिभिर्विचिन्त्यम् ॥ २२ ॥ प्रसीद देवेश जगन्निवास स्मृतिर्यथा स्यात्तव पादपद्मे । सक्तिः सदा गच्छतु दारकोशपुत्रात्मचिह्नेषु मे प्रभो ॥ २३ ॥ भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने । नेत्रे मम स्तां तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिता ॥ २४ ॥ घ्राणं च त्वत्पादसरोजसौरभे त्वद्भक्तगन्धादिविलेपनेऽसकृत् । स्यातां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो संमार्जनादौ मम नित्यदेव ॥ २५ पादौ विभो क्षेत्रपथानुसर्पणे मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम् । कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यात्तव चिन्तनेऽनिशम् ॥ २६ ॥

मूर्तिके दर्शनमे लगें, कान कथाश्रवणमें और जिह्वा आपके गुणानुवादमें अर्पित होय ॥२४॥ आपके चरणकमलका मकरंद संघनेमें नासिका प्रवृत्त होय और आपके भक्तोंके सुगन्धयुक्त चन्दनादिके लेपनमें हाथ प्रवृत्त होय, और आपके मंदिरकी बुहारी देनेमें नित्य लगे रहे ॥ २५ ॥ मेरे पांव आपकी कथा जहां होती होय वहां मुझे लेजांय, मेरी मूर्द्धा सदा आपकी वन्दनामें लगी रहै, आपकी कथामे मेरी कामना और आपके विचारमें

मेरी बुद्धि अहर्निश रहे ॥२६॥ घर आये मुनियोके संग आपकी श्रेष्ठ कथाओंके गानमें मेरे दिन व्यतीत होय। हे प्रभो ! एक क्षण वा अर्द्धनिमेषभी आपके प्रसंगबिना व्यतीत न होय ॥२७॥ हे विष्णो ! मैं पारमेष्ठ्य अथवा संपूर्ण पृथ्वीका राज्य अथवा धर्म अर्थादि अपवर्गकी इच्छा नहीं करू हूं मैं तो केवल आपके चरणकमलकी सेवाकी कामना करूं हू इस चरणसेवाकी इच्छा लक्ष्मी ब्रह्मा महादेवादि सब देवता करे हैं ॥ २८ ॥ राजाकी

दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः । हीनप्रसङ्गैस्तव मे न भूयात् क्षणं निमेषार्द्धमथापि विष्णो ॥२७॥ न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चापवर्गं स्पृहयामि विष्णो। त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः ॥ २८ ॥ इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः । मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥२९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जाने त्वां दासवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम् । अथापि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम् ॥३०॥ आयुष्यं चायुतं दिव्यं संपदश्च नरेश्वर । भक्तिर्मयि दृढा भूयादन्ते सायुज्यमेव च ॥ ३१ ॥ त्वया कृतेन स्तोत्रेण मां स्तुवन्ति च ये भुवि । तेषां तुष्टः प्रदा स्यामि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥३२॥ तृतीयैषाक्षया नाम भुवि ख्याता भविष्यति । यस्यां तव प्रसन्नोऽहं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥३३॥

ऐसी स्तुति सुन कमलनयन भगवान् अति प्रसन्न होय मेघकीसी गंभीरवाणोसे राजासे बोले ॥२९॥ भगवान् बोले–तुम पापरहित, निष्काम, मेरे भक्तोंमें श्रेष्ठ हो तथापि देवताओंके दुर्लभ वर तुझको मैं देता हूं ॥३०॥ दशसहस्र वर्षकी तेरी अवस्था, दिव्य धनसंपत्ति, मेरी ओर दृढ़भक्ति और अन्तमें मेरी सायुज्यता मिलैगी॥३१॥ जो प्राणी तेरी करीहुई स्तुति करेंगे मैं उनपर प्रसन्न होयकर निस्संदेह भक्ति और मुक्तिदेऊंगा॥३२॥आजका दिन संसारमें

अक्षयतृतीयाके नामसे विख्यात होगा। जिस भुक्ति मुक्तिका देनेवाला मैं प्रसन्न हुआ हूं ॥ ३३ ॥ जो मूढ मनुष्य जानके अथवा बिनाजाने स्नान दानादिक करेंगे वे मेरे अक्षय पदको प्राप्त होयंगे ॥३४॥ अक्षयतृतीयाके दिन जो मनुष्य पित्रीश्वरोंके निमित्त श्राद्ध करेहैं सो अक्षय होयहै ॥ ३५ ॥ इस संसारमें इस तिथिके समान वा अधिक कोई तिथि नहीं है अक्षयतृतीयाके दिन किया हुआ स्वल्प कर्मभी अक्षय फल देता है॥३६॥ हे राजन् !

ये कुर्वन्ति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः । व्याजेनापि स्वभावाद्वा यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ३४ ॥ ये चाक्षयतृतीयायां पितॄनुद्दिश्य मानवाः । श्राद्धं कुर्वन्ति तेषां वै तदानन्त्याय कल्पते ॥ ३५ ॥ न चानया तिथिर्लोके समा वा नाधिका भुवि । अस्यां कृतं स्वल्पमपि तदक्षय्यफलं भवेत् ॥३६॥ यो गां दद्यान्नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । सर्वसंपत्प्रवर्षांख्या भुक्तिमुक्तिः करे स्थिता ॥३७॥ यो हि दद्यादनड्वाहं सर्वपापविनाशनम् । कालमृत्युविमुक्तः सन् दीर्घांयुष्यमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ वैशाखमासे यो धर्मान् कुरुते मत्प्रियावहान् । तेषां मृत्युजगजन्मभयं पापं हराम्यहम् ॥३९॥ यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यां सकलैरपि । मासधर्मैर्न तुष्टः स्यां मासो मे माधवः प्रियः ॥ ४० ॥

जो कुटुंबी ब्राह्मणको गौका दान देताहै उसे संपूर्ण संपत्ति मिलैहैं और भक्ति तथा मुक्ति दोनों हस्तगतहैं ॥ ३७ ॥ जो बैलका दान करै उसके संपूर्ण पाप दूर होय जाय हैं कालमृत्युसे छूटकर दीर्घायु पावै है ॥३८॥ जो वैशाखमें मेरे प्रिय करनेवाले धर्मोंको करै हैं उनके मृत्यु, जरा, जन्म, भय, पाप सबको नष्ट करदेता हूं ॥३९॥ जैसा मैं वैशाखोक्त धर्मोंसे प्रसन्न होता हूं वैसा अन्य धर्मसे प्रसन्न नहीं होता हूं सब मासोंमें वैशाखमास मुझे

बहुत प्रिय है॥४०॥ जिनने सब धर्म त्याग दिये हैं जो उस ब्रह्मचर्यसे रहितहैं वे भी वैशाखोक्तधर्मोंमें निरंतर रहनेसे अव्यय पदकी प्राप्तिकरे हैं॥४१॥ जो तप सांख्य योग और यज्ञादिकसेभी मिलना दुर्लभहै उस धामको वैशाखोक्तधर्मोंका आचरण करनेसे मनुष्य प्राप्त करेंहैं ॥४२॥ यही वैशाखमास सहस्रों पापोंको दूर करदेयहै जब प्राणी मेरे चरणोंका स्मरण करै तब प्रायश्चित्तकी कुछ अवश्यकता नहीं है ॥ ४३ ॥ वनमें गुरुके उपदेशसे तुम

सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्यविवर्जिताः । वैशाखमासनिरता यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥ ४१ ॥ यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्मखैरपि । तद्धाम परमं यान्ति वैशाखनिरता नराः ॥४२॥ अपि पाप सहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ। प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा ॥ ४३ ॥ गुरूपदिष्टः कान्तारे वैशाखे निरतो भवान् । समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप ॥४४॥ धर्मेणानेन संप्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामि ते । भुक्त्वा भोगान् यथाकामान् देवैरपि सुदुर्लभान् ॥४५॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा देवदेवो जनार्दनः । पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥४६॥ ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यन्तविस्मितः । हृष्टपुष्टतनुर्भूपो लब्धनष्टधनो यथा॥४७॥

वैशाखके धर्मोंमें तत्पर हुए और जगत्के नाथ भगवान्की आराधनासे तुमको सब वस्तु प्राप्त होगई ॥ ४४ ॥ इस धर्मसे प्रसन्न होयके मैंने साक्षात् दर्शन दिये हैं तू अब देवताओंको दुर्लभ यथेप्सित भोगोंका भोग कर ॥ ४५॥ देवदेव जनार्दन ऐसे राजाको वरदे सबके देखते देखते वहीं अंतर्धान होय जाते भये ॥४६॥ तब वह राजा अत्यन्त विस्मित होता हुआ और ऐसा हृष्टपुष्ट हुआ जैसे कोई खोये हुए धनको प्राप्त करके होयहै ॥४७॥

तदनन्तर भगवान्में चित्त लगाय पृथ्वीका शासन करता हुआ बडे बडे महात्मा और गुरुसे नित्यप्रति ज्ञान प्राप्त करता हुआ ॥ ४८ ॥ और वासुदेव भगवान्के अतिरिक्त किसीको नहीं मानता हुआ जिसके संपर्कसे दारा अमात्य और सुतादि सब प्रिय होते हुए ॥४९॥ वैशाखोक्त संपूर्ण धर्मोंको वारंवार करता हुआ जिसके प्रभावसे पुत्रपौत्रादिकी वृद्धि हुई ॥५०॥ और देवताओंकीभी दुर्लभ संपूर्ण मनोरथोंको भोगकर अन्तमें चक्रपाणि

ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः । महद्भिर्बोधितो नित्यं गुरुभिश्चानिरन्तरम् ॥ ४८ ॥ नान्यं प्रियतमं मेने वासुदेवमृते नृपः । यत्संपर्कात्प्रिया आसन् दारामात्यसुतादयः ॥ ४९ ॥ सर्वान् धर्मांश्चकारासौ वैशाखोक्तान्पुनः पुनः । तेन पुण्यप्रभावेण पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥५०॥ भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् देवानामपि दुर्लभान् । अन्ते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः॥५१॥ य इदं परमाख्यानं शृण्वन्ति श्रावयन्ति च । ते सर्वपापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥५२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पाञ्चालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रुतिकीर्तिरुवाच ॥ वैशाखधर्मानखिलानिहामुत्र फलप्रदान् । भूयोऽपि शृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाद्यापि मानद ॥ १ ॥

विष्णु भगवान्की सायुज्यताको प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ जो इस परम सुन्दर आख्यानको सुनें सुनावें हैं पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परमपदको प्राप्त होयहैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ श्रुतिकीर्ति बोले-हे मुनिवर ! मैंने संपूर्ण वैशाखके धर्म श्रवण किये जो लोक परलोक दोनों जगह फलदायक हैं परंतु सुनते सुनते भी मेरी तृप्ति नहीं होयहै॥१॥

जहां निष्कपट धर्म है जहां शुभदायक विष्णुकी कथा होयहै कानोंको सुखदायक उस कथाके सुनते सुनते तृप्ति नहीं होयहै ॥ २ ॥ मेरे पूर्वजन्मके कियेहुए पुण्य उदय होयगये हैं जो आप आतिथ्यके व्यपदेशसे मेरे घर पधारे हैं ॥ ३ ॥ आपके मुखसे निकले हुए परम अद्भुत अमृतरूपी वचनोंको पान कर ऐसा तृप्त हुआ हूं कि अब मैं न पारमेष्ठ्य चाहूं हूं न मोक्षकी इच्छा है ॥ ४ ॥ अतएव भुक्तिमुक्तिके देनेवाले विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न

यत्र चाकैतवो धर्मो यत्र विष्णुकथाः शुभाः । तच्छास्त्रं शृण्वतो नैव तृप्तिः कर्णरसायनम् ॥ २ ॥ पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम् । आतिथ्यव्यपदेशेन यद्भवान् गृहमागतः ॥३॥ वचोऽमृतं मुखाम्भोजनिःसृतं परमाद्भुतम् । पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षं वा च न कामये ॥४॥ तस्मात्तानेव धर्मान्मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् । विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् भूयो विस्तरतो वद ॥ ५ ॥ इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवो महायशाः । संहृष्टात्मा शुभान् धर्मान् पुनर्व्याहर्तुमारभे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । वैशाखधर्मविषयां भावितां मुनिभिर्मुहुः ॥ ७ ॥ पम्पातीरे द्विजः कश्चिच्छङ्खो नाम महायशाः । गुरौ सिंहगते चागान्नदीं गोदावरीं शुभाम् ॥ ८ ॥

करनेहारे दिव्यधर्मोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ ५ ॥ राजाके ये वचन सुन महायशस्वी श्रुतदेवजो अति प्रसन्न होय शुभ धर्मोंका फिर वर्णन करने लगे ॥६॥ श्रुतदेव बोले हे राजन् ! मैं पापके नष्ट करनेवाली कथा फिर कहूं हूं तू चित्त लगाय सुन यह वैशाखके धर्मसंबन्धी मुनियों करके भावितहै ॥ ७ ॥ पंपातीरपै एक शंखनाम महायशस्वी ब्राह्मण सिंहके बृहस्पतिमें गोदावरी नदीपर आता हुआ ॥ ८ ॥

और भीमरथीके पार जायकर कंटकयुक्त और पहाडी वनमें जाता हुआ इस वनमें न जल था न कोई मनुष्य था ऐसे वैशाखके तापसे कर्शित ॥९॥ मध्याह्नके समय यह ब्राह्मण वृक्षके छायामें बैठगया उसी समय धनुष लिये हुए एक दुराचारी व्याध आता हुआ ॥ १० ॥ यह सब प्राणियोंसे घृणा करता था यह साक्षात् दूसरे यमराजके समान था इसने सूर्यके समान प्रकाशमान कुंडलधारी इस ब्राह्मणको॥११॥ देखकर बांध लिया और

तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कान्तारे कण्टकाचले। निर्जले निर्जने घोरे वैशाखे तापकर्शितः ॥ ९ ॥ वृक्षे चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः। तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधश्चापधरः शठः ॥ १० ॥ निर्घृणः सर्वभूतेषु कालान्तक इवापरः। तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुण्डलादिकमुग्रधीः। उपानहौ च छत्रं च अक्षमालां कमण्डलुम् ॥ १२ ॥ पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥ १३ ॥ ततः स गच्छन् पथि शर्कराविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे। संतप्तपादस्तृणछादिते स्थले क्वचिच्चचारोपसन्नूर्ध्वरेताः ॥१४ ॥ स वै द्रुतं संपतन् क्वापि तिष्ठन् हाहेतिवादी च जगाम तूर्णम्। दृष्ट्वा मुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यंगते पूष्णि दया बभूव ॥ १५ ॥

उसके कुंडल, जूता, छत्र, रुद्राक्षकी माला, कमंडलु सब छीन लिये ॥१२॥ और फिर उसे छोडकर बोला कि जा चलाजा ॥१३॥ऐसे वह ब्राह्मण उस दुष्टसे छूटकर रस्तामें चलनेलगा जहां मार्गमें सूर्यकी किरणसे तप्त रेती पिछे रही जिनपर पांय जलते जांय है, पीनेको जल मिले नहीं ऐसे कंटकयुक्त वनमें तृणसे आच्छादित किसी स्थलपर वह ब्रह्मचारी बैठताहुआ कहीं गिर पडे कहीं-ठहर जाय ऐसे उस व्याकुलके हाय हाय शब्दको

सुनकर वह व्याध शीघ्र ही उसके पास गया और मुनिको खेदसे व्याकुल देख दुपहरीके समय इसके हृदयमें दया उत्पन्न होय आय आई ॥१४॥१५॥ यह व्याध धर्मसे विमुख और पापबुद्धिमें रत था परन्तु दया करके मनमें कहने लगा कि मैंने जो अपने चौर्य धर्मसे दूसरे वनमें इससे ले लिया है सो सब हमारी जातिका परम धर्म है ॥१६॥१७॥ अतएव इस दुःखी ब्राह्मणके दुःखको दूर करनेके निमित्त ये जो मेरी पुरानी जूती है तिन्हें देय

व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम् ॥ १६ ॥ चौर्येणैव स्वधर्मेण यद्गृहीतं वनान्तरे । तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥ १७ ॥ तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये । धर्मेणोत्तमविप्रस्य पादरक्षा भविष्यति ॥ १८ ॥ जीर्णे चोपानहौ दिव्ये वर्तेते पादयोर्मम । नाऽऽभ्यामस्ति च मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम् ॥ १९ ॥ इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते । शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥ २० ॥ उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृतिं च परां ययौ । सुखी भवेति तं व्याधमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ २१ ॥

देउंगो ।जिनसे धर्मसे उत्तम ब्राह्मणके पांवनकी रक्षा होय जायगी मेरे पांवमें तौ नई जूती हैं अब इन पुरानी जूतीनसे मोंहि कुछ भी प्रयोजन नहीं है सो ये पुरानी अवश्यही देय देनी चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ ऐसे मनमें विचार शीघ्र जाय वे उपानत् उस ब्राह्मणको दे देता हुआ जिसके पांव गरम बालूसे जल रहें ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको देता हुआ ॥ २० ॥ उन जूताओंको लेय कर अत्यन्त सुखी होय आशीर्वाद देने लगा कि सुखी हो ॥२१॥

जो वैशाखमें तैंने यह दान किया है तेरे पुण्य उदय होय आये हैं इस दानके प्रभावसे विष्णुभगवान् दुर्बुद्धि व्याधपरभी प्रसन्न होय जाय हैं॥२२॥ जो सुख सब प्रकारकी वस्तुओंके प्राप्त करनेसे होय है वही मेरे लिये भी हुआ है तब यह वाक्य सुनकर अत्यन्त विस्मित होय ॥ २३ ॥ ब्रह्मिष्ठ ब्रह्मवादी ब्राह्मणसे कहने लगा हे महाराज ! यह आपकीही वस्तु आपको दीनी हैं इनमें मेरा क्या पुण्य है ॥ २४ ॥ तुमने वैशाखकी प्रशंसा करी

नूनं सुपक्वपुण्योऽयं वैशाखे दत्तवानम्। व्याधस्यापि च दुर्बुद्धेः प्रायो विष्णुः प्रसीदति ॥२२॥ सर्वस्याप्त्या च भूयोऽपि यत्सुखं तदभून्मम । ततोभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥ २३ ॥ व्याजहार पुनर्विप्रं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम् । त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम ॥ २४ ॥ प्रशंससि च वैशाखं हरिस्तुष्टो भवेदिति । एतदाचक्ष्य मे ब्रह्मन् को वैशाखस्तु को हरिः ॥ २५ ॥ को धर्मः किं फलं तस्य शुश्रूषोर्मे दयानिधे । इति व्याधवचः श्रुत्वा शंखस्तुष्टमना अभूत् ॥ २६ ॥ प्रशंसन् स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः । इदानीं दत्तवान् पादत्राणे मे लुब्धकः शठः ॥ २७ ॥यद्दुर्बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत । सर्वेषामेव धर्माणां फलं जन्मान्तरेषु वै ॥ २८ ॥

कि हरिभगवान् प्रसन्न होंयगे सो हे ब्रह्मन् ! वैशाख कौन है ? और हरि कौनहैं ? ॥ २५ ॥ यह सब मेरे आगे कहो धर्म क्या है और उसका फल क्याहै हे दयानिधे ! यह मेरी सुननेकी इच्छा है व्याधके यह वचन सुन शंख प्रसन्नमन होताहुआ ॥ २६ ॥ फिर मनमें विस्मयकर वैशाखकी प्रशंसा करता हुआ इस लुब्धक शठने मेरे लिये अभी पादत्राण दिये ॥ २७ ॥ इस दुर्बुद्धिकी बडी विचित्र विषमता हुई है संपूर्ण धर्मोंका फल

जन्मान्तरमें मिलै हैं॥ २८ ॥ परन्तु वैशाखके धर्मोंका फल तत्काल मिलता है पापाचारी दुर्बुद्धि दुरात्मा व्याधकी भी दैवयोगसे पादत्राणका दान करनेसे सत्त्वशुद्धि हो गई जो काम विष्णुको प्रियहै और जिससे निर्मल संतोषकी प्राप्ति होती है वही धर्म मनुसे आदि लेकर सब धर्मवेत्ता उसीको धर्म कहें हैं वैशाखमासके धर्म विष्णुभगवान्‌को अतीव प्रियहैं ॥२९-३१॥ केशव भगवान् जैसे माधवमासके धर्मोंसे प्रसन्न होय हैं वैसे संपूर्ण दान,

वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः क्षणं नृणाम् । पापचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्यापि दुरात्मनः ॥ २९ ॥ दैवादुपानहोर्दानात्सत्त्वशुद्धिरभूदहो । यच्च विष्णोः प्रिय कर्म यत्तत्सन्तोषनिर्मलम् ॥३०॥ तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः । धर्मा माधवमासीयाः प्रिया विष्णोरतीव ते ॥ ३१ ॥ धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः । न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामखैः ॥ ३२ ॥ नानेन सदृशो धर्मः सर्वधर्मेषु विद्यते । मा गयां यातु मा गङ्गां मा प्रयागं तु पुष्करम् ॥ ३३ ॥ मा केदारं कुरुक्षेत्रं मा प्रभासं स्यमन्तकम् । मा गोदां च मा कृष्णां च मा सेतुं मा मरुद्वृधाम् ॥ ३४ ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यं शंसन्ती च कथापगा । तत्र स्नातस्य वै विष्णुः सद्यो हृद्यवरुद्ध्यते ॥ ३५ ॥

तप और बडे बडे यज्ञोंसे भी प्रसन्न नहीं होय हैं॥३२॥ संपूर्ण धर्मोंमें इसकी बराबर कोई धर्म नहीं है, गयामें मतजाओ, गंगामें मतजाओ, प्रयाग और पुष्करमें मतजाओ ॥३३॥ केदारनाथकुरुक्षेत्र और प्रभासादि तीर्थोंपर मतजाओ, गोदावरी, कृष्णा, सेतुबन्ध, रामेश्वर, कावेरी आदि तीर्थोंमें जानेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥३४॥ वैशाखके धर्मोंको निरूपण करनेवाली कथानदीमें जो कोई स्नानकरै है विष्णुभगवान् उसकेहृदयमें विराजेहैं॥३५॥

इस माधवमासमें जो कृत्य थोडेही द्रव्यसे सिद्ध होयहै वह बहुत खर्च करनेसे अथवा दानसे अथवा धर्मसे अथवा यज्ञोंसे सिद्ध नहीं होयहै ॥३६॥ हे व्याध ! यह वैशाखमास पुण्योंका बढानेवालाहै इस मासमें तापके नाश करनहारी पादुका तैने मेरे लिये दीनी है ॥ ३७ ॥ इससे तेरे पूर्व जन्मके कियेहुए सुकृत उदय होय आये हैं हे व्याध ! तेरे ऊपर भगवान् प्रसन्न होयंगे और तोहि कल्याणकी प्राप्ति होयगी ॥ ३८ ॥ नहीं तो तेरी ऐसी

मासे माधवसंज्ञेऽस्मिन् यत्स्वल्पेनैव साध्यते । एतद्बहुव्ययैर्दानैर्न धर्मैर्नापि वै मखैः ॥३६॥ मासोऽयं माधवो नाम व्याध पुण्य विवर्धनः । तस्मिन् मह्यं त्वया दत्ते पादुके तापनाशने ॥ ३७ ॥ तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम् । तुष्टस्तु भगवान् प्रायः श्रेयो व्याध भविष्यति ॥ ३८ ॥ अन्यथा ते कथं भूयाद्बुद्धिरेतादृशी शुभा । मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली ॥ ३९ ॥ सिंहो व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत्क्रोधविह्वलः । मध्ये दृष्ट्वा च मातङ्गं दैवाद्देवेन कल्पितम् ॥४०॥ तं हन्तुमुद्यतो गच्छन् पदाक्रान्तं व्यवस्थितम् । तयोर्युद्धमभूद्राजन् सिंहमातङ्गयोर्वने ॥ ४१ ॥ श्रान्तौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षन्तौ च तस्थतुः । व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना ॥ ४२ ॥

शुभ बुद्धि होनी कठिन थी जब मुनीश्वर ऐसे कहरहेथे तबही मृत्यु करके प्रेरित बडा बली ॥ ३९ ॥ सिंह व्याघ्रको वधके निमित्त क्रोधसे विह्वल होय दौडता हुआ बीचमें दैवयोगसे देवकल्पित हाथीको देखकर ॥ ४० ॥ उसके मारनेको महान उद्योग करता हुआ उस वनमें उन दोनों सिंह और हाथियोंका ऐसा घोर संग्राम हुआ ॥४१॥कि दोनों थककर गिर पडे युद्ध जिनने त्याग दिया और दोनों एक दूसरेको देखते पडेरहे और

मुनीश्वरने जो कथा व्याधके प्रति कही ॥४२॥ जो संपूर्ण पातकोंके नाश करनेवाली है दैवयोगसे उन दोनोंने यह कथा सुनी इस कथाके श्रवण मात्रसे इनके देह निर्मल होयगये पाप सब जातेरहे ॥४३॥शापसे छूट जानेके कारण तत्काल पशुयोनिको त्यागकर स्वर्गको जाते हुए दोनोंको दिव्य देह मिलगये और सुन्दर सुगंधित चन्दनादिसे लेपित ॥४४॥ दिव्य विमानपै बैठ जिनमें दिव्य स्त्री सेवा करती जाय हैं वे दोनों शिर झुकाय हाथ

समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ । तेनैव मासमाहात्म्यश्रवणेनामलाशयौ ॥४३॥ शापान्मुक्तौ च तौ देहात् सद्यो मुक्तौ दिवं गतौ । दिव्यरूपधरौ दिव्यौ दिव्यगन्धानुलेपनौ ॥४४॥ दिव्यं विमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ । सद्योऽवनतमूर्द्धानौ प्राञ्जली चोपतस्थतुः ॥ ४५ ॥ मुनीन्द्रो धर्मवक्ता च व्याधमुद्दिश्य वै पथि । तौ दृष्ट्वा विस्मितः प्राह कौ युवामिति निश्चलः ॥ ४६ ॥ दुर्योनौ तु कुतो जन्म युवयोर्वा कथं मृतिः । अहेतुर्विपिने चास्मिन् परस्परवधोद्यतौ ॥ ४७ ॥ एतत्सर्वं सुविस्तार्य सम्यग्वदत मेऽनघौ । इत्युक्तौ मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः ॥ ४८ ॥ मतङ्गस्य मुनेः पुत्रौ दन्तिलः कोहलोऽपरः । शापदोषेण तौ जातौ नाम्ना दन्तिलकोहलौ ॥ ४९ ॥

जोड ठाढे भये ॥ ४५ ॥ धर्मोपदेशक मुनिवर मार्गमें व्याधके निमित्त उन्हें देख विस्मय होय पूछने लगे तुम कौन हो ॥४६॥ तुम्हारा जन्म दुष्ट योनिमें कैसे हुआ है और निष्कारणही इस वनमें एक दूसरेके मारनेके उद्यत हुए तुम्हारी मृत्यु कैसे होती हुई॥४७॥ हे निष्पापो ! यह सब कथा विस्तारपूर्वक मेरे सामने कहो जब मुनिने ऐसे कहा तब वे कहने लगे ॥४८॥ मतंगमुनिके दंतिल और कोहल दो पुत्र हुए शापके दोषसे दंतिल

और कोहल ये दो नाम हुए ॥४९॥ रूपयौवनसे संपन्न संपूर्ण विद्याओंमें विशारद हमसे धर्म और अर्थमें निपुण हमारे पिताने हमसे कही ॥५०॥ मतंग नाम ब्रह्मर्षि संपूर्ण धर्मोका जाननेहारा कहने लगा हे पुत्रो ! मधुसूदन भगवान्‌के प्रिय मासमें ॥ ५१ ॥ मार्गमें प्याऊ लगावो और मनुष्योंकी पंखासे हवा करो मार्गमें छायाके स्थान बनावो अन्न और शीतल जलका दान करो ॥५२॥ प्रातःकाल स्नान करो भगवान्‌का पूजन

रूपयौवनसम्पन्नौ सर्वविद्याविशारदौ । आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिता धर्मार्थकोविदः ॥ ५० ॥ मतङ्गोनाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः । वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे ॥ ५१ ॥ प्रपां च कुरुतं मार्गे जनान्वीजयतं क्षणम् । मार्गे छायां विधत्तं च भूर्यन्नं शीतलाम्बु च ॥ ५२ ॥ कुरुतं स्नानमुषसि तथैवार्चयतं विभुम् । कथां च शृणुतं नित्यं यया बन्धो निवर्तते ॥ ५३ ॥ एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावपि दुर्मती । कुद्धाऽभवं दन्तिलोऽहं मत्तोहं कोहलाह्वयः ॥ ५४ ॥ क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः । पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ॥ ५५ ॥ अब्रह्मण्य च राजानं त्यजेत सद्यो न चेत्पतेत् । दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं ये प्रकुर्वते ॥ ५६ ॥

करो कथा श्रवण करो जिससे संसारके बन्धनकी निवृत्ति होय ॥५३॥ ऐसे अनेकों प्रकारके वाक्यसे हमको समझाया परन्तु हमारी बडी खोटी बुद्धि सो समझमें कुछभी नहीं आता हुआ पिताके वाक्य सुनकर मुझ दंतिलको अत्यन्त क्रोध हुआ और कोहल मदोन्मत्त होयगया ॥ ५४ ॥ तब धर्म है लालसा जिनकी ऐसे हमारे पिताने क्रोधित हो शाप दिया कि धर्मसे विमुख पुत्र, कटु वाक्य कहनेवाली स्त्री ॥५५॥ और अब्रह्मण्य राजाको

तत्काल त्याग दे, जो न त्यागे तो पापी होय जो दाक्षिण्यसे अथवा लोभके वशसे इनका संसर्ग करते हैं ॥५६॥ वे चौदह मन्वन्तर पर्य्यंत नरक भोगे हैं ऐसे विचार मद और क्रोधसे परिप्लुत हम दोनोंको शाप देतेहुए ॥ ५७॥ हे दंतिल ! तू अपने क्रोधके कारण सिंहकी योनि प्राप्त करैगा और मदोन्मत्त कोहलको मतवाले हाथीकी योनि मिलैगी ॥५८॥ तब वो हम बडे दुःखी हुए और शापसे निवृत्तिकेलिये प्रार्थना करते हुए हमारी प्रार्थना सुन

ते सर्वे नरकं यान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । इति ज्ञात्वा शशापावां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥ ५७ ॥ क्रुद्धोऽहं दन्तिलो भूयाः सिंहः क्रोधपरिप्लुतः । मत्तस्तु कोहलो भूयान्मत्तो मातङ्गयूथपः ॥ ५८ ॥ कृतानुतापौ पश्चात्तु प्रार्थयावो विमोचनम् । आवाभ्यां प्रार्थितो भूयो विशापं च ददौ पिता ॥ ५९ ॥ युवां प्राप्य च दुर्योनिं कियत्कालान्तरेपि च । सङ्गमो भविता तत्र परस्परवधैषिणोः ॥ ६० ॥ तस्मिन्नेव हि समये संवादं व्याधशंखयोः । वैशाखधर्मविषयो दैवाद्वां श्रवणस्य च ॥ ६१ ॥ गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति । शापान्मुक्तौ पूर्वमेव रूपमास्थाय पुत्रकौ ॥ ६२ ॥ मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत् । इति शप्तौ च गुरुणा दुर्योनिं प्राप्य दुर्मती ॥ ६३ ॥

पिताने शापमोक्षका उपाय बताया ॥ ५९ ॥ तुम दोनों पशुयोनिको प्राप्त होय थोडे दिन पीछे एक दूसरेको मारनेके लिये उद्यत होओगे ॥६०॥ इसी समय व्याध और शंखका संवाद वैशाखधर्मके विषयका तुम्हारे कानमें दैवयोगसे जायगा ॥ ६१ ॥ तब तत्क्षण तुम्हारी मुक्ति होय जायगी और शापसे छूट पूर्वरूप धारण कर ॥६२॥ मेरे पास निवास करोगे मेरा वचन मिथ्या नहीं है ऐसे पिताके शापसे हमको पशुयोनि मिली॥६३॥

आपसमें एक दूसरेके वधकी हमारी इच्छा हो दैवयोगसे यहां चले आये आपके दिव्य संवादको सुनते हुए ॥ ६४ ॥ उसीके प्रभावसे हमारी तत्काल मुक्ति होयगई ऐसे सब कथा कह मुनीश्वरको नमस्कार कर ॥ ६५ ॥ मुझसे आज्ञा मांग अपने पिताके पास चले गये सोई सब कथा दयानिधि मुनिने व्याधको सुनाई ॥६६॥ देख, वैशाखका माहात्म्य कैसा है ? इसके श्रवणका बडा फल है जो कोई क्षणभरभी सुनेहै उसे तत्काल

प्राप्य दैवात्सङ्गतिं च परस्परवधैषिणौ । संवादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥ ६४ ॥ तेन सद्यो विमुक्तिश्च क्षणादेवावयोरभूत् । इति सर्वं समाख्याय प्रणम्य च मुनीश्वरम् ॥ ६५ ॥ समामंत्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरन्तिकम् । तदेव संप्रहृश्याह मुनिर्व्याधं दयानिधिः ॥ ६६ ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत । मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ६७ ॥ इति ब्रुवाणं मुनिपुङ्गवं तं दयानिधिं निस्पृहमग्र्यबुद्धिम् । विशुद्धसत्त्वं सुकृतैकपात्रं संन्यस्तशस्त्रः पुनराह व्याधः ॥६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्याध उवाच ॥ भवतानुगृहीतोऽस्मि मुने पापोतिदुष्टधीः । दयालवो महान्तो हि स्वभावादेव साधवः ॥ १ ॥

मुक्ति मिलै है ॥६७॥ जब मुनिने ऐसे कही तब व्याध अपने शास्त्रोंको फेंक कृपालु, निस्पृह,प्रबलबुद्धि, विशुद्धसत्त्व और पुण्यपात्र ऋषिसे कहने लगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दंतिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्याध बोला—हे मुने । मैं बहुत पापी और दुष्टबुद्धि हूं आपने मेरे ऊपर बडी दया करी बडे साधुमहात्मा स्वाभाविक दयालु होते हैं ॥ १ ॥

कहां मैं अकुलीन व्याध और कहां मेरी ऐसी बुद्धि यह सब केवल आपके अनुग्रहका कारण है ॥ २ ॥ हे साधो ! मैं आपका शिष्यहूं आपका कृपापात्रहूं आपद्वारा अनुग्रहके योग्य हूं पुत्र हूं हे दयानिधे ! मेरे ऊपर ऐसी दया कीजिये जिससे फिर मेरी बुद्धि दुष्ट होयकर अनर्थ कार्योंके करनेमें प्रवृत्त न होय सत्संगति होनेके पश्चात् फिर दुःख भोगना पडै ॥३॥४॥ इससे हे प्रभो ! मुझे ऐसे पापनाशक मंत्रोंका उपदेश कीजिये जिससे

क्व व्याधश्चाकुलेतोहं क्व च वा मतिरीदृशी । केवलं भवतामेव मन्येऽनुग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥ अथ साधो च शिष्योस्मि कृपापात्रोस्मि मानद । अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोस्मि कृपां कुरु दयानिधे ॥३॥ यथा मे न पुनर्भूयादसन्मतिरनर्थदा । सद्भिस्तु सङ्गतिः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥ ४ ॥ तस्माद्बोधय मां विप्र सूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः । येन चाद्धा तरिष्यन्ति संसाराब्धिं मुमुक्षवः ॥ ५ ॥ साधूनां समचित्तानां तथा भूतदयावताम् । न हीनश्चोत्तमः क्वापि नात्मीयो हि परस्तथा ॥ ६ ॥ एकाग्रेण विचिन्वन्ति चित्तशुद्धिं च पृच्छति । सर्वदाषयुतो वापि सर्वधर्मोज्झितोपि वा ॥ ७ ॥ कृतानुतापश्च यदा यदा पृच्छति वै गुरुम् । तदेवोपदिशन्त्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम् ॥ ८ ॥

मुमुक्षुजन इस संसारसागरसे सहजहीमें पार लगजांय ॥५॥ साधुमहात्मा समद्रष्टा और प्राणीमात्रपर दया करें हैं उनकी दृष्टिमें न कोई अधम है न उत्तम है न अपना है न पराया है ॥६॥ जो एकाग्रतासे विवेचना करें चित्तकी शुद्धतासे पूछें वे कैसेही दोषोंसे युक्तहों कैसेही धर्महीन हों ॥ ७ ॥ परन्तु जब वे अपने कियेहुए दुष्कर्मोंका पश्चाताप करके गुरुसे पूछते हैं तबही वे संसारबन्धनसे छुडानेवाले ज्ञानका उपदेश करै हैं ॥ ८ ॥

जैसे गंगा स्वाभाविकही मनुष्योंके पापोंको दूर करे है ऐसेही दुर्बुद्धियोंके उद्धार करनेका स्वभाव महात्माओंका होता है ॥ ९ ॥ हे भक्तवत्सल ! हे दयालो ! आपकी संगतिसे शुश्रूषा, नम्रता और चित्तकी शुद्धिद्वारा मैं शुद्ध हू मुझे उपदेश करिये ॥१०॥ व्याधकी ऐसी ऐसी बातें सुन बडे विस्मय चित्तसे मुनिने कहा, धन्य है धन्य है हे व्याध ! ऐसे कह धर्मोपदेश करने लगे॥ ११॥शंखमुनि बोले–हे व्याघ ! जो तू शान्तिकी इच्छा करैहै तो वैशा

यथा गंगा मनुष्याणां पापनाशस्वभाविनी । तथा मन्दसमुद्धारस्वभावाः साधवः स्मृताः ॥९॥ मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल । शुश्रूषुत्वान्नतत्त्वाच्च शुद्धत्वात्तव संगतेः ॥ १० ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः । साधुसाध्विति संभाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥११॥ शंख उवाच ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् संसाराब्धिविमोचकान्॥ कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध शमिच्छसि ॥ १२ ॥ आतपो बाधते घोरो न च्छाया नाम्बु चात्र च । तस्मात् स्थलान्तरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते ॥ १३ ॥ तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्य पापनाशनम् ॥ १४ ॥ विष्णोर्माधव-मासस्य यथा दृष्टं यथाश्रुतम् । इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृताञ्जलिः ॥१५ ॥

खके धर्मोको कर ये धर्म बडे दिव्य और संसारके बन्धनोंसे छुडानेवाले हैं इनसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होय हैं ॥१२॥ हे व्याध ! यहां धूप बहुत सतावे है न यहां छाया है न पानी है, चल, दूसरी जगह चलें जहां छाया होय ॥ १३ ॥ वहां चलकर जल पीकर छायामें बैठके स्वस्थचित्तसे तेरे सामने यह पापनाशक माहात्म्य वर्णन किये जांयगे ॥१४ ॥ विष्णुभगवान्‌के माधवमासका माहात्म्य जैसे सुना गया है और देखा गया है सो सब तेरे सामने

वर्णन करूंगा । मुनिकी यह बात सुन व्याध हाथ जोड कहता हुआ ॥१५॥ यहांसे थोडीही दूरपर एक निर्मल सरोवर है उसके किनारेपर कैथके बहुतसे पेड हैं जो फलके बोझसे नीचे झुकरहे हैं ॥१६॥ वहां चलिये निश्चयही वहां चित्त प्रसन्न होय जायगा व्याधकी यह बात सुन शंख मुनि उसके संग चले ॥१७॥ थोडी दूर चलकर क्या देखे हैं कि एक निर्मल सरोवर है वहां बगुला राजहंस और चकवाचकवी शोभा दे रहे हैं ॥१८॥

इतोऽविदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे । कपित्थास्तत्र वै सन्ति फलभारेण पीडिताः ॥ १६ ॥ गच्छावस्तत्र संतुष्टिर्भविता नात्र संशयः । व्याधेनैवं समादिष्टस्तेन साकं ययौ मुनिः ॥१७॥ कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाग्रे सरोवरम् । बककारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ १८ ॥ हंससारसक्रौञ्चाद्यैः समन्तात्परिशोभितम् । कीचवङ्कषाद्यैश्च कूजितं भ्रमरैरपि ॥ १९ ॥ नक्रकच्छपमीनाद्यैरगाह्यं सुमनोहरम् । कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकादिभिर्महत् ॥ २० ॥ शतपत्रैः कोकनदैः समन्तात्परिशोभितम् । पक्षिणां च कलारावैर्मुखरन्नयनोत्सवम् ॥ २१ ॥ तटे कीचकगुल्मैश्च तथा वृक्षैश्च शोभितम् । वटैः करञ्जैर्नीपैश्च चिञ्चिणीभिस्तथैव च ॥ २२ ॥

हंस सारस और क्रौंच चारों ओर फिर रहे हैं बाँस वंग और बेंत करके शोभित है भ्रमर गुंजार कर रहे हैं ॥१९॥ मगर कछुआ मीन आदि जल जीवोंसे परम मनोहर है कुमोदनी, उत्पल,कह्लार, पुंडरीक, शतपत्र, कोकनद आदि अनेक प्रकारके कमल शोभा देरहे हैं पक्षियोंके कलरवसे कान पडे शब्द सुनाई नहीं दें हैं नेत्रोंको बडा आनन्द होय है ॥२०॥२१॥ किनारेपर बांसके वृक्ष तथा अन्य वृक्ष चारों ओर अपूर्व शोभा दे रहे हैं

वड, कंजा, कदंब, इमली, नीम, पाकर, भियाल; चम्पा, बकुल, पुन्नाग, तुंबर, कैथ, आंवला और जामन आदि चारों ओर सुशोभित होय रहे हैं वनके हाथी हिरन सूवर और भैंसा किलोल कर रहे हैं ॥२२-२४॥ सस्से, सेही, रोझ, गैंडा, कस्तूरिया मृग, व्याघ्र, सिंह, भेंडिया, गधा, खच्चर, शरभ, सुरह गाय आदि अनेक पशु विचर रहे हैं बन्दर लंगूर आदि छलांग मारनेवाले जीव वृक्षकी शाखा शाखापर छलांग माररहे हैं ॥२५॥२६॥

निम्बप्लक्षप्रियालैश्च चम्पकैर्बकुलैः शुभैः। पुन्नागैस्तुम्बरैश्चैव कपित्थामलकैरपि ॥ २३ ॥ निष्पेषणैश्च जम्बूभिः समन्तात्परिशोभितम्। वन्यमातङ्गसारङ्गवराहमहिषादिभिः ॥ २४ ॥ शशैश्च शल्लकैश्चैव गवयैरुपशोभितम्। खड्गनाभिमृगाद्यैश्च व्याघ्रैः सिंहैर्वृकैरपि ॥ २५ ॥ खरान्तकैश्च शरभैश्चमरीभिः सुमण्डितम्। शाखाशाखान्तरं शीघ्रं प्लवमानैः प्लवंगमैः ॥ २६ ॥ मार्जारैश्चैव भल्लूकैर्भीषणं रुरुभिस्तथा। झिल्लीशब्दैश्च झंकारैः कीचकानां रवैस्तथा ॥२७॥ घोरवायुविनिर्घातदारुभारैः समन्वितम्। एतादृशं सरो दिव्यं व्याधेनैव प्रदर्शितम् ॥२८॥ ददर्श मुनिशार्दूलस्तृषया बाधितो भृशम् ॥ स्नात्वा मध्याह्नवेलायां सरस्यस्मिन् मनोरमे ॥२९॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः। देवपूजां ततः कृत्वा भुक्त्वा फलमतन्द्रितः ॥३॥

बिल्ली, रीछ और रुरू फिर रहेहैं झिल्ली झंकारे हैं बांस शब्द कर रहे हैं प्रचंड पवनके वेगसे वृक्ष झुक रहे हैं एवंभूत दिव्य सरोवर व्याधने मुनिको दिखाया ॥२७॥२८॥ तृषासे पीडित मुनि उस सरोवरको देखतेहुए और इस रमणीक सरोवरमें दुपहरके समय स्नान करते हुए ॥ २९ ॥ फिर वस्त्र धारणकर मध्याह्नकृत्य कर देवपूजनसे निश्चिन्त होय फलोंको खाते हुए ॥३०॥

ये कैथके फल बडे मीठे और श्रमनाशक थे इन्हींको व्याध लाया था ऐसे शंखमुनि सुखपूर्वक बैठे व्याधसे पूछने लगे ॥ ३१ ॥ हे धर्मश्रवणमें तत्पर व्याध ! तू कौन धर्म सुननेकी इच्छा करैहै धर्म बहुत हैं और उनके करनेकी विधि भी जुदी जुदी है ॥३२॥ इनमेंसे वैशाखोक्त धर्म सूक्ष्म और बहुत फलदायक हैं ये संपूर्ण मनुष्योंको इस लोक और परलोक दोनों जगह फलके देनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ जो तेरे मनमें पूछनेकी इच्छा

व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च । सुखोपविष्टः पप्रच्छ व्याधं धर्मरतं पुनः ॥ ३१ ॥ किं वक्तव्यं मया ह्यद्य तवादौ धर्मतत्पर । धर्माश्च बहवः सन्ति नानामार्गाः पृथग्विधाः ॥ ३२ ॥ तत्र वैशाखमासोक्ताः सूक्ष्मा अपि महार्थदाः । सर्वेषामेव जन्तूनामिहामुत्र फलप्रदाः ॥ ३३ ॥ यत्प्रष्टव्यं मनसि ते यद्यादौ तच्च पृच्छताम् । इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ३४ ॥ व्याध उवाच ॥ केन वा कर्मणा चासीद्व्याधजन्म तमोमयम् । केन वा चेदृशी बुद्धिः सङ्गतिर्वा महात्मनः ॥ ३५ ॥ एतच्चान्यत्समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो । इत्युक्तः पुनरप्याह शङ्खो नाम महामुनिः ॥ ३६ ॥ मेघगंभीरया वाचा स्मयमान मुखाम्बुजः ॥ शंख उवाच ॥ शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥ ३७ ॥

होय सोई पूछ । तब तौ मुनिकी बात सुन हाथ जोड कहता हुआ ॥३४॥ व्याध बोले हे महाराज ! मुझे कौन कर्म करनेसे तमोगुणमयी यह व्याधकी योनि मिली और कौन कर्मसे मेरी ऐसी बुद्धि होय गई और महात्माकी संगती हुई ॥३५॥ हे प्रभो जो आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो यह सब वृत्तान्त मेरे आगे कहिये यह सुन शंखमुनि हंसते हुए अपने मुखकमलसे मेघकीसी वाणीद्वारा कहनेलगे ॥ शंख बोले–हे व्याध ! तू शाकल

नगरमें पहिले वेदपाठी ब्राह्मण होता हुआ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तेरा नाम स्तंब था और श्रीवत्सगोत्रमें तेरा जन्म हुआ तेरा प्रेम एक वेश्यासे था उसकी संगतिके दोषसे ॥ ३८ ॥ तू नित्यकर्मोंका परित्याग कर शूद्रके समान घर आया तैंने किया त्यागदी ऐसे आचारहीन तुझ दुष्टकी एक स्त्री ब्राह्मणी बडी रूपवती थी वह वेश्यासहित तुझ नीचकी सेवा किया करती थी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तेरे प्रियके करनेवाली तुम दोनोंके चरण धोती तुम दोनों पलंगपर

स्तंबो नाम महातेजास्तथा श्रीवत्सगोत्रजः । तवेष्टा गणिका काचिदासीत्तत्सङ्गदोषतः॥ ३८ ॥त्यक्त्वा नित्यक्रिया नित्यं शूद्रवद्गृहमागतः । शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च ॥३९॥ ब्राह्मणी च तदा चासीद्भार्या कान्तिमती तव । सा त्वां पर्यंचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥४०॥ उभयोः क्षालयन्ती च पादांस्त्वत्प्रियकारिणी । उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता ॥४१॥ वेश्यया वार्यमाणापि पातिव्रत्यव्रतस्थिता । एवं शुश्रूषयन्त्या हि भर्त्तारं वेश्यया सह ॥४२॥ जगाम सुमहान् कालो दुःश्रिताया महीतले । अपरस्मिन् दिने भर्त्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् ॥ ४३ ॥ अभक्षयच्छूद्रधर्मांन्निष्पावांस्तिलमिश्रितान् । तदपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥ ४४ ॥

सोवे वह नीचे सोती और तुम दोनोंकी आज्ञामें तत्पर रहती ॥४१॥ वेश्याके निषेध करनेपरभी वह पतिव्रता अपने धर्ममें स्थित रही और वेश्यासहित अपने स्वामीकी सेवा करते करते ॥४२॥ यथा दुःख भोगते भोगते महान् काल व्यतीत होगया । एक दिन उसके स्वामीने भैंसका दूध और मूली भक्षण किये ॥४३॥ तथा शूद्रोंके भक्षण करनेकी वस्तु निष्पाव और तिल खाये इस अपथ्य भोजनसे उसे दस्त और वमन होगये ॥ ४४ ॥

इस अपथ्य सेवनसे दारुण भयंकर भगंदर रोग होयगया इस रोगसे रातदिन उसके घोर वेदना होनेलगी ॥४५॥ जबतक घरमें धन विद्यमान रहा तबतक वेश्याभी रहि आई फिर सब धनको ले घर छोडकर चलीगई ॥४६॥ जब वह अन्यके पास चलीगई तब इसे घोर घृणा उत्पन्न हुई और रोगसे अत्यन्त दुःखी होय दीन वाणीसे व्याकुलचित्तसे रोता हुआ अपनी ब्राह्मणीसे कहता हुआ। हे देवी ! मैं बहुत निष्ठुर और वेश्यासक्त हूं तू मेरी

अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगंदरः। स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः ॥ ४५ ॥ यावदास्ते गृहं वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता। गृहीत्वा तस्य सा वित्तं पश्चान्नोवास मन्दिरे ॥ ४६ ॥ अन्यस्य पार्श्वमासाद्य गता घोरा सुनिर्घृणा। ततः सदीनवचनो व्याधिबाधासुपीडितः ॥ ४७ ॥ उक्तवान् स रुदन् भार्यां रुजा व्याकुलमानसः। परिपालय मां देवि वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम् ॥४८॥ न मयोपकृतं किंचित्त्वयि सुन्दरि पापिना। यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत गर्हितः ॥ ४९ ॥ स षण्डो भविता भद्रे दशजन्मसु पञ्चसु। दिवारात्रं महाभागे निन्दितः साधुभिर्जनैः ॥ ५० ॥ पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै। अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तवाश्रुनयनेन वै ॥ ५१ ॥

रक्षा कर ॥४७॥४८॥ हे सुंदरी ! मैं पापीने तेरा कुछभी उपकार नहीं किया है जो गर्हित पापी नम्र हुई अपनी भार्याका मान नहीं करै है ॥४९॥ वह पन्द्रह जन्मपर्यन्त नपुंसक होयगा हे महाभागे ! रातदिन साधुमहात्माओंसे निंदित तेरी अवज्ञा करनेसे मैं पापयोनिमें पडूंगा मैं तेरे विनीतभावपर

क्रोधके मारे दग्ध हुआ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जब उसके स्वामीने ऐसे कही तब वह हाथ जोड बोली--हे कांत ! तुम मेरे प्रति दीनता मत करौ लज्जा भी मत करौ ॥५२॥ मैंने आपके ऊपर कभी क्रोध नहीं किया है जिससे आप दग्धहुए कहते हो पहिले कियेहुए पापही यहां आकर उदय होय हैं ॥५३॥ जो इनको सहन करै वही साध्वी स्त्री है और वही उत्तम पुरुष है मुझ पापिनीने पूर्वजन्ममें जो पाप किये हैं उनके भोगनेमें मुझे

एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाब्रवीत् । न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कान्त मां प्रति ॥ ५२ ॥ न चापि त्वयि मे क्रोधो येन दग्धोऽस्मि वक्ष्यसि । पुरा कृतानि पापानि दुःखानीह भवन्ति हि ॥ ५३ ॥ तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः । यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥ ५४ ॥ तद्भुञ्जन्त्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन । इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा शुश्रू-स्तमपालयत् ॥ ५५ ॥ आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी॥क्षीरोदवासिनं देवं भर्तारं चाप्यचिन्तयत् ॥५६॥ शोधयन्ती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च । नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन् कष्टाच्छनैः शनैः ॥ ५७ ॥ न सा स्वपिति रात्रौ तु न दिवा वर-वर्णिनी । भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमवोचत ॥ ५८ ॥

दुःख वा विषाद कुछ नहीं है ऐसे कह वह शोभनमुखी सेवा करने लगी ॥५४॥५५॥ अपने पिता और बंधुवर्गसे धन लायकर वह क्षीरशायी विष्णुभगवान् और अपने पतिकी सेवा शुश्रुषामें तत्पर होतीहुई ॥५६॥ दिनरात मलमूत्र धोयकर शुद्ध रक्खे और अपने स्वामीके जो कीडा पडगये उन्हें धीरे धीरे नखसे खैंचे ॥५७॥ रातादिन नींद त्याग दीना भर्ताके दुःखके संतापसे दुःखी होय कहने लगी ॥ ५८ ॥

हे देवताओ ! हे पित्रीश्वरो ! तुम मेरे भर्ताकी रक्षाकरौ तुम मेरे स्वामीको रोगहीन और पापरहित करौ ॥५९॥ रक्त मांस और भैंसके दूधसे युक्त सुन्दर अन्न मैं अपने पतिकी आरोग्यताके निमित्त चंडिकाके अर्पण करूं ॥६०॥ विघ्नविदारण श्रीगणेशजीके निमित्त मोदक करूंगी और दस शनिवारपर्यन्त उपवास करूंगी ॥६१॥ मिष्टान्न और घृतका भोजन नहीं करूंगी देहपर तैलमर्दन और उबटन लगाना छोडदूंगी॥६२॥ मेरा भर्ता निरोग

देवाश्च पान्तु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः। कुर्वन्तु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम् ॥ ५९ ॥ चण्डिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम्। सुखान्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे ॥ ६० ॥ मोदकान् कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने। मन्दवारे करिष्यामि चोपवासान् दशैव तु ॥ ६१ ॥ नोपभुञ्जामि मधुरं नोपभुञ्जामि वै घृतम्। तैलाभ्यङ्गविहीनाहं स्थास्ये नैवात्र संशयः ॥ ६२ ॥ जीवतां रोगहीनोऽयं भर्ता मे शरदां शतम्। एवं सा व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते ॥ ६३ ॥ तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः। वैशाखे मासि घर्मार्तः सायाह्ने तस्य वै गृहम्। ६४ ॥ तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग्वै गृहमागतः। तेन वै रोगहानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् ॥ ६५ ॥

होकर सौ वर्ष तक जीवित रहै ऐसे ही वह देवी प्रतिदिन करती रही॥६३॥ तब एक महात्मा देवल नामक मुनि वैशाखके महीनामें गर्मीके मारे संध्यासमय उसके घर आये ॥६४॥ तब वह स्त्री कहने लगी यह वैद्य मेरे घर आये हैं इन्हींके द्वारा रोगका नाश होजायगा इनका मैं आतिथ्य करूंगी ॥६५॥

तुझे धर्मसे विमुख जान वैद्यने छलसे ठग लिया उसके चरण धोय उस जलको शिरपर छिडकती हुई ॥६६॥ और गर्मीसे व्याकुल उस महात्माको सर्बव पिवाती हुई जिससे उसकी शान्ति हुई ॥६७॥ दिन निकलनेपर वह मुनि जैसे आये वैसेही चलेगये थोडे दिन पीछे तुझे सन्निपाव होगया॥६८॥ जब तेरी स्त्री तोहि त्रिकुटा प्यायवेकूं लाई सोई स्त्रीकी उंगली तैने काटलीनी तभी तेरी दोनों दांती भिचगई ॥६९॥ वह कोमल उंगलीका एक टूक

ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वञ्चितः । पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि साक्षिपत् ॥ ६६ ॥ पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने । त्वयानुमोदिता सायं घर्मतापनिवारकम् ॥६७॥ स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथागतः । अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥६८॥ त्रिकटुं नीयमानायां भर्ताङ्गुलिमखण्डयत । उभयोर्दन्तयोः श्लेषः सहसा समपद्यत ॥ ६९ ॥ तत्खण्डमङ्गुलेर्वक्त्रे स्थितं भर्तुः सुकोमलम् । खण्डयित्वाङ्गुलिं भर्ता पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ७० ॥ शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरँस्तां पुंश्चलीं शुभा । मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कांतिमती तव ॥ ७१ ॥ विक्रीत्वा चापि वलयं गृहीत्वा चेन्धनं बहु । चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥ ७२ ॥

तेरे मुखमें रहगया उसी अवस्थामें तेरी मृत्यु आयगई ॥७०॥ अपनी सुन्दर शय्यामे उसी वेश्याका ध्यान करता हुआ मरगया तेरी रूपवती स्त्री तुझे मरा जान ॥७१॥ आपना कंकण बेच बहुतसा ईधन लाती हुई बडी चिता बनाये बीचमें पतिको रख ॥ ७२ ॥

भुजासे भुंजा मिलाय, पांवसे पांव, मुखसें मुख और हृदयमें हृदय मिलाय ॥ ७३ ॥ जंघामें जंघाकर आत्माको सन्निवेशितकर अपने स्वामीके रोगपीडित देहका अग्निसंस्कार करतीहुई ऐसे वह कल्याणी अपने देहको भी जलाती अग्निमें जलतीहुई ॥७४॥ अपने देहको त्याग पतिका आलिंगनकर विष्णुलोकको तत्काल चलीगई वैशाखमासमें पानीका दान करनेसे और चरण धोयके जलको शिरपर छिडकनेसे योगियोंके भी दुर्लभ गति

अवगुह्य भुजाभ्यां च पादो चाश्लिष्य पादयोः । मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा ॥७३॥ जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च । दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम् । आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि ॥७४॥ विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिंग्य मुरारिलोकम् । पानीपदानेन च माधवेस्मिन्पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥ ७५ ॥ त्वमन्तकाले गणिकाविचिन्तया देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्बिषः । जन्म व्याधं प्राप्तवान् घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी ॥७६॥ दत्तं त्वया पानकस्यापि दानं मासेनुज्ञा माधवे साध्वि जाने । व्याधो जातस्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मान् प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥७७॥

उसे मिलगई ॥ ७५॥ तू समस्त पापोंसे छूटनेपरभी अंतकालमें वेश्याका स्मरण करनेसे देहको त्याग घोर व्याधका जन्म धारण करताहुआ जहां सदैव तुझे हिंसा प्यारी है और चित्तको सदा उद्वेग रहे ॥७६॥ तैंने वैशाखमें सर्वत पान करानेकी आज्ञा दीनी इसीसे व्याधयोनी पायकरभी तेरी ऐसी सुबुद्धि हुई है जिससे तैंने संपूर्ण सुखोंके हेतु धर्म पूछे ॥ ७७ ॥

और तैंने उस मुनिके चरण धोनेका पापनाशक जल अपने मस्तकके ऊपर छिडका इसीसे तुझे सत्संगति प्राप्त हुई है जिससे धन संतानकी वृद्धि होयहै ॥७८॥ ऐसे जो जो कर्म तैंने पूर्व जन्ममें किये सो सब कहे ये तेरे पाप और पुण्यके कर्म मैंने दिव्य दृष्टिसे देखे हैं ॥७९॥ अब जो कोई और गुप्त वार्ता पूछनेकी तेरी इच्छा होय सो तू पूछ तेरा चित्त शुद्ध होय गयाहै हे महामते ! तेरा कल्याण होय ॥८०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदां

धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि । तेनेयं ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन्यया भूयात्सम्पदा सन्ततिश्च ॥ ७८ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । कर्म पुण्यं पापकं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥ ७९ ॥ गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्वा-ञ्छ्रोतुमिच्छति । जाता ते चित्तशुद्धिर्वै स्वस्ति भूयान्महामते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-संवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्याध उवाच ॥ विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्मा भागवताः शुभाः । तत्रापि माधवीयाश्च इत्युक्तं तु त्वया पुरा ॥ १ ॥ स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन् किं वा तस्य हि लक्षणम् । किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान्विभुः ॥ २ ॥

बरीषसंवादे व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्याध बोला—हे ब्राह्मन् ! आपने संपूर्ण शुभ फलके दाता भागवत धर्म विष्णुके निमित्त बताये इनमेंभी जो वैशाखमासके धर्म हैं वे सबसे उत्तम हैं ॥१॥ सो हे प्रभो ! वह विष्णु कैसाहै और उसके लक्षण क्या है उनका परिमाण

क्या है और कौन लोक अपने सद्भावोंसे उसे जान सकेहैं॥२॥वैष्णवधर्म कौनसे हैं जिनसे विष्णु भगवान् प्रसन्न होय हैं महामते ! यह सब मेरे सामने कहिये मैं आपका किंकर हूं ॥३॥ जब व्याधने ऐसे पूछा तब वह मुनि जगत्के ईश अनामय नारायणको नमस्कार करके फिर कहने लगे ॥ ४ ॥ शंख बोले—हे व्याध ! सुन, मैं विष्णुके कल्मषरहित रूपका वर्णन करूं हूं यह रूप ब्रह्मासे आदि लेकर किसी मुनिपर्य्यन्तके ध्यानमें नहीं आवै

कीदृशा वैष्णवा धर्माः केनासौ प्रीयते हरिः ॥ एतदाचक्ष्य मे ब्रह्मन् किंकराय महामते ॥३॥ इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः । प्रणम्य जगतामीशं नारायणमनामयम् ॥४॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम् । यदचिन्त्यं विरिञ्चाद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥ ५ ॥ पूर्णशक्तिः पूर्णगुणो निर्दिष्टः सकलेश्वरः । निर्गुणो निष्कलोऽनन्तः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ६ ॥ यदेतदखिलं विश्वं सचराचरमीदृशम् । साधीशं साश्रयं यच्च यद्वशे नियतं स्थितम् ॥७॥ अथ ते लक्षणं वच्मि ब्रह्मणः परमात्मनः । उत्पत्तिस्थितिसंहारा ह्यावृत्तिर्नियमस्तथा ॥ ८ ॥ प्रकाशो बन्धमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवन्त्यमी । स विष्णुर्ब्रह्मसंज्ञोऽसौ कवीनां संमतो विभुः ॥ ९ ॥

है ॥५॥ विष्णु भगवान् पूर्णशक्तियुक्त, पूर्णगुणविशिष्ट,सकलेश्वर, निर्गुण, निश्चेष्ट, अनंत, सच्चिदानंदरूप है ॥७॥ इस सम्पूर्ण चराचर विश्वका वही अधीश है यह इसीके आश्रयहै और उसीके वशमें स्थित है ॥७॥ अब मैं तेरेप्रति उसी परमात्मा ब्रह्मके लक्षण कहता हूं जिससे उत्पत्ति, स्थिति, संहार आवृत्ति, नियम ॥ ८ ॥ प्रकाश, बंध, मोक्ष और वृत्ति होय हैं पण्डित लोग उसी विष्णुको ब्रह्म कहें हैं ॥ ९ ॥

इसीको साक्षात् ब्रह्म कहें हैं पीछे ब्रह्मादिकाकोभी सोपपद ब्रह्मशब्दकी व्युत्पत्ति करें हैं ॥१०॥ और जो उसके एक एक अंश करके युक्त हैं उनमें ब्रह्मत्व कहां, इस परमात्माके जन्मादि तौ केवल शास्त्रमें जाननेयोग्य हैं ॥ ११ ॥ वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, पंचरात्र और महाभारत ये विष्णुभगवान्‌के आत्मरूप हैं ॥ १२ ॥ इन्हींके द्वारा विष्णुभगवान् जाने जांय हैं और किसी प्रकारसे नहीं जानेजांयहैं ये विष्णुभगवान् केवल वेदसेही

साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि । ब्रह्मशब्दं सोपपदं ब्रह्मादिषु विदो विदुः॥१०॥ नान्येषां ब्रह्मता क्वापि तच्छक्तथैकांशभागिनाम् । तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः ॥ ११ ॥ शास्त्रं च वेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् । इतिहासः पञ्चरात्रं भारतं च महामते ॥ १२ ॥ एतैरेव महाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथंचन । नावेदविद्भ्रु विष्णुं मनुते च नरः क्वचित् ॥१३॥ नैन्द्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् । ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥ १४ ॥ अस्यैव जन्मकर्माणि गुणाञ्ज्ञात्वा यथामति । मुच्यन्ते जीवसङ्घाश्च तदा तद्वशवर्तिनः ॥ १५ ॥ क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् । एकैकस्मिन् स्थिता शक्तिर्देवर्षिपितृमातृके॥१६॥ प्रत्यक्षेणागमेनापि च तथैवानुमयापि च । आदौ नरोत्तमं विद्याद्बले ज्ञाने सुखं तथा॥१७

जाने जांय हैं ॥१३॥ वेदवेद्य सनातन नारायणभगवान् इन्द्रिय अनुमान और तर्कद्वारा जाननेमें नहीं आवे हैं ॥१४॥ इसीके जन्म कर्म और गुणोंको जानकर प्राणी मोक्ष पावे हैं और उसके आधीन रहें हैं ॥ १५ ॥ क्रमसे विष्णुका माहात्म्य सातिशय होयहै ऐसेही देव ऋषि पिता और माता एक एकमें शक्ति स्थित रहेहै ॥ १६ ॥ प्रत्यक्ष आगम वा अनुमानसे बल ज्ञान और सुखमें प्रथम मनुष्यको उत्तम जाने ॥ १७ ॥

फिर ज्ञानादिकरके आवृत राजाको शतगुण जाने भूपसे मनुष्यगंधर्वोंकी शतगुणाधिक जाने ॥१८॥ इनसे तत्त्वाभिमानी देवताओंको शतगुणाधिक जाने, तत्त्वाभिमानी देवताओंसे सप्तऋषि बडे हैं। सप्तऋषिसे अग्नि, अग्निसे सूर्यादिक, सूर्यसे बृहस्पति, बृहस्पतिसे वायु, वायुसे इन्द्र, इन्द्रसे पार्वती पार्वतीसे जगद्‌गुरु महादेव, शंभुसे बुद्धिदेवी और बुद्धिसे प्राण बलिष्ठ है ॥ १९-२१॥ प्राणसे अधिक कुछ नहींहै प्राण हीमें सबहैं प्राणही से यह

तस्माद्भूपं शतगुणं विद्याज्ज्ञानादिभिर्वृतम् । भूपान्मनुष्यगन्धर्वान् विद्याच्छतगुणाधिकान् ॥ १८ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् । तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः ॥ १९ ॥ सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेः सूर्यादयस्तथा । सूर्याद्गुरुर्गुरोः प्राणः प्राणादिन्द्रो महाबलः ॥२०॥ इन्द्राच्च गिरिजा देवी देव्याः शम्भुर्जगद्गुरुः । शम्भोर्बुद्धिर्महादेवी बुद्धेः प्राणो बलात्मकः ॥ २१ ॥ न प्राणात्परमं किंचित् प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । प्राणाज्जातमिदं विश्वं प्राणात्मकमिदं जगत् ॥२२॥ प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते । सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रं नीलाम्बुदप्रभम् ॥२३ ॥ लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्यास्य स्थितिर्भवेत् ॥ व्याध उवाच ॥ सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपालेशैकभागिनी ॥ २४ ॥

संसार स्थित है और यह सब जगत् प्राणात्मक है ॥२२॥ यह सब प्राणसे प्रोतहै और प्राणहीसे सब जगत् चेष्टित है नीलमेघके समान प्रभायुक्त सबका आधारभूत इसे सूत्र कहते हैं ॥ २३ ॥ लक्ष्मीके कटाक्षमात्रसे इसकी स्थिति है। तब तो व्याध बोला—वह लक्ष्मी देवदेव विष्णुभगवान्‌की

एकही कृपापात्र है ॥ २४ ॥ विष्णुभगवान्से अधिक वा समान कोई नहीं है जीवमें इस प्राणका नाम सूत्र कैसे हुआ ? हे ब्रह्मन् ! मेरे सामने इसका निर्णय कहो परमात्मा प्राणसे परे कैसे है ॥ २५॥ २६ ॥ शंख बोले–हे व्याध ! जो निर्णय तू पूछे हैं सो सुन मैं संपूर्ण जीवोंद्वारा प्राणाधिक्यके उद्देशसे कहूं हूं ॥ २७ ॥ प्राचीनकाल सनातन नारायणभगवान्ने कमलयोनिमें ब्रह्मादिक देवता रचकर कही, मैं ब्रह्माके तुम्हारा राजा बनाऊंगा

न विष्णोः परमं किंचिन्न समो वा कथंचन । कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामाधिकोऽभवत् ॥ २५ ॥ निर्णयो वा कथं ह्यस्य प्राणाधिक्यं कथं विभो । एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् कथं प्राणाद्विभुः परः ॥ २६ ॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं निर्णयं त्वया । प्राणाधिक्यं समुद्दिश्य जीवैश्च सकलैरपि ॥ २७ ॥ पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः । सृष्ट्वा ब्रह्मादिकान् देवानिदं प्राह जनार्दनः ॥ २८ ॥ साम्राज्येऽहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम् । यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वरः ॥ २९ ॥ तं स्थापयत शीलाढ्यं शौर्यौदार्यगुणान्वितम् । इत्युक्ता विभुना देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥ एवं विवदिरेऽन्यो न्यमहं भूयामहं त्विति । सर्वे विवदमानाश्च सूर्यं केचित्परं विदुः ॥ ३१ ॥

और जो कोई तुममें अधिक होयगा उसे तुम युवराज बनाओ परन्तु वह शील, शौर्य और औदार्यादिगुण करके युक्त होय जब भगवान्ने ऐसे कही तब देवता इन्द्रके आगे जाय ॥ २८–३० ॥ आपसमें विवाद करने लगे कि हम होंयगे, हम होयगें, सब विवाद करते करते कोई

बोले सूर्य सबमें परे हैं ॥ ३१ ॥ कोई कहने लगा इन्द्र सबमें परेहैं कोई चुपचाप खडे रहे जब वे किसी प्रकारसे निर्णय नहीं करसके तब नारायणके पास गये ॥३२॥तब सब देवता नमस्कार कर हाथ जोड कहते हुए हे महाराज! हमने आपसमें बहुत विचार कियाहै ॥३३॥ परन्तु हममें कोईभी अधिक नहीं दीखैहै हे प्रभो! आपही इस बातका निर्णय करके हमारे संशयको दूर करिये॥ ३४॥जब देवताओंने यह प्रश्न किया तब भगवान् हँसकर

शक्रं केचित्परं कामं केचित्तूष्णीं तु तस्थिरे। ते निर्णयमपश्यन्तः प्रष्टुं नारायणं ययुः ॥ ३२ ॥ नमस्कृत्य पुनः प्राहुः सर्वे प्राञ्जलयोऽमराः। विचारितं महाविष्णो सर्वैरस्माभिरञ्जसा ॥ ३३ ॥ अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथंचन। त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनस्त्विमे ॥ ३४ ॥ इति पृष्टोऽमरैः सर्वैः प्रहसन्निदमब्रवीत्। देहाद्यस्माच्च वैराजाद्यस्मिन्निष्क्रामति ह्ययम् ॥ ३५ ॥ पतिष्यति प्रविष्टे तु यस्मिन्वै ह्युत्थितो भवेत्। स देवो ह्यधिको नूनं नापरस्तु कथंचन ॥ ३६ ॥ इत्युक्तास्ते ततः सर्वे तथास्त्विति वचोऽब्रुवन्। निश्चक्राम जयन्ताह्वः पादात्पूर्वं सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ तदा पङ्गुममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा। शृण्वन्पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ ३८ ॥

कहने लगे कि विराट्रूप इस देहमेंसे जिसके निकलनेसे देह गिर पड और फिर उसके प्रवेश होनेसे देह खडा होजाय वही सब देवताओंमें अधिकहै और कोई भी नहीं है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसे कहनेपर सब देवता बोले–तथास्तु ऐसेही होय, फिर जयंतनाम पावोंसे निकलताहुआ ॥ ३७ ॥ तब इसको पंगु कहनेलगे परन्तु देह नहीं गिरा सुनै है पीवे है बोले है सूंघै है देखे है चल है ॥ ३९ ॥

फिर गुह्येन्द्रियसे दक्षनाम प्रजापति जाता हुआ तब इसे षंढ कहनेलगे परन्तु देह न गिरा ॥३९॥ पहलेकी नाईं सुनता पीता बोलता सूंघता देखता और चलता रहा फिर हाथोंसे सम्पूर्ण देवताओंका ईश्वर इन्द्र निकला ॥४०॥ तब इसे हस्तहीन कहने लगे परन्तु देह नहीं गिरा पहलेहीकी तरह सुनता पीता बोलता सूंघता रहा ॥४१॥ तदनन्तर नेत्रोंसे सब तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्य निकला तब इसे काण कहनेलगे परन्तु देह न गिरा ॥४२॥

पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रान्तो दक्षो नाम प्रजापतिः। तदा षण्ढममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ३९ ॥ शृण्वन्पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि। पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रान्त इन्द्रः सर्वामरेश्वरः॥ ४० ॥ हस्तहीनममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा। शृण्वन्पिबन् वदञ्जि०न्नपि ॥ ४१ ॥ लोचनाभ्यां विनिष्क्रान्तः सूर्यस्तेजस्विनां वरः। तदा काणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४२ ॥ शृण्वन् पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि । घ्राणात्पश्चाद्विनिष्क्रान्तौ नासत्यौ विश्वभेषजौ। अजिघ्राणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४३ ॥ शृण्वन् पिबन् वदञ्जि०न्नपि। श्रोत्राद्दिशो विनिष्क्रान्ता न देहः पतितस्तदा। तदामुं बधिरं प्राहुर्न मृतेति कथंचन ॥ ४४ ॥ शृण्वन् पिब०न्नपि०। वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रान्तस्ततः परम्। तदा रसज्ञमेवाहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४५॥

पूर्ववत् सुनता पीता बोलतारहा पीछे घ्राणेंद्रियसे अश्विनीकुमार निकले इसे नासिकारहित कहनेलगे परन्तु देह न गिरा पूर्ववत् सब कृत्य करतारहा फिर कानोंसे दिशा निकली परन्तु देह न गिरा तब इसे बहरा कहने लगे परन्तु मृत न कहते हुए ॥४३॥४४॥ पीछे जिह्वासे वरुण निकलगया

तब इसे अरसज्ञ कहने लगे परन्तु देह न गिरा ॥४५॥ पूर्ववत् जीता, जलता, खाता, जानता और श्वास लेतारहा फिर वाणीसे वागीश्वर अग्नि निकला ॥ ४६ ॥ तब इसे गुँगा कहनेलगे परन्तु देह न गिरा पूर्ववत् सब कृत्य करता रहा ॥४७॥ फिर मनको चैतन्य करनेवाले रुद्र मनसे निकलगये तब इसे जड कहने लगे परन्तु देह न गिरा ॥४८॥ पूर्ववत् चलता फिरता रहा फिर प्राण निकला प्राणके निकलतेही इसे मृत कहनेलगे

जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि । ततो वाचो विनिष्क्रान्तो वह्निर्वागीश्वरो विभुः ॥ ४६ ॥ तदा मूकममुं प्राहुन देहः पतितस्तदा । जीवंश्चलन्नदन्नास्ते त० ॥ ४७ ॥ पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रान्तो मनसो बोधनात्मकः । तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४८ ॥ जीवंश्चलन्न० । पश्चात्प्राणो विनिष्क्रान्तो मृतमेनं तदा विदुः । पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥ ४९ ॥ देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः । स एव ह्यधिकोऽस्मासु युवराजो भविष्यति ॥ ५० ॥ इत्येवं तु प्रतिश्रुत्य विविशुश्च यथाक्रमम् । जयन्तः प्राविशत्पादौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५१ ॥ गुह्यं च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् । इन्द्रो हस्तौ विवेशाथ नोत्तस्थौ० ॥ ५२ ॥ चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत्क० । दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५३ ॥

तब वो देवता विस्मय होय कहनेलगे ॥ ४९ ॥ जो कोई हममेंसे इस गिरीहुई देहके उठानेमें सामर्थ होगा वही सबसे बडाहै और वही युवराज होयगा ॥५०॥ ऐसे प्रतिज्ञाकर यथाक्रम प्रवेश करतेहुए प्रथमही जयंत चरणोंमें प्रविष्टहुआ परन्तु देह न उठा ॥५१॥ दक्ष गुह्येन्द्रियद्वारा प्रविष्टहुआ परन्तु देह न उठा इन्द्र हाथोंमें प्रवेशहुआ परन्तु देह न उठा ॥५२॥ सूर्यनारायण नेत्रोंमें प्रवेशहुए परन्तु देह ज्योंका त्यो पडारहा इसी तरह दिशा

नेत्रोंमें, वरुण जिह्वामें, अश्विनीकुमार नासिकामें, अग्नि वाणीमें, रुद्र मनमें प्रवेशहुए परन्तु देह न उठा ॥५३–५५॥ सबसे पीछे प्राण घुसे प्राणोंके प्रवेश करतेही देह उठ खडाहुआ तब देवता निश्चय करते हुए कि प्राण ही सम्पूर्ण देवताओंका अधीश और व्यापक है ॥५६॥ तथा बल, ज्ञान, धैर्य, वैराग्य, और जीवनमें भी सबसे अधिक है अतएव प्राणहीको युवराज बनाते हुए ॥५७॥ उत्कृष्ट स्थितिके हेतुसे सामवेदका गान करतेहुए इसी हेतुसे स्थावरऔर

वरुणः प्राविशज्जिह्वां नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् । नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५४॥ वह्निश्च प्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् । मनश्च प्राविशद्रुद्रो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५५ ॥ पश्चात्प्राणो विवेशासीत्तदोत्तस्थौ कलेवरम् । तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥५६॥ बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च । ततोऽभिषेचयांचक्रुर्यौवराज्ये महाप्रभुम् ॥ ५७ ॥ उत्कृष्टस्थितिहेतुत्वादुक्थमेकं तदा जगुः । तस्मात्प्राणात्मकं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥५८॥ अंशैः पूर्णैर्बलाढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगतां पतिः । न प्राणहीनं जगदस्ति किंचित्प्राणेन हीनं न च वै समेधते ॥ ५९ ॥ प्राणेन हीनं स्थितिमन्न किंचि-त्प्राणेन हीनं न च किंचिदस्ति । तस्मात् प्राणः सर्वजीवाधिकोऽभूद्बलाधिकः सर्वजीवान्तरात्मा ॥ ६० ॥

जंगमात्मक यह विश्व प्राणात्मक है ॥५८॥ पूर्ण अंशोंकरके संयुक्त और बलाढ्य यह प्राण सब जगतका पतिहै प्राणहीन जगत कुछ भी नहीं है और विना प्राणोंके वृद्धि भी नहीं है॥५९॥ विना प्राणोंके कुछ स्थिति नहीं है न संसारमें कुछ भी है इसीसे प्राण सम्पूर्ण जीवोंमें अधिक बलवान और

सब जीवोंका अन्तरात्मा है ॥६०॥ प्राणोंसे अधिक वा समान शास्त्रोंमें भी न पहिले कुछ देखाहै न सुना है भिन्नभिन्न कार्योंको सम्पादन करनेके निमित्त एक प्राणही अनेक प्रकार होताहुआ ॥६१॥ अतएव प्राणकी उपासना करनेवाले प्राणोंको सर्वश्रेष्ठ मानें हैं यह लीला करके ही सम्पूर्ण जगत्के रचने संहार करने और पालनेमें समर्थ है ॥६२॥ शेष शिव और इन्द्रादि जड और चैतन्य कोई भी सिवाय वासुदेव भगवान्के इसका पराभव

प्राणात्कोऽपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चास्ते । तत्तत्कार्यानुगः प्राणो ह्येको देवो ह्यनेकधा ॥६१॥ तस्मात् प्राणं वरं प्राहुः प्राणोपासनतत्पराः । लीलयैव जगत्स्रष्टुं हन्तुं पालयितुं प्रभुः ॥ ६२ ॥ शेषा हि शिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जडा अपि । वासुदेवादृते कोऽपि नैनं परिभविष्यति ॥ ६३ ॥ सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयो विभुः । वासुदेवानुगो नित्यं तथा विष्णुवशे स्थितः ॥६४॥ वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न पश्यति । देवाः प्रतीपं कुर्वन्ति रुद्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥ ६५ ॥ प्रतीपं क्वापि कुरुते न प्राणः सर्वगोचरः । तस्मात्प्राणो महाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः ॥ ६६ ॥ एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यं लक्षणं तथा । पूर्वबन्धानुगं लिङ्गं जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ ६७ ॥

नहीं करसके हैं ॥६३॥ यह प्राण सर्वदेवात्मक और सर्वदेवमय व्यापक है तथा वासुदेव भगवान्का अनुवर्ती और विष्णुका वशीभूत है ॥ ६४ ॥ यह वासुदेवकी प्रतिकूलता न कभी सुने है न देखे हैं अन्य इन्द्रादि सब देवता प्रतिकूल करे हैं परन्तु सर्वांतर्यामी प्राण कभीभी प्रतिकूलता नहीं करे है इसीसे पंडितजन प्राणको विष्णुका बडा सहायक कहें हैं ॥६५॥६६॥ ऐसे विष्णु भगवान्के माहात्म्य और लक्षण जानकर जैसे सर्प जीर्ण

काचलीको त्यागे हैं उसी तरह पूर्वजन्मानुबंध देहको त्याग कर नारायणके समीप परमधामको प्राप्त होय है ऐसे शंख मुनिके वाक्य सुन व्याध अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ ६७॥६८ ॥ और विनीतभावसे फिर पूछता हुआ हे ब्रह्मन् ! जगद्गुरु महानुभाव सर्वेश्वर प्राणको महिमा कहींभी लोकमें विदित नहीं है, देवता मुनि राजा और महात्माओंकी महिमा तो पुराण और लोकमें बहुत सुनाई देय है, हे भगवन् ! यह मेरे सामने कहो इस बातके

विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम् । श्रुत्वा शङ्खोदितं वाक्यं पुनर्व्याधः प्रसन्नधीः ॥६८॥ प्रश्रयावनतो भूत्वा पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् । ब्रह्मन् महानुभावस्य प्राणस्यास्य जगद्गुरोः ॥६९॥ न ख्यातो महिमा लोके कथं सर्वेश्वरस्य वै । देवानां च मुनीनां च भूपानां च महात्मनाम् ॥७०॥ महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः । एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ ७१ ॥ शङ्ख उवाच ॥ पुरा प्राणो हरिं देवं नारायणमनामयम् । अश्वमेधैर्यष्टुकामो गङ्गातीरं ययौ मुदा ॥ ७२ ॥ हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः । अन्तर्वल्मीकलीनस्तु कण्वो नाम समाधिगः ॥ ७३ ॥ हलोत्कृष्टो विनिष्क्रान्तः क्रोधादिदमुवाच ह । दृष्ट्वा पुरः स्थितं प्राणं शशाप ह महाविभुम् ॥ ७४ ॥

जाननेकी मेरी बडी इच्छा है ॥ ६९-७१ ॥ शंख बोले-प्राचीनकालमें प्राण, देवदेव अनामय नारायणभगवान्‌का अश्वमेधद्वारा यजन करनेके निमित्त गंगाके किनारेपर गया ॥७२ ॥ और बहुतसे मुनियोंको संग ले हलसे भूमिको शुद्ध करने लगा तहां एक पृथ्वीके नीचे बांबीमें कण्वनाम महात्मा समाधि लगाये बैठे हुए॥७३॥उस हलसे बाहर खिंच आये तब क्रोधसे यह बोले और प्राणको अपने सामने स्थित देख शाप देते हुए ॥७४॥

अबसे तेरी महिमा तीनो भुवनमेंसे जाती रहैगी और विशेष करके भूलोकमें तुझे कोई नहीं मानैगा ॥७५॥ त्रिलोकीमें तेरा अवतार प्रख्यात होगये जब उस मुनिने ऐसे कही तब पवन क्रोधकरके बोला मैं निरपराधी हूं ॥७६॥ और बिना अपराध तैंने शाप दिया है इसलिये हे कण्व ! तू गुरुद्रोही हो॥७७॥और संसारमें तेरी वृत्ति निंदित होय तबहीसे संसारमें इस प्राणकी महिमा और विशेष करके भूलोकमें प्रसिद्ध नहीं है और शापके कारण

अद्यप्रभृति विख्यातिं महिमा भुवनत्रयम् । तव नाप्नोति देवेश भूलोके तु विशेषतः ॥ ७५ ॥ प्रख्यातास्ते भविष्यन्ति ह्यवतारा जगत्रये । इत्युक्तो मुनिना तेन वायुः क्रोधात्तथाब्रवीत् ॥ ७६ ॥ विनापराधं शप्तोऽसि तितिक्षुर्मां निरागसम् । तस्मात्कण्व महाबाहो गुरुद्रोही भवाशु च ॥७७॥ लोके निन्दितवृत्तिश्च भवेत्याह सदागतिः । ततःप्रभृति लोकेऽस्मिन् प्राणस्यास्य महाप्रभोः ॥ ७८ ॥ न ख्यातो महिमा लोके भूलोके तु विशेषतः । शापात्कण्वो गुरुं हत्वा सूर्यशिष्योऽभवत्तदा ॥७९॥ इत्येतत् कथितं सर्वं यत्पृष्टं तु त्वयाधुना । यच्छ्रोतव्यमितो व्याध पृच्छ मां मा विचारय ॥८०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

कण्व गुरुको मारकर सूर्यका शिष्य होता हुआ॥७८॥७९॥ हे व्याध ! जो कुछ तैंने पूछा सो सब तेरे सामने कहा अब जो कुछ तुझे पूछताहै सो पूछ कुछ विचार मत करै ॥८०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

व्याध कहने लगा कि हे ब्रह्मन् ! कहां परमेश्वरने करोडों हजारों जीव रचे हैं इनके भिन्न भिन्न कर्म देखनेमें आवे हैं और अनेक सनातन मार्ग हैं॥ १॥ हे महामते ! इन सबके स्वभाव एकसे क्यों नहीं है यह जाननेकी मेरी इच्छा है आप विस्तारपूर्वक कहिये ॥२॥ यह सुन शंखमुनि कहनेलगे—रजोगुणी सतोगुणी और तमोगुणी इन तीन प्रकारके जीव होय हैं इनमेंसे रजोगुणी रजोगुणके कर्म करें हैं और तमोगुणी तमोगुणके कर्म करें हैं ॥ ३ ॥

व्याध उवाच ॥ किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्रशः । दृश्यन्ते भिन्नकर्माणो नानामार्गाः सनातनाः ॥ १ ॥ नैकस्वभावा एते हि कुत एव महामते । सर्वं तत्पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद ॥ २ ॥ शङ्ख उवाच ॥ त्रिविधा जीवसङ्घा हि रजःसत्त्वतमोगुणाः । राजसा राजसं कर्म तामसास्तामसं तथा ॥ ३ ॥ सात्त्विकाः सात्त्विकं कर्म कुर्वन्त्येते यथाक्रमम् । क्वचिच्च गुणवैषम्यमेतेषां संसृतौ भवेत् ॥ ४ ॥ तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वतः फलभागिनः । क्वचित्सुखं क्वचिद्दुःखं क्वचिच्चाभयमेव च ॥ ५ ॥ गुणानामेव वैषम्यात् प्रप्नुवन्ति नरा इमे । प्रकृतिस्था इमे जीवा बद्धा एतैर्गुणैस्त्रिभिः ॥६॥ गुणकर्मानुरूपेण कर्मणां व्यत्ययः फलम् । गुणानुगुण्यं भूयस्ते प्रकृतिं यान्त्यमी जनाः ॥ ७ ॥

तथा सतोगुणी सतोगुणके कर्म करें हैं कभी २ संसारमें इन गुणोंमें विषमताभी होय जाय है ॥४॥ उसीसे ऊंचे नीचे कर्मोंको करके फलके भोगनेवाले ये जीव गुणोंकी विषमतासे कभी सुख कभी दुःख कभी अभाव पावें हैं और॰ प्रकृतिस्थ जीव इन्हीं तीनों गुणोंसे बद्ध हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ गुण और कर्मके अनुकूलही कर्मोंका नाश और फलहै इन्ही गुणोंके अनुगूणी होयकर ये मनुष्य प्रकृतिको प्राप्त होय हैं ॥ ७ ॥

प्रकृतिस्थ मनुष्य प्राकृतिक गुणकर्मोंसे अभिमूर्तित हैं और वे प्राकृतिक गतिको प्राप्त होय हैं तथा प्रकृतिका कभी नाश नहीं है ॥८॥ तमोगुणी बहुत दुःखी रहे हैं इनकी वृत्ति सदा तमोगुणी रहे है वे निष्ठुर निर्दयी और सब प्राणियोंसे द्वेष रखते हैं ॥ ९ ॥ राक्षसोंसे लेकर पिशाचपर्य्यन्त सब तामसी गतिको प्राप्त होय हैं । रजोगुणियोंकी बुद्धि मिश्रित होयहै ये पुण्य और पाप दोनों करें हैं ॥ १० ॥ पुण्यसे इन्हें स्वर्ग और पापसे नरककी

प्रकृतिस्थाः प्राकृतिका गुणकर्माभिमूर्तिताः । गतिं प्राकृतिकीं यान्ति व्यत्ययः प्रकृतेर्न हि ॥ ८ ॥ तामसा दुःखबहुलाः सदा तामसवृत्तयः । निर्दया निष्ठुरा लोके सदा द्वेषैकजीविनः ॥ ९ ॥ राक्षसाद्याः पिशाचान्तास्तामसीं यान्ति वै गतिम् । राजसा मिश्रमतयः कर्तारः पुण्यपापयोः ॥१०॥ पुण्यात्स्वर्गं प्राप्नुवन्ति क्वचित्पापाच्च यातनाम् । अत एते मन्दभाग्या आवर्तन्ते पुनः पुनः ॥११॥ धर्मशीला दयावन्तः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः । सात्त्विकाः सात्त्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठन्त आसते ॥१२॥ ते चोर्ध्वं यान्ति विमला गुणापाये महौजसः । अतो विभिन्नकर्माणः पृथग्भावाः पृथग्धियः ॥ १३ ॥ गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः । कर्माणि कारयत्यद्धा स्वस्वरूपाप्तये विभुः ॥ १४ ॥

प्राप्ति होय है इससे ये मदभागी संसारमें वारम्वार जन्म लेहैं ॥ ११ ॥ धर्मशील, दयावान्, श्रद्धावान्, पराई निन्दा न करनेवाले सतोगुणी हैं इनकी वृत्ति सतोगुणी है ॥ १२ ॥ ऐसे महा ओजस्वी पापोंसे रहित ऊर्ध्वलोकको जाते हैं अतएव भिन्नभाव और पृथक् बुद्धिवाले हैं ॥ १३ ॥ इन्हींके गुण और कर्मके अनुसार विष्णुभगवान् इनसे कर्म करावें हैं अपने स्वरूपकी प्राप्तिके निमित्त ॥ १४ ॥

पूर्ण हैं कामना जिनकी विष्णुभगवान्‌के विषमता नहीं है विष्णुभगवान् उत्पत्ति पालन और संहार समानभावसे करे हैं ॥१५॥ वे सब अपने अपने गुणोंसे कर्मोंके फल भोगे हैं जैसे बगीचामें उत्पन्न भये सब वृक्षोंके ऊपर मेघ समानभावसे वरसै है और संपूर्ण वृक्ष एकही नालीसे सींचे जाय है परन्तु सब वृक्षनकी प्रकृति जुदी २ होयहै बागके लगावनहारेको कुछ विषमता वा निर्घृणता नहीं है ॥१६॥१७॥ व्याध कहने लगा—हे मुने !

विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै न हि । सृष्टिं स्थितिं हृतिं चैव सममेव करोत्ययम् ॥ १५ ॥ स्वगुणादेव ते सर्वे कर्मणः फलभागिनः । आरामोप्तान्यथा सर्वान् समं वर्षयति द्रुमान् ॥ १६ ॥ एककुल्या जला ह्यङ्ग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः । नाराmोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथंचन ॥ १७ ॥ व्याध उवाच ॥ जनानां पूर्णभोगानां कदा मुक्तिर्भवेन्मुने । सृष्टिकालेऽथवा ह्यन्तकाले वा स्थापनस्य च ॥ १८ ॥ कच्चिन्न सृष्टिकालस्य संहारस्यापि वै स्थितेः। एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन् भगवच्चेष्टितं वद ॥ १९ ॥ शङ्ख उवाच ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते । रात्रिश्चैतावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत् ॥२०॥ दशपञ्च दिनान्याहुः पक्षं मासो द्वयात्मकः । मासद्वयं ऋतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम् ॥ २१ ॥

पूर्ण भोगवाले मनुष्योंकी मुक्ति कब होय है, सृष्टिकालमें अथवा अन्तकालमें अथवा स्थितिकालमें ॥ १८॥ और सृष्टि, स्थिति तथा संहारके कालकी मर्यादा कितनी हैं सो हे ब्रह्मन् ! मेरे सामने आप विस्तारपूर्वक कहिये ॥१९॥ शंख बोले—चार सहस्र युग ब्रह्माका एक दिन होय है और इतनी ही एक रात्रि है ऐसे दिनरात मिलकर ब्रह्माका एक दिन होता है ॥२०॥ पन्द्रह दिनका एक पक्ष और दो पक्षका एक महीना होता है दो

मासका एक ऋतु और तीन ऋतुका एक अयन होता है ॥२१॥ दो अयनका एक वर्ष और ऐसे सौ वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्मकल्प होताहै ॥२२॥ वही प्रलयकाल है यह वेदवेत्ताओंका मत है, प्रलय तीन प्रकारकी होय है, एक मानव प्रलय, वह तब होय है जब मनुष्योंका अन्त होय है॥२३॥ दूसरी ब्रह्माजीके दिनकी समाप्तिके समयमें होय है वह दैनन्दिनप्रलय कहावे है उसके पीछे ब्रह्माजीके लयसमयमें जो प्रलय होय है उसे ब्राह्मप्रलय

अयने द्वे वत्सरः स्यात्ताट्टक्शतसमा यदि। गच्छन्ति ब्रह्मणो ह्यस्य ब्रह्मकल्पं तदा विदुः ॥ २२ ॥ तावान् हि प्रलयः काल इति वेदविदां मतम्। प्रलयस्त्रिविधः प्रोक्तो मानवो मानवात्यये ॥ २३ ॥ दैनन्दिनो द्वितीयो हि ब्रह्मणो दिवसात्यये। ब्रह्मणोऽथ लये पश्चाद्ब्राह्मं च प्रलयं विदुः ॥ २४ ॥ ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु मनोस्तु प्रलयं विदुः। प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात् ॥ २५ ॥ दैनन्दिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिं पुनः। त्रयाणामेव लोकानां लयो मन्वन्तरे भवेत् ॥ २६ ॥ चेतनानां तदा नाशो न लोकानां क्षयो भवेत्। उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ २६ ॥

कहे हैं ॥२४॥ ब्रह्माजीके एक मुहूर्तमें एक मनुका प्रलय होय है इसी तरह जब चौदह मनु प्रलय होयजाय हैं ॥२५॥ तब एक दैनंदिन प्रलय होय है उन प्रलयोंकी उतनीही अवधिपर्यंत स्थिति रहती है मन्वन्तर प्रलयमें भूर्भुवः स्वः तीनों लोकका लय होय है ॥२६॥ उस मन्वन्तर प्रलयमेंचेतन जीवोंकाही नाश होय है परन्तु लोकोंके स्वरूपका नाश नहीं होय है केवल उन लोकोंकी पूर्वकी तरह जलसे पूर्ति होय जाय है ॥२७॥

फिर मन्वन्तरके अन्तमें चेतनजीवोंकी उत्पत्ति फिर होय है और हे व्याध। दैनदिनप्रलयमें लोक और लोकस्थ सबका क्षय होय है ॥२८॥ केवल सत्यलोकके सिवाय और कोई लोक नहीं रहे है सब नष्ट होय जाय है और चेतन अधिभूत जीवोंसहित सब लोकोंका ब्रह्माजीके शयन करनेपर नाश होय जाय है ॥२९॥ कोई कोई तत्त्वाभिमानी देवता और मुनि बाकी रहें हैं और सत्यलोकके शयन करनेहारेभी शेष रहें हैं।.३०॥वे सब कल्पपर्यन्त

मन्वन्तरान्ते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः। दैनन्दिनलये व्याध सर्वस्यापि क्षयो भवेत् ॥२८॥ सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यन्ति साधिपाः। सचेतनाः साधिभूताः प्रसुप्ते चतुरानने ॥ २९ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा। शिष्यन्ति सुप्ताः सर्वेऽपि सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ ३० ॥ तिष्ठन्ति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतीन्द्रियाः। पुनर्निशात्यये ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥ ३१ ॥ ऋषीन् देवान् पितॄँल्लोकान् धर्मान् वर्णान् पृथक् पृथक्। पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ३२ ॥ नियमेन भवन्त्येते तथान्येऽपि च भूरिशः। देवता ऋषयश्चैव आकल्पं च गिरां पतेः ॥ ३३ ॥ पुनरेवाभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः। भूपाश्च साधवो ये च सिद्धिं प्राप्ताः परं गताः ॥ ३४ ॥

नींदमें पडे रहे हैं फिर रात्रिके समाप्त होनेपर पूर्वसृष्टिके अनुसार ब्रह्माजी सृष्टिकी रचना करे हैं ॥३१॥ ऋषि देव पितृलोक और वर्णधर्मोंसहित चारों वर्णको अलग अलग रचें हैं तब चक्रधारी विष्णुके फिर दशावतार नियम करके होय हैं ॥ ३२ ॥ इसीतरह औरभी बहुतसे देवता ऋषि कल्प पर्यन्त ब्रह्माजीके द्वारा फिर होय हैं ॥ ३३ ॥ और जो सर्व ब्रह्माजीके संग मुक्तिमें जानहारे हैं वे ब्रह्मलोकहीमें रहें हैं और जो राजा साधु और

सिद्धिको प्राप्त भये ब्रह्मलोकवासी हैं ॥ ३४ ॥ वे सब सत्यलोकहीमें स्थित रहें हैं यहां नहीं आवे हैं और जो उस राशिपर जानेवाले उसी नामकरके श्रुतिमें सम्यक् स्थित हैं वे फिर जांय हैं ॥३५॥ उन्ही उन्ही गोत्रोंमें उन्ही उन्ही कर्म करनेवाले जन्म लेते हैं और जब कलियुगकी समाप्ति होय है तब सब दैत्योंका नाश होयहैं तब वेभी सब कलियुगसहित अपनी गतिको जाय हैं उनका निरय स्थान होय हैं और उनके नामके उन राशिस्थ

तेनैव चाभिवर्त्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः। तद्राशिगाः पुनर्यान्ति तन्नाम्ना श्रुतिसंस्थिताः ॥ ३५ ॥ तत्तद्गोत्रेषु जायन्ते तत्तत्कर्म रताःसदा। दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलियुगात्ययः ॥३६॥ कलिना सह गच्छन्ति स्वां गतिं निरयालयाः। तेषां च राशिसंस्था ये तन्नामानोऽपरेऽपि च ॥३७॥ जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः। सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामि मुक्तिकालं तथैव च ॥३८॥ ब्रह्मादीनां च देवानां समाहितमना भव। निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः ॥३९॥ तस्यावसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः। निमेषान्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान् ॥ ४० ॥ सोऽपश्यत्स्वोदरे सर्वान् जीवसङ्घाननेकशः सृज्यान्मुक्तानमुक्तान् सर्वांल्लिङ्गभङ्गमुपागतान् ॥ ४१ ॥

औरभी हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वे अपने कर्मके अनुसार उन्ही उन्ही कर्मोंके करनेवाले होय हैं अब मैं तेरे सामने सृष्टिकाल और मुक्तिकालका वर्णन करूंगा॥३८॥सो सावधान होयकर सुनो देवदेव भगवान् एक निमेष ब्रह्माजीके कल्पके समान होय है तदनन्तर देवोंके मुकुटमणि भगवान्का उतनाही उन्मेष अर्थात् पलकका खुलना होय है ॥३९॥ निमेषके अंतमें अपने कुक्षिस्थ लोकोंके सृजनेको इच्छा होयहै ॥ ४० ॥ तब सब लोकोंको और

अनेक जीवसमुदायोंको अपने उदरमें रखता हुआ उनमें कितनेही तो सृजने योग्य हैं कितनेही मुक्त हैं और कितनेही ऐसे हैं जिनका लिंगदेह छूट-गया है ॥४१॥ वे सुप्त हैं संसारमें स्थित हैं और वे सब तमोगुण संबंध युक्त हैं और ऐसेभी हैं जो पूर्वकल्पमें विधिपूर्वक जे लिंगभंगको प्राप्तभये हैं ॥४२॥ मानवपर्य्यन्त जीवकोश जीवन्मुक्त और मुक्तिगामी जो पूर्वकल्पमें विमुक्तही ब्रह्मासे लेकर मनुष्यपर्यन्त ॥४३॥ विष्णुकी कुक्षिमें गत

सुप्ताः सृतिस्थाः सर्वेऽपि तमोगा अपि सर्वशः । पूर्वकल्पे लिङ्गभङ्गमापन्ना विधिपूर्वकम् ॥ ४२ ॥ मानवान्ता जीवकोशा जीव-न्मुक्ताश्च मुक्तिगाः । पूर्वकल्पे विमुक्ताश्च ब्रह्माद्या मानवान्तकाः ॥४३॥ ध्यानसंस्था हि तिष्ठन्ति विष्णुकुक्षिगता अपि । उन्मेष-प्रथमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४४ ॥ भूत्वा तु पूर्णषाड्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात् । दत्त्वा तु ब्रह्मणे मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः ॥ ४५ ॥ दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम् । सारूप्यं चैव केषांचित्सामीप्यं च तथा विभुः ॥४६॥ सालोक्यं च तथान्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः । अनिरुद्धवशे सर्वान् स्थितांल्लोकानलोकयत् ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नस्य वशे दत्त्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे । मायां जयां कृतिं शान्तिमुपयेमे स्वयं हरिः ॥ ४८ ॥

होनेपरभी ध्यानावस्थित रहे हैं उन्मेषके प्रथमभागमें चतुर्व्यूहात्मक विभु षाड्गुण्य होयकर व्यूहमें स्थित वासुदेवसे ब्रह्माको सायुज्यमुक्ति देयकर महाविभु ॥४४॥४५॥ तत्पश्चात् महात्माओंको तत्त्वज्ञानरूप सारूप्य मुक्ति देय है और किसी किसीको सामीप्य मुक्ति देय हैं ॥ ४६ ॥ तथा अन्य मनुष्योंको देवदेव जनार्दन सालोक्य मुक्ति देयकर अनिरुद्धरूपसे संपूर्ण स्थित लोकाको देखे हैं ॥४७॥ प्रद्युम्नसे सृष्टिके रचनेका विचार

करतेहुए और स्वयं हरिभगवान् माया जयाकांति और शांतिसे विवाह करते हुए ॥४८॥ वासुदेवसे आदि लेकर पूर्णगुणसे युक्त चतुर्व्यूह उन माया जया आदि शक्तिसे युक्त चतुर्व्यूहात्मक महाविष्णुभगवान् ॥४९॥ भिन्न है कर्म और आशय जिसका ऐसा लोकको करते हुए स्वयं पूर्णकाम हैं नेत्र खोलनेके अंतमें फिर विष्णुभगवान् योगमायाका आश्रय लेय॥५०॥ व्यूहस्थ संकर्षणद्वारा चराचरका नाश करतेहुए ये सब उस महात्माका अकथनीय

चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात् । ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४९ ॥ भिन्नकर्माश्रयं लोकं पूर्णकामो व्यजीजनत् । उन्मेषान्ते पुनर्विष्णुर्योगमायां समाश्रितः ॥ ५० ॥ संकर्षणाद्व्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम् । तदेतत्सर्वमाख्यातं कार्यं चिन्त्यं महात्मनः ॥५१॥ यदचिन्त्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः ॥ व्याध उवाच ॥ के वा भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसीदति । तानहं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं वद नो मुने ॥५२॥ शङ्ख उवाच ॥ येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥५३॥ तं विद्धि सात्त्विकं धर्मं यश्च केनाप्यनिन्दितः । श्रुतिस्मृत्युदितो यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥ ५४ ॥

काम हैं॥५१॥यह कार्य ब्रह्मादिक और योगियोंद्वाराभी अकथनीयहै यह सुन व्याध पूछता हुआ हे महाराज! भागवत धर्म कौनसे हैं और कौनसे धर्मोंसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होय हैं ॥५२॥ उनके मेरे सुननेकी इच्छा है सो मेरे सामने कहिये शंख बोले–जिस धर्मसे चित्त शुद्ध होय और सज्जनोंका उपकार होय वहीकूं सतोधर्म जान तथा जिसकी कोई निन्दा न करै जो धर्म श्रुति और स्मृतिके अनुकूल होय और कामनारहित होय ॥५३॥५४॥

जो लोकसे विपरीत न होय उसे सात्त्विक धर्म समझना चाहिये वर्णाश्रमके विभागसे सो धर्म चार प्रकारका है॥ ५५ ॥ और प्रत्येक धर्म नित्य नैमित्तिक और काम्य इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जब वे सब धर्म विष्णुभगवान्‌के समर्पण करे जांय हैं ॥५६॥ तब वे सतोगुणयुक्त भागवत धर्म कहावैं हैं जब किसी कामनाके निमित्त अन्यदेवताके समर्पण होय है तब रजोगुणी होय हैं ॥५७॥ यह राक्षस पिशाचादि लोकमें निष्ठुर देवता-

यस्तु लोकाविरुद्धोऽपि तं धर्मं सात्त्विकं विदुः । चतुर्विधा हि ते धर्मा वर्णाश्रमविभागतः ॥ ५५ ॥ नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधा मताः । ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥५६॥ तदा वै सात्त्विका ज्ञेया धर्मा भागवताः शुभाः । देवतान्तरदैवत्याः सकामा राजसा मताः ॥ ५७ ॥ यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः । हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः॥५८॥ सत्त्वस्थाः सात्त्विकान् धर्मान् विष्णुप्रीतिकराञ्छुभान् । कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥५९॥ येषां चित्तं सदा विष्णौ जिह्वायां नाम वै विभोः । पादौ च हृदये येषां ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६० ॥ सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः । सदैव ममताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६१ ॥

ओंका पूजन करना, हिंसा करना ये सब निन्दित तमोगुणी कर्म हैं ॥ ५८ ॥ सतोगुणी मनुष्य जो विष्णुभगवान्‌के प्यारे सात्त्विक धर्मोंको करें हैं वे धर्म भागवत धर्म कहावें हैं ॥५९॥ जिनका चित्त सदा विष्णुभगवान्‌में रहै और जिह्वासे भगवान्‌के नाम रहें और भगवान्‌के चरण हृदयमें रहैं सोई भागवतधर्म है ॥ ६० ॥ जो सदाचाररत हैं सबके संग उपकार करें हैं और सदा ममता हीन रहें सोई भागवत धर्म हैं ॥ ६१ ॥

जिनको शास्त्र, गुरु, साधु और कर्ममें विश्वास है और जो सदा विष्णुके भक्त हैं वेही भागवतधर्मवाले हैं ॥ ६२ ॥ जिन्हें विष्णुभगवान्‌के प्रिय करनेहारे धर्म सदा मन्तव्य हैं और श्रुति तथा स्मृतिमें कथित धर्म हैं सोई धर्म उत्तम हैं॥६३॥ सब देशोंमें भ्रमण करना सब कर्मोंको देखना सब धर्मोंका श्रवण करना परंतु जिसको विषयमें चित्त है उनको कुछ भी नहीं करसके हैं जैसेउत्तम स्त्री नपुंसकको कुछ भी नहीं करसकें हैं साधुओंके

येषां च शास्त्रे विश्वासो गुरौ साधुषु कर्मसु । ये विष्णुभक्ताः सततं ते वै भागवताः स्मृताः ॥६२॥ येषां हि संमता धर्माःशाश्वता विष्णुवल्लभाः । श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥ ६३ ॥ अटनं सर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम् । श्रवणं सर्वधर्माणां विषयासक्तचेतसाम् ॥ ६४ ॥ अकिञ्चित्करमेतेषां षण्ढस्येव वरस्त्रियः । साधूनां दर्शनेनैव मनो द्रवति वै सताम् ॥६५॥ चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गाच्चन्द्रकान्तशिला यथा । क्वचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयेभ्यश्चलं मनः ॥६६॥ तिष्ठत्येव सतां पुंसां तेजोरूपं ह्यकल्मषम् । पद्मबन्धोः प्रभासङ्गात्सूर्यकान्तशिला यथा ॥ ६७॥ निष्कामैर्हि जनैर्यस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः । यो विष्णुवल्लभो नित्यं धर्मो भागवतो मतः ॥ ६८ ॥ तैर्दृष्टा बहवो धर्मा इहामुत्र फलप्रदाः । विष्णुप्रीतिकराः सूक्ष्माः सर्वदुःखविमोचकाः ॥ ६९ ॥

दर्शनहीसे सत्पुरुषोंका मन द्रवीभूत होयजाय है जैसे चांदनीके संग चन्द्रकांतमणि द्रवीभूत होय है यह चंचल मन सच्छास्त्रोंके श्रवणमात्रसे विषयोंसे अलग होयकर कल्मषरहित तेजोमय रहै है जैसे सूर्यकी किरणके संग सूर्यकांतमणि रहै है ॥ ६४–६७ ॥ कामनारहित श्रद्धापूर्वक जो विष्णुसंबंधी धर्म किये जाय हैं सोई भागवतधर्म है ॥ ६८ ॥ इस लोक और परलोकमें सुख देनेहारे बहुतसे धर्म देखे हैं परन्तु विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न

कर्त्ता धर्म सक्ष्म और संपूर्ण पापोंके नाश करनहारे हैं॥६९॥ क्षीरसागरमें सबकी हितकी कामनासे जैसे दहीमेंसे मक्खन निकाललें हैं ऐसे वैशाखके धर्म भगवान्‌ने लक्ष्मीके प्रति कहे ॥७०॥ मार्गमें छाया लगावना, प्याऊ बनवाना, पंखासे हवा करना वा योग्योंको दान करना ॥ ७१ ॥ छत्री, जूता, कपूर और सुगंधित द्रव्योंका दान करना और धन पायकर बावडी कूवा तलाव बनवाना ॥ ७२ ॥ सायंकालके समय शर्बत और फूलका

दध्नः सारमिवोद्धृत्य धर्मं वैशाखसंभवम् । रमायै भगवानाह क्षीराब्धौ हितकाम्यया ॥ ७० ॥ मार्गच्छायाविनिर्माणं प्रपादानं च वै तथा । व्यजनैर्वीजनं चैव प्रश्रयाणां समर्पणम् ।७१॥ छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगन्धयोः । वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति ॥ ७२ ॥ सायाह्ने पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च । ताम्बूलदानं पापघ्नं गोरसानां विशेषतः ॥ ७३ ॥ लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि । अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम् ॥७४॥ कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च। मधुयुक्तं तिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥७५॥ सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च। रसायनप्रदानं च पितृनिर्वापणं तथा ॥ ७६ ॥ एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन् माधवप्रिये । प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन् द्विजकुलेरितम् ॥ ७७ ॥

दान करना; तांबूल दान करना और गोरसका दान तौ सब दानोंसे उत्तम है ॥ ७३ ॥ रस्ताके थकेहुएको नमक मिली छाछका दान करै उबटन करना थकेहुए ब्राह्मणके चरण धोना ॥७४॥ चटाई कंबल पलंग इनका दान और गोदान तथा शहत और तिलका दान संपूर्ण पापोंका नाश करनेहारा है ॥७५॥ सायंकालके समय ईख ककडीका दान करै तथा रसायनका दान पित्रीश्वरोंके निमित्त तर्पण करै ॥७६ ॥ ये सब वैशाखके कर्त्तव्य

धर्म हैं प्रातःकाल उठ स्नान कर ब्राह्मणके मुखसे कथा सुने फिर नित्यकर्म कर मधुसूदन भगवान्‌का पूजन करै और वैशाखमाहात्म्यकी कथा मन लगायके सुने ॥७७॥७८॥ तेल और उबटनेको छोडदे कांसीके पात्रमें भोजन न करै निषिद्ध भोजन और वृथा बकवाद न करै ॥ ७९ ॥ घीया, गाजर, लहसन, तिलपिष्ट, कांजी, फूट. घीयातोरई तथा पोई, कलिंदा, सहजना, चौलाई, कुलथी और मसूर त्याग देय ॥ बैंगन, कलींदा,

नित्यकर्माणि कृत्वैवं मधुसुदनमर्चयेत् । कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः ॥ ७८ ॥ तैलाभ्यङ्गं वर्जयेच्च कांस्यपात्रे तु भोजनम् । निषिद्धभक्षणं चैव वृथालापं तु वर्जयेत् ॥ ७९ ॥ अलाबुं गृञ्जनं चैव लशुनं तिलपिष्टकम् । आरनालं भिस्सटं च घृतकोशातकीं तथा ॥ ८० ॥ उपोदकीं कलिङ्गं च शिग्रुशाकं च वर्जयेत । निष्पावानि कुलित्थानि मसूराणि च वर्जयेत् ॥ ८१ ॥ वृन्ताकानि कलिङ्गानि कोद्रवाणि च वर्जयेत् । तन्दुलीयकशाकं च कौसुम्भं मूलकं तथा ॥ ८२ ॥ औदुम्बरं बिल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम् । सर्वथा वर्जयेद्विद्वान् मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥ ८३ ॥ एतेष्वन्यतमं भुक्त्वा स चाण्डालो भवेद् ध्रुवम् । तिर्यग्योनिशतं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८४ ॥ एवं मासव्रतं कुर्यात् प्रीतये मधुघातिनः । एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः ॥ ८५ ॥ मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्रां च सदक्षिणाम् । स्वर्चितां विभवैः सर्वैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ८६ ॥

कोदो, चौलाई, कसूम, मूली, गूजर, बेलफल, ल्हिसौडा इनका सेवन वैशाखमें भूल कर भी न करै ॥ ८०--८३ ॥ जो इनमेंसे एकभी खाय तो चांडालकी योनिमें जन्मे वह सौ जन्मपर्यन्त पशु बने इसमें संदेह नहीं है ॥ ८४ ॥ ऐसे मधुसूदन भगवान्‌की प्रसन्नताके निमित्त व्रत करै और व्रतके समाप्त

होनेपर विष्णु भगवान्की प्रतिमा बनवाय वस्त्र पहराय दक्षिणासहित ब्राह्मणको निवेदन करै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ वैशाखसुदी द्वादशीके दिन दही और अन्नका दान करै और जलका घडा तांबूल फल और दक्षिणासहित देय ॥८७॥ फिर जूता और छत्रीका दान कर ब्राह्मण भोजन करावै ठंडा जल दही अन्न तांबूल और दक्षिणासहित लेकर कहै कि यह मैं धर्मराजाके निमित्त दान करूं हूं यमराज मेरे ऊपर प्रसन्न होउ अपसव्य होय

वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमञ्जसा। सोदकुम्भं सताम्बूलं सफलं च सदक्षिणम् ॥८७॥ दद्यादुपानहौ छत्रं ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः। शीतलोदकदध्यन्नं सताम्बूलं सदक्षिणम् ॥ ८८ ॥ ददामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः। अपसव्यात्समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः ॥ ८९ ॥ दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे। गुरुभ्यश्च तथा दद्यात्पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे ॥ ९० ॥ शीतलोदक दध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम्। सदक्षिणं सताम्बूलं सभक्ष्यं च फलान्वितम् ॥ ९१ ॥ ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोक जिगीषया। इति दत्त्वा यथाशक्त्या गां च दद्यात् कुटुम्बिने ॥ ९२ ॥ एवं मासव्रतं कुर्यात्सदा दम्भविवर्जितः। स सर्वैः पातकै र्हीनः कुलमुद्धृत्य वै शतम् ॥ ९३ ॥

गोत्रसहित ऐसे उच्चारण कर ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ पहिले दही और अन्न पितीश्वरोंको तृप्तिको अक्षय दे फिर गुरुको फिर विष्णुको दे ॥ ९० ॥ शीतल जल और कांसीके पात्रमें दही अन्न दक्षिणा तांबूल और फल रखकर कहै हे विष्णो! मैं वैकुंठको प्राप्तिके निमित्त ये दान करूं हूं फिर कुटुम्बी ब्राह्मणको यथाशक्ति गोदान करै ॥ ९१ ॥९२॥ ऐसे दंभको छोड सदा व्रत करै वह सब पापोंसे छूट अपने सौ कुलका उद्धार कर सब प्राणियोंके

देखते देखते सूर्यमंडलको भेदकर योगियोंकोभी दुर्लभ जो विष्णुका परम धाम हैं उसमें चलाजाय है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ जब व्याधकरके पूछेभये तब वैशाखमासके धर्मोंकी कथा श्रुतदेवजी कह रहे हैं तबही सबके देखते देखते वह पंचशाखा वृक्ष पृथ्वीपर गिरता हुआ और उस वृक्षकी खोंतरमेंसे एक बडा भयंकर सर्प तत्काल पापरूप देहका परित्याग कर हाथ जोड शिर झुकाय वहां बैठता हुआ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे

पश्यतामेव भूतानां भित्त्वा वै सूर्यमण्डलम् । याति विष्णोः परं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ९४ ॥ व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मान्विष्ण्वादिष्टानतिमहितरान् व्याधपृष्टान् समस्तान् । वृक्षः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताहो पञ्चशाखी द्रुमोऽयम् ॥ ९५ ॥ वृक्षात्तस्मात्कोटरे संस्थितो हि व्यालः कश्चिद्दीर्घदेही करालः । हित्वा देहं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्राञ्जलिर्नम्रमूर्धा ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमा० नारदाम्बरीष० भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥छ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ततस्तु विस्मितो भूत्वा शङ्खो व्याधसमन्वितः । को भवानिति तं प्राह दशैषा च कुतस्तव ॥ १ ॥ केन वा कर्मणा सौम्य मतिस्तव शुभावहा । अकस्मात्ते कथं मुक्तिरेतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥

वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ तब तो श्रुतदेवजी कहने लगे कि, शंखमुनि बडे विस्मित हुए और व्याधभी विस्मित होता हुआ तब शंखमुनिने पूछा तुम कौन हो और तुम्हारी दशा ऐसी कैसे होय गई है ॥ १ ॥ हे सौम्य ! कौन कर्मसे तेरी ऐसी शुभ बुद्धि हुई है और अकस्मात् तेरी मुक्ति कैसे होयगई यह तू सब विस्तारपूर्वक हमारे सामने कह ॥ २ ॥

जब शंखने ऐसे पूछा तब वह दंडकीनाईं पृथ्वीपर गिर शिर झुकाय हाथ जोड कहता हुआ ॥३॥ मैं प्रयागराजमें एक ब्राह्मण था बहुत बकबक करता था रूप और यौवन करके युक्त विद्याके मदसे गर्वित ॥४॥ धनवान पुत्रवान् सदा अहंकारसे दूषित कुसीद मुनिका पुत्र मेरा नाम रोचन हुआ ॥ ५ ॥ आसन, शयन, निद्रा, व्यवाय, अक्षपरिक्रिया, लोकचर्या, व्याज लेना यही मेरा व्यापार होता हुआ ॥ ६ ॥ लोककी निन्दासे

शङ्खेनैवं तदा पृष्टो दण्डवत्पतितो भुवि। प्रश्रयावनतो भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अहं पुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे बहु-भाषकः। रूपयौवनसंपन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥४॥ धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाहङ्कारदूषितः। कुसीदस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना रोचन इत्यहम् ॥५॥ आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः। लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्ते ममाभवन् ॥ ६ ॥ तन्तुमात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशंकितः। सदंभश्च सदा क्रूरो न श्रद्धा मे कदाचन ॥७॥ दुर्बुद्धेर्मम दुष्टस्य कियान् कालो गतोऽभवत्। तदा वैशाखमासेऽस्मिञ्जयन्तो नाम वै द्विजः ॥ ८ ॥ श्रावयामास तन्मासधर्मान् भागवतप्रियान्। तत्क्षेत्रवासिनां पुण्यकर्मणां च द्विजन्मनाम् ॥ ९ ॥ नारी नराः क्षत्रियाश्च वैश्याः शूद्राः सहस्रशः। प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य मधुसूदनमव्ययम् ॥ १० ॥

शंकारहित दंभयुक्त और क्रूर मेरी किसी बातमें श्रद्धा नहीं रही ॥७॥ ऐसे मुझ दुष्ट दुर्बुद्धिका बहुतसा समय नष्ट होयगया तब वैशाखके महीनेमें जयन्त नाम ब्राह्मण ॥८॥ भगवान्के प्यारे वैशाखमासके धर्म सुनाते हुए उस क्षेत्रमें रहनेवाले पुण्यकर्मा द्विज ॥ ९ ॥ पुरुष स्त्री हजारों वैश्य क्षत्री शूद्र प्रातःकाल स्नानकर अविनाशी मधुसूदन भगवान्का पूजन कर रातदिन कथा सुनें और जयंत कथा बांचे सब लोग मौनधारणकर वासुदेव

वैशाखधर्मनिरता दम्भालस्यविवर्जिताः । तां सभां च प्रविष्टोऽहं कौतुकाच्च दिदृक्षया ॥ १२ ॥ सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोर्पितो जने । ताम्बूलं च मुखे कृत्वा कञ्चुकं च मया धृतम् ॥१३॥ कथाविक्षेपमकरवं लोकवार्ताभिरञ्जसा । सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यमभूद्वै लोकवार्तया ॥१४॥ क्वचिद्वासः प्रसार्याहं क्वचिन्निन्दन्क्वचिद्धसन् । एवं कालो मया नीतः कथा यावत्समाप्यते ॥ १५ ॥ पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योल्पायुर्विनष्टधीः । सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोहं च परे दिने ॥ १६ ॥ यमदूतैश्च नीतोऽहं नरके च भयङ्करे । घोरां च यातनां भुक्त्वा मन्वन्तानि चतुर्दश ॥१७॥ युगेष्वथ च लक्षेषु तथा चतुरशीतिभिः । क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीं चावसं द्रुमे ॥१८॥

कथां शृण्वन्ति सततं जयन्तेन समीरिताम् । शुचिभूता मौनधरा वासुदेवकथारताः ॥ ११ ॥

भगवान्की कथामें मन लगाय ॥ १० ॥ ११ ॥ वैशाखधर्ममें निरत दंभ और आलस्यको छोड सब कथा सुनेहैं मैं उसमें सभा कौतुक देखनेकी इच्छासे जाताहुआ ॥१२॥ मेरे शिरपर पगडी बंधरही थी सोई सबको नमस्कार करी मुखमें पान चबाये हुए कंचुक धारण किये हुए ॥१३॥इस प्रकार सभामें जाय लोकचर्चासे कथामें विक्षेप करता हुआ उस लोकवार्तासे सब श्रोताओंका मन चलायमान होगया॥१४॥कभी मैं कपडा फैलाऊं कभी निन्दा करूं कभी हँसूं ऐसा जबतक कथा समाप्त हुई तबतक मैं ऐसेहो करता हुआ ॥ १५ ॥ फिर उसी दोषके कारण मेरी बुद्धि नष्ट होपगई अवस्था क्षीणहोगई और सन्निपातमें आय मेरे प्राण जाते रहे ॥ १६ ॥ और वाहीसमय यमके दूत पकडकर भयंकर नरकमें लेगये वहां चौदह मन्वन्तरपर्य्यन्त अनेकदुःख भोगे ऐसे क्रमसे चौरासी लाख योनि भोगकर अब मैं इस वृक्षमें निवास करूंहूं ॥ १७ ॥ १८ ॥

यह वृक्ष दश योजन लम्बा चौडा और सौ योजन ऊंचा है इस वृक्षमें सात योजनकी खोवरमें मैं बडा क्रूरसर्पकी योनि पाय वास करहूं ॥१९॥हेविप्रर्षे ये मेरे प्राचीन कर्मोंका फल है इस प्रकार इस कोटरमें निवास करते बिना कुछ खाये दश सहस्त्र वर्ष व्यतीत होयगयेहैं॥२०॥ दैवयोगसे आपके मुख कमलसे निकली कथाको चक्षुगोलकद्वारा सुननेसे मेरे सब पाप जाते रहे हैं ॥२१॥और सर्पकी योनिको छोड दिव्य देह धारणकर हाथ जोड

दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते । व्यालोहं तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे ॥ १९ ॥ भूत्वा वसामि विप्रर्षे कर्मणा बाधितः पुरा । अयुतं च समायातं निराहारस्य कोटरे ॥२०॥ दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम् । श्रुत्वा च चक्षुश्चुलकैः सद्यो ध्वस्ताशुभो मुने ॥ २१ ॥ व्यालयोनिं विसृज्याहं दिव्यरूपधरः पुमान् । प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥ २२ ॥ कस्मिञ्जन्मनि त्वं बन्धुर्न जाने मुनिसत्तम । न मयोपकृतं क्वापि सानुबन्धः कुतः सताम् ॥ २३ ॥ साधूनां समचित्तानां सदा भूतदयावताम् । परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथा मतिः ॥ २४ ॥ मामद्यानुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् । यथा च सुगति र्भूयाद्यथा विष्णौ रतिर्भवेत् ॥ २५ ॥

नमस्कारकरे आपकी शरणसे प्राप्त हुआ हूं ॥२२॥ हे मुनिसत्तम ! मैं नहीं जानूं हूं आप कौनसे जन्ममें मेरे बन्धु हुए हो मैंने तो कहीं भी उप-कार नहीं किया फिर सज्जनोंका अनुबन्ध कैसे हुआ ॥२३॥ समान है चित्त जिनके ऐसे दयावान् साधुमहात्माओंकी प्रकृति सदा परोपकारमें प्रवृत्त रहे है इनकी मति कभी अन्यथा नहीं होयहै ॥२४॥ आप आज मेरे ऊपर बडा अनुग्रह करो जिससे धर्ममें मेरी बुद्धि होय जैसे सुन्दर

गति मिले और विष्णुभगवान्‌की प्रीति होय ॥२५॥ सुदर्शन चक्रधारी विष्णुभगवान्‌की कभी विस्मृति न होय और सच्चरित्र साधुमहात्माओंकी संगति सदा बनी रहै ॥२६॥ कभी मुझसे अधर्म न होय अहंकार न होय सदा मैं दरिद्री रहूं क्योंकि दरिद्र धन मदांधोंकेलिये अंजनरूप है ॥२७॥ इस प्रकार अनेक रीतिसे स्तुतिकर वारंवार नमस्कार कर हाथ जोड शिरनवाय मुनीश्वरके आगे चुपचाप खडा रहा ॥२८॥शंखमुनि पूर्ण प्रेमसेभर

न भूयाद्विस्मृतिः क्वापि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः । महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत्‌ ॥ २६ ॥ नाधर्मः क्वापि मे भूयान्ना हङ्कारो मदान्वितः । दारिद्र्यमेव मे भूयान्मदान्धानां यदञ्जनम्‌ ॥ २७ ॥ इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुन । प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ तूष्णीमेव तदग्रतः ॥ २८ ॥ शङ्खो दोर्भ्यां समुत्थाप्य पूर्णप्रेमपरिप्लुतः । पस्पर्श पाणिना चाङ्गं शन्तमेन गता-ध्वसः ॥ २९ ॥ चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन्‌ दिव्यरूपधरे द्विजे । प्राह तं कृपयाविष्टो भाविवृत्तान्तमञ्जसा ॥ ३० ॥ द्विजत्वं मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि । माहात्म्यश्रवणात्सद्यो ध्वस्तनष्टाखिलाशुभः ॥ ३१ ॥ अतिवाहिकलोकांश्च क्रमाद्गत्वा पुन र्भुवि । दशार्णे विषये पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः ॥ ३२ ॥

गये और दोनों हाथोंसे उठाय उसके देहको अपने हाथसे स्पर्शकरतेहुये जिससे उसके सब पाप नष्ट होयगये ॥२९॥ और उस दिव्यरूपधारी ब्राह्मणपर अनुग्रहकर कृपाविष्ट होय भावी वृत्तांत कहने लगे॥३०॥ हे द्विज ! वैशाख मासका माहात्म्य और विष्णुभगवान्‌का माहात्म्य श्रवण करनेसे तेरे सब पाप नष्ट होयगये हैं ॥३१॥ तू क्रमसे अतिवाहिक लोकोंको जाकर फिर दशार्ण देशमें ब्राह्मणके घर जन्म लेयगा ॥ ३२ ॥

और वेदशर्मानामसे विख्यात होयगा और विद्याओंमें विशारद होयगा उस जन्ममें तेरी अत्यंत जातिस्मृति होयगी ॥ ३३ ॥ इस स्मरणके अनुबंधसे तू संपूर्ण इच्छाओंका परित्याग कर वैशाखोक्त विष्णुके प्रिय धर्मोंको करैगा ॥३४॥ निर्द्वन्द्व निःस्पृह गुरुभक्त और जितेंद्रिय होकर उस जन्म तू सदा विष्णुभगवान्‌की कथामें तत्पर रहैगा ॥३५॥ तब तू सिद्धि प्राप्त करैगा और संपूर्ण बंधनोंसे छूटकर योगियोंकीभी दुर्लभ परमधामकी

वेदशर्मेति विख्यातः सर्वविद्याविशारदः । तत्र ते भविता जातिस्मृतिरात्यन्तिकी शुभा ॥ ३३ ॥ तथा स्मृतानुबन्धस्त्वं त्यक्तसर्वैषणः शुभः । करोषि सकलान् धर्मान् वैशाखोक्तान् हरिप्रियान् ॥ ३४ ॥ निर्द्वन्द्वो निःस्पृहोऽसङ्गो गुरुभक्तो जितेन्द्रियः । सदा विष्णुकथालापो भविता तत्र जन्मनि ॥३५॥ ततः सिद्धिं सम्यगाप्य विध्वस्ताखिलबन्धनः । प्राप्नोषि परमं धाम योगैरपि दुरासदम् ॥ ३६॥ मा भैषीः पुत्र भद्रं ते भविता मत्प्रसादतः । हास्याद्भयात्तथा क्रोधाद्द्वेषात्कामादथापि वा ॥ ३७॥ स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च । पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम् ॥ ३८ ॥ किमुत श्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः । दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम ॥ ३९ ॥

प्राप्ति तुझे होयगी ॥३६॥ हे पुत्र ! डरो मत अब मेरी प्रसन्नतासे तेरा कल्याण होयगा हँसीसे डरसे क्रोधसे द्वेषसे कामसे ॥ ३७ ॥ स्नेहसे विष्णु भगवान्‌के नामका उच्चारण करै तौ पापीभी निर्मल हो विष्णुलोकको चले जांयहैं ॥ ३८ ॥ जो श्रद्धापूर्वक क्रोधको जीत जितेंद्रिय होय सुने है

उनका तौ कहनाही क्या है जो दयावान् होय श्रवण करें हैं वेभी मोक्ष पावें हैं ॥३९॥ कोई केवल भक्तिसे कथालापमें तत्पर होयहैं और संपूर्ण धर्मोंको त्याग देयहैं वे भी विष्णुके परमपदको पावें हैं ॥४०॥ जो कोई द्वेषादिसे अथवा भक्तिसे विष्णुकी उपसना करें हैं वे भी विष्णुलोकको चले जांय हैं जैसे प्राणोंके नाश करनेवाली पूतना मुक्त होयगई ॥४१॥महात्माओंकी नित्य संगति वाग्विसर्ग और उनका आश्रय यह मुमुक्षु पुरुषोंको सदा कर्त्तव्य

केचित्केवलय भक्त्या कथालापैकतत्पराः । सर्वधर्मोज्झिता वापि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ ४० ॥ द्वेषादिना च भक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते । तेऽपि यान्ति परं धाम पूतनेवासुहारिणी ॥ ४१ ॥ महद्भिः संगतो नित्यवाग्विसर्गस्तदाश्रयः । मुमुक्षूणां च कर्तव्यः स विधिः श्रुतिचोदितः ॥ ४२ ॥ स वाग्विसर्गो जनताचविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि । नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ४३ ॥ यः कष्टसेवां न च कांक्षते विभुर्न वा धनं भूरि न रूपयौवने । स्मृतः सकृद्वाञ्छति धाम भास्वरं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ ४४ ॥

है यही विधि वेदोक्त है ॥ ४२ ॥ यह वाग्विसर्ग जिसमें संपूर्ण पाप दूर होयजांयहैं भगवान्के भिन्न भिन्न यशसे अंकित जो अनेक नाम हैं उन्हें साधु महात्मा श्रवण करें हैं गान करें हैं और मनन करें हैं ऐसो जो भगवान्की सेवाहै इसमें न कष्ट उठानेकी आवश्यकता है न अधिक धन खर्च होयहै न भगवान् रूप और यौवनपर प्रसन्न होय हैं जिसके स्मरणमात्रसे प्रकाशमय धाम मिलै है उस दयालु परमात्माको हम शरणमें जांय हैं ॥४३॥४४॥

उसी अनामय नारायणकी शरण जा यह नारायण भक्तवत्सल अव्यक्त, मन करके गम्य और दयाके समुद्र हैं॥४५॥हे महामते ! वैशाखोक्त इन संपूर्ण धर्मोंको करौ इनसे जगदीश्वर भगवान् प्रसन्न होयकर सब प्रकारसे तुम्हारा मंगल करेंगे ॥४६॥ ऐसे कह मुनीश्वर ता चुप होयगये तब व्याधको देख विस्मित होय वह दिव्य पुरुष मुनीश्वरसे कहने लगा ॥४७॥ दिव्य पुरुष बोला—हे महाराज ! मैं धन्य हूं आपने कृपालु होय मेरे ऊपर बडा अनुग्रह

तमेव शरणं याहि नारायणमनामयम् । भक्तवत्सलमव्यक्तं चेतोगम्यं दयानिधिम् ॥ ४५ ॥ कुरु सर्वानिमान् धर्मान् वैशाखोक्तान्महामते । तेन तुष्टो जगन्नाथः शर्म ते च विधास्यति ॥ ४६ ॥ इत्युक्त्वा विरराभाथ व्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः । स दिव्यः पुरुषः प्राह पुनस्तं मुनिपुङ्गवम् ॥ ४७ ॥ दिव्यपुरुष उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया शङ्ख दयालुना । दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव परां गतिम् ॥४८॥ इति तं च परिक्रम्य ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ । ततः सायमभूद्राजञ्छङ्खो व्याधेन तोषितः ॥४९॥ सन्ध्यां सायन्तनीं कृत्वा रात्रिशे निनाय च । नानाख्यानैश्च भूपानां देवानां च महात्मनाम् ॥ ५० ॥ लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्ठिभिरेव च । ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ॥ ५१ ॥

किया है आपकी कृपासे और मेरे पूर्ण भाग्योदयसे मेरी दुष्ट योनि जाती रही और उत्तम गति मिली ॥४८॥ऐसे परिक्रमा देय आज्ञा मांग स्वर्गलोकको जाताहुआ, हे राजन् ! तब सायंकाल होयगया और शंखमुनि व्याधसे संतुष्ट होय ॥४९॥सायंकालकी संध्याकर राजा देवता और महात्माओंके अनेक इतिहास सुनाय तथा विष्णुभगवान्‌के अवतारोंकी देखी और सुनी कथा सुनाय रात्रिके शेष भागको व्यतीत कर ब्राह्म मुहूर्तमें उठ चरण धोय

मौन साध ॥५०॥५१॥ तारक ब्रह्मका ध्यान कर शौचादि क्रियाओंसे निश्चिन्त होय सूर्योदयसे पहिले स्नानकर ॥५२॥ सन्ध्यावन्दनकर सबका तर्पण कर प्रसन्न मनसे व्याधको बुलाय उसके शिरपर प्रोक्षण कर देखके ॥५३॥ वेदसे भी अधिक शुभ फलदायक राम ये दो अक्षर देते हुए विष्णु भगवान्‌का प्रत्येक नाम वेदसे भी अधिक शुभ फलदायक है ॥५४॥ और ऐसे अनन्त नामोंसे अधिक विष्णुके सहस्र नाम हैं उन सहस्र नामोंसेभी

ध्यायेच्च तारकं ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम्। वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक्च भगोदयात् ॥ ५२ ॥ कृत्वा संध्यादिकं कर्म तथा संतर्प्य चाखिलान्। व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥५३॥ रामेति द्व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम्। विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ॥ ५४ ॥ तेभ्यश्चानन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम्। तादृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम् ॥ ५५ ॥ तस्माद्रामेति तन्नाम जप व्याध निरन्तरम्। धर्मानेतान् कुरु व्याध यावदामरणान्तिकम् ॥ ५६ ॥ ततस्ते भविता जन्म वल्मीकस्य ऋषेः कुले। वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि ॥ ५७ ॥ इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम्। व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः॥ ५८ ॥

अधिक रामनाम है ॥५५॥ इससे हे व्याध ! तू निरन्तर इस रामनामका जप कर और हे व्याध ! मरणपर्यंत इन धर्मोंको करता रह ॥५६॥ इससे तेरा जन्म वाल्मीकिऋषिके कुलमें होयगा और तू वाल्मीकि इस लोकमें प्रसिद्ध होयगा ॥५७॥ ऐसे व्याधको समझाय बुझाय आप दक्षिण

दिशाको चले गये व्याधभी परिक्रमा देय बारम्बार नमस्कार कर ॥ ५८ ॥ थोडी दूरतक पीछे जाता हुआ फिर उनके वियोगमें हाय हाय कर रोने लगा जबतक नेत्रोंसे दीखता रहा तबतक शंख मुनिकी चालको देखता रहा ॥५९॥ फिर हृदयमें उन्हींका ध्यान करता हुआ कठिनतासे रुका और वनको स्वच्छ कर उस मार्गमें प्याउ लगाय ॥ ६० ॥ अत्यन्त योग्य इन वैशाखोक्त धर्मोंको करता रहा, वनके कैथ पनस जामन आम आदिके

किंचिद्दूरानुगो भूत्वा स रुदन् विरहातुरः। यावद्दृष्टिपथं तावत्पश्यंस्तस्य गतिं पुनः ॥ ५९ ॥ पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिन्तयन्। वनं निर्माय तन्मार्गे प्रपां कृत्वा सुनिर्मलाम् ॥६०॥ अतियोग्यानिमान् धर्मान्वैशाखोक्तांश्चकार ह। वन्यैः कपित्थ-पनसैर्जम्बुचूतादिभिः फलैः ॥ ६१ ॥ मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं पर्यकल्पयत्। उपानद्भिश्चन्दनैश्च च्छत्रैश्च व्यजनैरपि ॥ ६२ ॥ वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च क्वचित्क्वचित्। आजहार च पान्थानां श्रमस्वेदोद्भवं तथा ॥ ६३ ॥ प्रातः स्नात्वा दिवा-रात्रं जपन् रामेति वै मनुम्। व्याधजन्म निनायासौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत् ॥६४॥ कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे। तपो वै दुस्तरं तेपे बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ ६५ ॥

फल ॥६१॥ श्रमसे थके रस्तागीरोंको भोजन कराता रहा जूता चन्दन छत्री पंखा ॥६२॥ बालूके बिछोना और छाया आदिसे रस्तागीर जिनके पसीना आय रहे उनके श्रमको दूर करने लगा ॥६३॥ प्रातःकाल स्नानकर रातदिन नामका जप करै ऐसे व्याधके जन्मको पूर्ण कर वल्मीकके घर जन्म लेता हुआ ॥६४॥ उसी सरोवरमें कृणु नाम कोई ऋषि दुस्तर तप करता था जिनने बाहरके सब काम छोड दीने ॥ ६५ ॥

उसके देहपर बहुत कालमें सर्पकी बांबी बनगई इसी हेतुसे उसे वाल्मीकऋषि कहने लगे ॥६६॥ पीछे तपके अन्तमें जब कृणुऋषिके कानमें स्त्रियोंके प्रिय शब्द सुनाई देने लगे तब तो उनका चित्त चलायमान होगयाहुआ और एक भीलजातिकी स्त्रीको लाय वाल्मीक नामक पुत्र उत्पन्न करते भये, हे राजन् ! ये वाल्मीक संसारमें बडे यशस्वी और विख्यात होते भये इन्होने मनोहर छन्दमें रामकथा रचकर संसारमें प्रसिद्ध करी यह रामकथा सब कर्म

वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा । वाल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम् ॥ ६६ ॥ पश्चात्तपोविरामान्ते कृणौ स्मृति-पथं गते । स्त्रियो विरावतो राजन् स्खलितं चेन्द्रियं मुनेः ॥ ६७ ॥ जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः । वाल्मीकि-रिति विख्यातो भुवनेषु महायशाः ॥ ६८ ॥ यो वै रामकथां दिव्यां स्वैः प्रबन्धैर्मनोहरैः । लोके प्रख्यापयामास कर्मबन्ध-निकृन्तनीम् ॥ ६९ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूप लघ्वपि भूरिदम् । व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम् ॥ ७० ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥७१॥ इति श्रीस्कन्द-पुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बंधनोंको काटनेहारी है ॥ ६७–६९ ॥ श्रुतदेवजी बोले–वैशाखके माहात्म्यको देख थोडे देनेपर बहुत फले है ऐसेही व्याध जूवाओंका दान करनेसे दुर्लभ ऋषि होवा हुआ ॥ ७० ॥ जो कोई रोमांचोत्पादक इस पापनाशक आख्यानको सुनैगा और औरोंको सुनावैगा उसका जन्म संसारमें फिर न होयगा ॥७१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

१–जग्राह चोरणी काचिदिति वा पाठः ।

मैथिल बोले-इस वैशाखमासमें कौन कौनसी तिथिएँ अत्यन्त पुण्यकारक हैं और उन तिथियोंमें कौनकौनसे दान विशेष करके उत्तम हैं और संसारमें ये किसने प्रख्यात की हैं यह सब विस्तारपूर्वक कहिये ॥१॥ यह सुनके श्रुतदेवजी कहने लगे, वैशाखमें मेषके सूर्यकी तीसों तिथि बड़ी उत्तमहैं ॥२॥ एक एक तिथिमें जो दान कियाजाय है उसका कोटि कोटि गुणित फल मिले हैं संपूर्ण दानोंका जो फल है और संपूर्ण तीर्थोंके करनेसे जो फल

मैथिल उवाच ॥ का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसंज्ञके । कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः । कैः प्रख्याताश्च वै लोके एतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ १ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवौ ॥ २ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् । सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥३॥ तत्फलं समवाप्नोति ह्येकैकस्यां जलाप्लुतः । स्नानं दानं तपो होमो देवतार्चनसत्क्रियाः ॥४॥ कथायाः श्रवणं चैव सद्यो मुक्तिविधायकम् । रोगाद्युपहतो यस्तु दरिद्रेणापि पीडितः॥५॥ श्रुत्वा कथामिमां पुण्यां कृतकृत्यो भवेन्नरः । अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च येन नीता इमाः शुभाः ॥ ६ ॥ स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्चात्महा स्मृतः । जलाशयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनं च कलेवरम् ॥ ७ ॥

मिले है ॥३॥ सोई फल एक एक तिथिमें स्नान दान तप होम देवपूजनादि कर्मोंसे प्राप्त होता है ॥४॥ कथाके श्रवण करनेसे भी तत्काल मुक्ति मिले है जो कोई रोग अथवा दरिद्रसे पीडित होय ॥५॥ सो भी इस पुण्यकथाको श्रवण कर कृतकृत्य होय जाता है जो कोई विना दान किये वा विना स्नान किये इन तिथियोंको व्यतीत करे॥६॥ वह गोघाती कृतघ्नी पितृघाती और आत्मघाती होय हैं जलाशय स्वाधीन है और देहभी स्वाधीनहै॥ ७ ॥

माधवभगवान् मन करके सेव्य है और यह काल सर्वगुणयुक्त है और साधु दयावान् होवे हैं ऐसे अवसरमें माधवका अवश्य सेवन करना चाहिये ॥८॥ दरिद्री धनवान् लंगडा अंधा नपुंसक विधवा स्त्री ॥९॥ बालक वृद्ध युवा सबहीको इस माधवमासका सेवन कर्त्तव्य है, वैशाखोक्त धर्म अत्यन्त सुखसाध्य हैं ॥१०॥ वैशाखमासको पायकर इन सब शुभ धर्मोंको कर ऐसे समयको पाय कौन यत्न नहीं करे है इससे शुभ और

माधवो मनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः । साधवश्च दयावन्तः को न सेवेत माधवम् ॥८॥ दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्च पङ्गुभिश्चान्धकैस्तथा। षण्ढैश्च विधवाभिश्च नारीभिश्च नरैस्तथा ॥९॥ कुमारयुववृद्धैश्च रोगार्तैरपि भूमिप । अतीव सुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः ॥१०॥ मासमेनमनुप्राप्य धर्मान्न कुरु इमाञ्छुभान् । को न यत्नं च कुरुते तस्मात्कोन्वपरः शुभः ॥ ११ ॥ योऽतीव सुलभान् धर्मान्न करोति नराधमः । तस्यैव सुलभा लोका नरका नात्र संशयः ॥ १२ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि तस्मिन्मासे नृपोत्तम । तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम् ॥ १३ ॥ चैत्रे मासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे । पापघ्नी पितृदैवत्या गयाकोटिफलप्रदा ॥ १४ ॥ अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी । नरकपितॄनुद्दिश्य सावर्णौ शासति क्षितिम् ॥ १५ ॥

कुछ नहीं है ॥११॥ जो कोई नीच नर इन बहुत ही सुलभ धर्मोंको नहीं करे है उसको नरक सहजहीमें मिलजांय है इसमें कोई सन्देह नहीं है॥१२॥ हे राजन् ! जैसे दहीको मथकर माखन अलग कर लेय है ऐसे ही इस मासमेंसे उस तिथिको निकालकर वर्णन करूं हूं ॥१३॥ चैत्रके महीनामें जब मेषकी संक्रांति होय उस समय पापनके नाश करनहारी जो अमावास्या है सो कोटि गयाकरनेके फलको देय है॥१४॥ यह एक पित्रीश्वरोंके

संबंधकी पुरानी कहानी चली आवे है कि जब पृथ्वीपर सावर्णि मन्वन्तरका राज्य था यह कथा नरक और पित्रीश्वरोंकी है ॥ १५ ॥ तीसवें कलियुगके अन्तमें जब संपूर्ण धर्म नष्ट होय गये उस समय आनर्त्त देशमें धर्मवर्ण नामका कोई ब्राह्मण हुआ ॥ १६ ॥ उसने इस घोरकलियुगमें मनुष्योंको पापसे युक्त देखा उसी कलियुगके प्रथमपादमें जब सब मनुष्य अपने २ वर्णके धर्मोंसे रहित होय गये ॥ १७ ॥ तब एक दिन मुनि

त्रिंशत्कलियुगस्यान्ते सर्वधर्मविवार्जिते । आनर्ते तु द्विजः कश्चिद्धर्मवर्ण इति श्रुतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा कलियुगे घोरे जनान्पापरतान् मुनिः । तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवाजिते ॥ १७ ॥ स कदाचित्सत्रयागं मुनीनां तु महात्मनाम् । अगमत्पुष्करे क्षेत्रे कुर्वतां मौनधारिणाम् ॥ १८ ॥ तत्र चासन्पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः । तत्र केचित्कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः ॥ १९ ॥ कृते यद्वत्सरात्साध्यं पुण्यं मा धवतोषणम् । त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥ २० ॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णु-स्मृतेर्भवेत् । अत्यल्पमपि वै पुण्यं कलौ कोटिगुणं भवेत् ॥ २१ ॥

महात्माओंके सत्रयज्ञके दर्शनके निमित्त पुष्करक्षेत्रमें जाते हुए ॥ १८ ॥ वहां ऋषि मुनि लोग शास्त्रविहित पुण्यवर्द्धक कथाओंका वर्णन कर रहे उनमेंसे कोई धृतव्रत कलियुगकी प्रशंसा करने लगे ॥ १९ ॥ कि सत्युगमें जो वर्षभरमें माधव भगवान् प्रसन्न होय सो त्रेतामें एक मासमें और द्वापरमें एक पक्षहीमें होय है ॥ २० ॥ उससे दशगुण पुण्य कलियुगमें विष्णुका स्मरण करनेसे होय है कलियुगमें कृत थोडा पुण्यभी कोटि

गुणित होय है ॥२१॥ जो दया पुण्य दान धर्म कुछ नहीं करसके है उनको केवल एक हरिनामका उच्चारणही करना उचित है ॥२२॥ जो कोई अकालमें अन्नदान करे है वह वैकुंठको जाय है जब यह प्रसंग होय रहाथा तबही नारदमुनि आयकर एक हाथसे शिश्न और एक हाथसे जिह्वाको पकड खूब हंसने लगे और उन्मत्तकी तरह नाचने लगे ॥२३॥२४॥ तब सब सभाके लोग कहने लगे हे नारद ! कहौ तौ सही यह क्या बात है।तब

दयापुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते। दयादान न कुरुते सकृदुच्चार्यं वै हरिम् ॥ २२ ॥ स एव चोर्ध्वगो नूनं दुर्भिक्षे चान्नदस्तथा। एतत्प्रसङ्गावसरे नारदोऽभ्येत्य वै मुनिः ॥ २३ ॥ करेणैकेन शिश्नं च जिह्वां चैकेन वै हसन्। प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ सभ्यास्तदा तमित्यूचुः विमेतदिति नारद। प्रत्युवाच च तान् सर्वान्नृत्यन्नृत्यन्हसन्सुधीः ॥२५॥ संतोषाद्यदिह प्रोक्तं नृत्यद्भिर्भावितात्मभिः। सिद्धा वयं न सन्देहः पुण्योऽयं कलिरागतः ॥२६॥ तत्सत्यं न च संदेहो बहु स्वल्पेन साध्यते। स्मरणात्तोषमायाति केशवः क्लेशनाशनः ॥ २७ ॥ तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटं च द्वयं ध्रुवम्। शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा जिह्वाया अपि नित्यशः ॥ २८ ॥

बुद्धिमान् नारद हंसते और नाचते कहनेलगे ॥२५॥ नृत्य करते हुए भावितात्माओंने जो संतोषपूर्वक कहा है उससे हम सिद्ध होय गये हैं निःसन्देह यह कलियुग पुण्यरूप आया हैं ॥२६॥ वह सत्यही है इसमें सन्देह नहीं है यह बहुतही थोडे परिश्रमसे सिद्ध होय है केशव भगवान् क्लेश नाश करने वाले स्मरणमात्रहीसे प्रसन्न होंय हैं ॥ २७ ॥ तथापि मैं तुमसे कहूं हूं हे पुत्रो ! शिश्न और जिह्वा इन दोका निग्रह करना बहुत कठिन है ॥२८॥

जिसके वशमें वे दोनो बात हैं वही जनार्दनके तुल्य है अत एव कलियुगके आगमनमें आप लोगोंका ठहरना यहां उचित नहीं है ॥ २९ ॥ इस पाखंडमय इस भारतको छोडकर सुखपूर्वक अन्यत्र विचरो जहां कहीं मन प्रसन्न होय॥३०॥ऐसे व्रत धारण करनेवाले मुनि यह वचन सुन यज्ञको समाप्तकर शीघ्रही सुखपूर्वक चले गये ॥३१॥ धर्मवर्णने भी यह सुन पृथ्वीके त्यागनेका विचार कर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतको धारणकर दंड कमंडलु ले

द्वयं यस्य वशे भूयात्स एव स्याज्जनार्दनः । भवद्भिर्नात्र स्थातव्यं तस्मात् कलियुगागमे ॥ २९ ॥ पाखण्डं भारतं हित्वा संचरध्वं यथासुखम् । यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति ॥ ३० ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः । सत्रं समाप्य सहसा ययुस्ते च यथासुखम् ॥३१॥ धर्मवर्णोऽपि तच्छ्रुत्वा त्यक्तुं भूमिं मनो दधे । स व्रतं चोर्ध्वतेजस्कं धृत्वा दण्डकमण्डलू ॥ ३२ ॥ जटावल्कलधारी च भूत्वा चैवं ययौ पुनः । कलौयुगे त्वनाचारान् द्रष्टुं विस्मितमानसः ॥ ३३ ॥ तत्रापश्यज्जनान् घोरान् पापाचाररतान् खलान् । पाखण्डिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्रजिनस्तथा ॥ ३४ ॥ भर्तारं द्वेष्टि भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा । भृत्यश्च स्वामिहन्ता च पुत्रः पितृवधे रतः ॥ ३५ ॥

जटा और छालके वस्त्र पहर वनमें आश्चर्य करता कलियुगमें अनाचारोंके देखनेके लिये जाता हुआ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वहां जाय क्या देखै है कि सम्पूर्णमनुष्य घोर पापोंमें निमग्न हैं ब्राह्मण शूद्र और संन्यासी पाखंडी होय गये हैं ॥ ३४ ॥ भार्या अपने पतिसे विरोध रक्खै है शिष्य अपने

गुरुसे द्रोह करै सेवक स्वामीको और पुत्र पिताके मारनेमें तत्पर है ॥ ३५ ॥ सब ब्राह्मण शूद्रवत होय गये हैं गौ बकरीके समान होय गई हैं वेद कहानीके समान हैं वेदविहित कर्म साधारण काम होय गये हैं ॥ ३६ ॥ भूत प्रेत पिशाचादि प्रत्यक्ष देवताओंका रूप धारण कर फल दे रहे हैं और पापी मनुष्य श्रद्धापूर्वक इन्हींका पूजन करें हैं ॥ ३७ ॥ संपूर्ण कुकर्ममें निरत हैं और कुकर्महीमें अपने प्राण त्याग देय हैं झूँठी गवाही देय हैं

शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः । गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रियाः ॥ ३६ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः । ता एव श्रद्धयार्चन्ति जनाः पापरताः खलाः ॥ ३७ ॥ सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः । कूटसाक्षिप्रवक्तारः सदा कैतवमानसाः ॥ ३८ ॥ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ । सर्वेषां हैतुकी विद्या सा पूज्या नृपमन्दिरे ॥ ३९ ॥ गीताद्याश्च कलाविद्या नृपाणां च प्रियावहाः । हीनाश्च पूज्यतां यान्ति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥४० ॥ श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राः स्युः कलौ युगे । विष्णुभक्तिर्नराणां तु प्रायशो नैव वर्तते॥४१॥ प्रायः पाखण्डभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति । शूद्रा धर्मप्रवक्तारो जटिलास्तापसाः कलौ ॥ ४२ ॥

मनमें सदा कपट रक्खे हैं ॥ ३८ ॥ कलियुगमें मनमें एक विचार है वाणीमें एक है कर्ममें एक है ऐसे सबकी पाखंडमयी विद्याही राजभवनमें प्रतिष्ठा पावै है नृत्य गीवादि कला राजाओंको प्रिय लगे हैं अधम और नीच पूज्य होय गये हैं उत्तम मनुष्य अधम होय गये हैं ॥ ३९ ॥४०॥ कलियुगमें वेदपाठी ब्राह्मण दरिद्री होय गये हैं मनुष्योंके हृदयमेंसे विष्णुकी भक्ति जाती रही है ॥ ४१ ॥ यह पुण्य क्षेत्र प्रायः पाखंडसे भरगई है

१ मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यत्सदाकलौ ॥ इति च पाठः ।

शूद्र धर्मका उपदेश करें हैं और जिसने जटा बढाय लीनी हैं वेही तपस्वी हैं ॥४२॥ सम्पूर्ण मनुष्य अल्पायु दयाहीन और शठ होय गये हैं सबही धर्मोपदेशक बनगये हैं सबही उत्साहहीन हैं ॥४३॥ पराई वृथा निंदा करकरके अपनीही पूजाकी इच्छा करें हैं अपने मालिकके घर जले जानेपर उसकी निन्दा करें हैं ॥४४॥ इस कलियुगमें भ्राता भगिनीसे और पिता पुत्रीसे संगम करे हैं सब मनुष्य शूद्रा और वेश्याओंमें निरत रहे हैं ॥ ४५ ॥

सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः । सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वे चैव हतोत्सवाः ॥ ४३ ॥ स्वार्चनं चापि हीच्छन्ति वृथा निन्दापरायणाः । असूयानिरताः सर्वे (परे) प्रभौ सति गृहं गते ॥ ४४ ॥ भ्राता च भगिनीं गन्ता पिता पुत्रीं च वै कलौ । सर्वेऽपि शूद्रीनिरताः सर्वे वाराङ्गनारताः॥४५॥ साधूंन्नैवावजानन्ति बहुपापांश्च मन्वते । व्यक्तीकुर्वन्ति साधूनां दोषमेकं दुराग्रहाः ॥४६॥ पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदन्ति हि । दोषमेव प्रगृह्णन्ति कलौ तु विगुणा जनाः ॥ ४८ ॥ जलूकः स्तनसंयुक्तो रक्तं पिबति नो पयः । ओषध्यः सत्त्वहीना हि ऋतूनां व्यत्ययस्तथा ॥ ४८ ॥ दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्याकालेन सूयते । नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमन्तो नराः कलौ ॥ ४९ ॥

साधु महात्माओंकी अवज्ञा करे हैं बडे बडे पापियोंका सत्कार करें हैं और साधुओंमें एक भी दोष होय तो उसे प्रकट करे हैं ॥४६॥ पापियोंके दोषोंको गुण समझकर उनका वर्णन करे हैं और निर्गुणी लोग इस कलियुगमें केवल दोषहीको ग्रहण करते हैं जैसे स्तनमें लगी हुई जोंक केवल रुधिरपानही करे है सब औषधी सत्त्वहीन होयगई हैं ऋतुओंमें विपरीतता आयगई है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सब राज्यभरमें घोर दुर्भिक्ष पडे हैं

कन्याके गर्भकी उत्पत्ति होय है कलियुगमें सब मनुष्य नट और नर्तकोंमें अनुराग करें हैं ॥४९॥ जो वेद और वेदान्तके वेत्ता हैं उन्हें मूढ लोक सेवक मानें हैं ऐसे ये मूढ सब आचारादिसे भ्रष्ट होयगये हैं ॥५०॥ श्राद्धादिक सब कर्म और वेदोक्त सब कर्म परित्याग करदिये हैं जिसकी जिह्वापर विष्णुका नाम कभी नहीं आवे है ॥५१॥ सदा शृंगाररसमें मग्न रहे हैं और वैसेही शृंगार गीत गावे है जिनके न विष्णुकी सेवा है न शास्त्रकी चर्चा है न योगकी

वेदवेदान्तविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः । भृत्यान्पश्यन्ति तान्मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिलाशिषः ॥ ५० ॥ त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदोदितक्रियाः। जिह्वायां विष्णुनामानि न वर्तन्ते कदाचन ॥५१॥ शृङ्गाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः।न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न योगदीक्षा न विचारलेशः ॥ ५२ ॥ न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने क्वापि बभूव चित्रम् । तान्दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यन्त विस्मितः॥ ५३ ॥ वंशं पापात्क्षयं यातं दृष्ट्वा द्वीपान्तरं ययौ। सञ्चरन् सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेव तु सर्वशः ॥ ५४ ॥ पितृलोकं ययौ धीमान् कदाचित्कौतुकान्वितः । तत्रापश्यन्महाघोरान् भ्राम्यमाणांश्च कर्मभिः ॥ ५५ ॥ धावतो रुदमानांश्च पततः पातितानपि । तत्रापश्यच्चान्धकूपे पतितान्स्वान् पितॄनधः ॥ ५६ ॥

दीक्षा है और विचारका तौ लेशमात्रभी नहीं है ॥५२॥ न तीर्थयात्रा है न दान धर्म है ऐसे कलियुगकी मनुष्योंकी विचित्र दशा देख धर्मवर्णभी बहुत भयभीत और शंकित होताहुआ ॥ ५३ ॥ वंशको पापसे क्षीण होता देख द्वीपान्तरमें जाय संपूर्ण लोकोंमें विचरता आश्चर्यसे युक्त पितृलोकको जाताहुआ वहां जाय बडे बडे घोर कर्मोंद्वारा भ्रमणकरते हुये दोडते रोते और गिरते हुये तथा अन्धकूपमें पडे हुए अपनेही पितृगणको देखे ॥५४–५६॥

कोई वौ ऐसे हैं जो एक दूबके सहारे खडे हैं और दूबके उखडने अथवा टूटनेसे शंकित होयरहे हैं और उनके आश्रयभूत उस दूबकी जडको मूषक कुतरे है ॥५७॥ उस दूबके तीन भाग वौ मूसेने कुतर गेरे हैं एक बाकी है उसे देख वे दुःखसे कर्षित होयरहे हैं ॥५८॥ नीचे अंधकूपमें कोई पडे हैं यह अत्यन्त भयंकर है दुर्गम है और महाघोर है जिसमें कर्मसे अभिभूत दुःखी होयके पडे हैं ॥५९॥ यह कूप आगेकी ओर दुर्गम है जिसमें किसी

दूर्वाग्रलम्बिनो दीनान् दूर्वाच्छेदे हि शङ्किताः। तदाखुः खादयत्यद्धा दूर्वामूलं तदाश्रयम् ॥ ५७ ॥ तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः। तं दृष्ट्वा ते क्षीयमाणं मूलं दुःखेन कर्शिताः ॥ ५८ ॥ अधो दृष्ट्वा चान्धकूपं तटपातादिभीषणम्। दुरुत्तारं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः ॥ ५९ ॥ अग्रे चापि दुरुत्तारमवलम्बविवर्जितम्। तान् दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा दयालुर्वाक्यमब्रवीत् ॥६०॥ के यूयं पतिता ह्यस्मिन् केन दुस्तरकर्मणा। कस्य गोत्रे समुत्पन्नाः कथं वो मुक्तिरूर्जिता ॥ ६१ ॥ एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोऽद्य भविष्यति। इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथ सुदुःखिताः। तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः ॥६२॥

प्रकारका अवलंब नहीं है उन्हें देख बहुत विस्मित हुआ और दयालु होय यह वाक्य बोला ॥६०॥ तुम कौन हो तुमने ऐसे कौनसे घोर दुष्कर्म किये हैं जिनसे तुम यहां पडे हो तुम कौनसे गोत्रमें उत्पन्न हो और तुम्हारी मुक्ति कैसे होयगी ॥ ६१ ॥ यह तुम सब मेरे सामने कहो तुम्हे आजही कल्याण मिलैगा ऐसे उसके वाक्यको सुन दुःखसे व्याकुल पित्रीश्वर प्रसन्न हो धर्म और वेदको आगे कर दीनवाणीसे कहने लगे हम श्रीवत्स

गोत्री हैं संतान नहीं उससे कोई हमारे पिण्डदान और श्राद्धादिक नहीं करैं है इससे हम यह दुःख भोग रहे हैं और कलियुगमें पापोंके कारण हमारा वंश निःसंतान हुआ ॥ ६२–६४ ॥ हमारा वंश पापसे क्षीण है सो हमारे लिये कोई पिण्डदेनेवाला नहीं है इससे हम दुरात्मा अंधकूपमें पडे हैं ॥६५॥ हमारे कुलमें एक धर्मवर्णही बडा यशस्वी है वह सबको छोड छाड अकेलाही विचरै है उसने गृहस्थाई नहीं करी ॥ ६६ ॥ वही

पितर ऊचुः॥ वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि सन्तानवर्जिताः ॥६३॥ पिण्डश्राद्धविहीनाश्च तेन पच्यामहे वयम् । निःसन्तानोऽपि नो वंशो जातः पापैः कलौ युगे ॥६४॥ नास्माकं पिण्डदश्चास्ति वंशे पापात्क्षयं गते । तेनान्धकूपे पतनं निस्तन्तूनां दुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥ एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः । स विरक्तश्चरन्नेको न गार्हस्थ्यमुपेयिवान् ॥६६॥ तन्तुना तेन बध्नामो दूर्वा-नालावलम्बिताः । निस्तन्तुत्वाच्च तन्मूलमाखुः खादति प्रत्यहम् ॥६७॥ एकस्यैवावशिष्टत्वात् किंचिन्मूलावशेषितः । आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य पश्यताम् ॥ ६८ ॥ तस्य चायुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति । पश्चात्कूपे पतिष्यामो दुरुत्तारेऽन्ध-तामसे ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वं च भुवं गत्वा धर्मवर्णं प्रबोधय । अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्ये विमुखं मुनिम् ॥ ७० ॥

दूर्वाका तंतुरूप है जिसे पकडकर हम लटक रहे हैं वह तंतुहीन है इसीसे उसकी जडको चूहा नित्य भक्षण करै है॥६७॥ वह एकही शेष रहा है इसीसे थोडीसे जड बची है सो देखो उसेभी मूषक भक्षण करै है ॥ ६८ ॥ धर्मवर्णकी आयुके क्षीण होनेपर दूर्वाके शेषभागको मूषक भक्षण कर-लेगा और हम अंधतम इस दुर्गम कूपमें गिर पडेंगे ॥६९॥ इससे हे तात ! तु पृथ्वीमें जाय धर्मवर्णको समझाओ गृहस्थाईसे विमुख उस मुनिको

हमारी दीनता दिखायके समझाओ कि ॥७०॥ दुःखसे पीडित तेरे पित्रीश्वर दुर्गम अंधकूप नरकमें पडे मैंने देखे हैं केवल एक दूबके सहारे लटक रहे हैं ॥७१॥ हे मुने ! यह वंशरूपी दूब है इसकी जडको कालरूपी मूषक प्रतिदिन भक्षण करै है ॥ ७२ ॥ ऐसेही क्रमसे सब वंश क्षीण होय गया है केवल तूही एक शेष है इससे इस दूबके तीन भाग नष्ट होय गये हैं ॥७३॥ केवल जो तू पृथ्वीपर बचा है सो एकही भाग शेष रहा है उससेभी

पितरस्ते भृशार्ता हि नरके पतिता मया। अन्धकूपे दुरुत्तारे दृष्ट्वा दूर्वावलम्बिताः ॥७१॥ सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततं मुने। कालाख्यो मूषकस्तस्य मूलं खादति प्रत्यहम् ॥ ७२ ॥ वंशनाशोऽनुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः। तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टं भागत्रयं मुने ॥ ७३ ॥ एको भागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि। किंचित्खादति वै त्वाखुस्तव चायुःक्षयः क्रमात् ॥ ७४ ॥ परेते त्वयि चास्माकं तवापि पतनं भवेत्। कूप एवान्धतामिस्रे सन्तानेऽपि क्षयं गते ॥७५॥ तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु सन्ततिवर्द्धनम्। तेनास्माकं तवापि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥७६॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ७७ ॥

थोडा थोडा प्रतिदिन चूहा भक्षण करे है सोई तेरी आयु प्रतिदिन क्षीण होय है ॥ ७४ ॥ तेरे मरनेपर और संतानके क्षीण होनेपर हम और तू सब अंधतामिस्र कूपमें पडेंगे ॥७५॥ इस लिये गृहस्थाई ग्रहण करके संतानको बढाओ इससे तुझको और हमको ऊर्ध्वगति प्राप्त होयगी ॥ ७६ ॥ बहुतसे पुत्रोंके लिये यजन करना चाहिये यदि उनमेंसे कोई भी गयाको जाय अथवा अश्वमेध यज्ञ करै अथवा नीलवर्णका सांड छोडै ॥ ७७ ॥

यदि कोई भी वैशाख माघ वा कार्तिकमें हमारे निमित्त स्नान श्राद्ध वा दान करे तो ॥ ७८ ॥ निश्चयही हमें ऊर्ध्वगति मिलेगी और नरकोंसे उद्धार होयगा कोई एक भी विष्णुभक्त होय अथवा कोई एक भी एकादशी व्रत करै वा पापोंके नाश करनेहारे विष्णुकी कथा श्रवण करे तो उसकी सौ बीती हुई पीढ़ी और सौ पीढ़ी आगेकी जो पापाचारी होय तोभी नरकके दर्शन नहीं करेंगे दया और धर्मसे हीन बहुतसे पुत्रोंके क्या है ॥७९-८१॥

यद्येकोऽपि च वैशाखे माघे वा कार्तिकेऽपि वा । अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥७८॥ तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः । एको वा विष्णुभक्तः स्यादेकः स्याद्धरिवासरी ॥७९॥ एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशिनीम् । तस्यातीतं कुलशतं भावि चापि कुलं शतम् ॥८०॥ अपि पापवृतं क्वापि नरकं नैव पश्यति । किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः॥८१॥ ये जीवा नार्चयन्त्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले । नापुत्रस्य हि लोकोऽस्ति सर्वमेतज्जना विदुः॥८२॥ तत्रापि च दयायुक्तं तत्सन्तानं च दुर्लभम् । इति तं बोधयित्वा तु वाक्यैरेतैश्च सूनृतैः ॥ ८३ ॥ विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु । पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मितः ॥८४॥ प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह रुदन् वै जातवेपथुः । नाम्नाहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंशो दुराग्रही ॥८५॥

जो कुलमें उत्पन्न होयकर विष्णुभगवान्‌की पूजा नहीं करे हैं उन पुत्रहीनोंको यह लोक कुछ भी नहीं है ॥ ८२ ॥ इसमें भी दयायुक्त संतान दुर्लभ है सो तुम ऐसे ऐसे सत्यवाक्योंसे समझायकर विरक्त और उर्ध्व-रेता धर्मवर्णको समझायकर गृहस्थ धर्ममें प्रवृत्त करो ॥८३॥ ऐसे पित्रीश्वरोंके वाक्य सुन धर्मवर्ण बडे अचम्भेमें आया ॥८४॥ तब तो धर्मवर्ण कांपने लगा और रोता हुआ हाथजोड नमस्कार कर कहने लगा-हे महाराज ! मैं ही

दुराग्रही तुम्हारा वंशधर धर्मवण हूं ॥८५॥ यज्ञमें नारद महात्माके वचन सुनें कि कलियुगमें किसीकीभी जिह्वा और शिश्न वशमें नहीं रहै ॥८६॥ और पृथ्वीमें बहुतसे पापी मनुष्योंको देख दुर्जनोंकी संगतिके डरके मारे द्वीपांतरमें विचरता हुआ ॥८७॥ सो तीन पाद तौ व्यतीत होय गये और इस कलिके अंतिम पादमें भी हे पितरो ! साढेतीन भाग व्यतीत होयगये ॥८८॥ अबतक मैंने आपका क्लेश नहीं जाना सो मेरा जन्म वृथाही गया

सत्रे श्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः । जिह्वादाढर्च्यं गुह्यदार्ढ्यं न कस्यापि कलौ युगे ॥ ८६ ॥ दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्तान् जनानपि शङ्कितः । भीतो दुर्जनसङ्गत्या चरन् द्वीपान्तरे वसन् ॥८७ ॥ पादास्त्रयो गता ह्यस्य कलेः पादेऽन्तिमेऽपि च। गताः सार्द्धत्रयो भागा इदानीं जनका इमे ॥ ८८ ॥ नाहं वेद्मि भवद्दुःखं वृथा जन्म गतं मम । यस्मिन् कुले त्वहं जात ऋणं पित्रोर्न वै हृतम् ॥ ८९ ॥ किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा । यो जातो नार्चयेद्विष्णुं पितॄन् देवानृषींस्तथा ॥ ९० ॥ युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाज्ञापयत क्षितौ। यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा॥ ९१ ॥ कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले । इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता ॥ ९२ ॥

जिस कुलमें उत्पन्न हुआ और पित्रीश्वरोंका ऋण दूर नहीं हुआ ॥ ८९ ॥ तौ पृथ्वीके भाररूप अन्नके शत्रु मेरे जन्मसे क्या हुआ और जो विष्णु पित्रीश्वर देवता ऋषियोंका पूजनं नहीं करै तौ उसका जन्म लेना वृथा है ॥ ९० ॥ मैं आपकी आज्ञा पालन करूंगा परन्तु यह आज्ञा करो कि पृथ्वीमें संसारी कर्त्तव्योंके करनेपर भी मुझे कलियुगकी बाधा न होय जब बुद्धिमान् धर्मवर्णने यह कही तब ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

हे राजन्! कुछ मनमें संतोष कर पित्रीश्वर बोले—हे पुत्र! तू अपने महात्मा पितरकी यह दशा देख ॥ ९३ ॥ कि संतानके अभावसे गिर रहे हैं केवल एक दूबके सहारे ठहर रहे हैं सोई तू गृहस्थधर्ममें प्रवृत्त होय संतान उत्पन्न करके हमारा उद्धार कर ॥ ९४ ॥ जो विष्णुकथामें तत्परहैं और रात्रिदिन हरिस्मरण करें और सदाचारमें निरत हैं उनको कलियुग बाधा नहीं पहुँचावे है ॥ ९५ ॥ हे मानद! जिसके घरमें शालिग्रामकी मूर्ति है

किंचिदाश्वस्तमनस इदमूचुर्महीपते। पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणां ते महात्मनाम् ॥ ९३ ॥ सन्तत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलम्बिनाम्। त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य संतत्यास्मान् समुद्धर ॥ ९४ ॥ ये च विष्णुकथारक्ता ये स्मरन्त्यनिशं हरिम्। ये सदाचारनिरता न तान् वै बाधते कलिः ॥ ९५ ॥ शालिग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद। अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः ॥ ९६ ॥ विष्णोर्निवेदितान्नं च वर्तते यस्य चोदरे। कर्णे वा तुलसीपत्रं न तं वै बाधते कलिः ॥ ९७ ॥ यत्करे तुलसीमाला यद्धस्ते च पवित्रकम्। यज्जिह्वायां हरेर्नाम न तं वै बाधते कलिः ॥ ९८ ॥ यश्च वैशाखनिरतो माघस्नानपरश्च यः। कार्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते कलिः ॥ ९९ ॥

अथवा महाभारत है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुँचावे है ॥९६॥ जिसके उदरमें विष्णुभगवान्‌के निवेदन किया हुआ अन्न वर्त्तमान है और कानमें तुलसीपत्र है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुंचावै है ॥ ९७ ॥ जिसके हाथमें तुलसीकी माला है हाथमें पवित्र और जिसकी जिह्वापर हरिनाम है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुंचावै है ॥९८॥ जो वैशाख और माघमें स्नान करै है कार्तिकमें दीपक जोडे है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुंचावै है ॥९९॥

जो विष्णुभगवान्‌की कथा नित्यप्रति सुने है कैसी कथा है पापनाशिनी मोक्षकी देनेहारी और दिव्य है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुंचावै है॥ १००॥ जिसके घरमें वैश्वदेव होता है सुन्दर तुलसी है जिसके आंगनमें शुभ गौ है उसे कलियुग बाधा नहीं पहुंचावै है ॥ १ ॥ हे पुत्र। इसलिये तू पापात्मक युगमें भी निवास मत करै तू शीघ्र घर जा यह माधवमास है ॥ २ ॥ सबके उपकारके निमित्त मेषकी संक्रांतिकी ये तीस तिथि हैं

प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः । पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः ॥ १०० ॥ यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा । यदङ्गणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः ॥ १ ॥ तस्मान्मा वस पुत्र त्वं युगे पापात्मकेऽपि च । शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र मासोऽयं माधवाह्वयः ॥ २ ॥ सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे । त्रिंशच्च तिथयः पुण्या महापुण्यप्रदायकाः ॥ ३ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् । तत्रापि चैत्रबहुलो दर्शो नृणां च मुक्तिदः ॥ ४ ॥ प्रियश्च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायकः । ये वै पितॄन् समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्वन्ति तद्दिने ॥ ५ ॥ सोदकुम्भं पिण्डदानं तदक्षय्यफलं भवेत् । ये च कुर्वन्ति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत ॥ ६ ॥

ये बडी उत्तम हैं और इनमें जो पुण्य किया है उनका फलभी बहुत मिलै है ॥ ३ ॥ एक एक तिथिमें जो पुण्य किया जाय उसको करोड गुणा फल मिलैं है । इनमें भी चैत्रकी अमावस्या तो साक्षात् मुक्तिकी दाता है ॥ ४ ॥ पितृगण और देवताओंकी प्यारी तत्काल मुक्तिकी देनहारी हैं इस दिन जो पित्रीश्वरोंके निमित्त श्राद्धादिक करें हैं ॥५॥ जलका घडा वा पिंडदान करें हैं उन्हें अक्षत फल मिलै है जो चैत्रमासमें गयामें जाय

तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत् । यदि श्राद्धं मधौ दर्शे शाकेनापि करोति च ॥ ७ ॥ कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः । कुम्भं च दानकैः पूर्णं कर्पूरागरुवासितम् ॥ ८ ॥ यो न दद्यान्मधौ दर्शे स पितृघ्नो न संशयः । यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम् ॥ ९ ॥ श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम् । पितॄणां च तदा लोके नदी चामृतवर्षिणी ॥ १० ॥ कुम्भदानात्प्रसरति श्राद्धदानादिद यिनी । अन्नसूपघृतापूपलेह्यपायसकर्दमान् ॥ ११ ॥ तस्माज्झटिति त्वं गच्छ यदा चामा भविष्यति । कुरु श्राद्धं पिण्डदानं सोदकुम्भं महामते ॥ १२ ॥ सर्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय । धर्मार्थकामैः संतुष्टः प्राप्य सन्तानमुत्तमम् ॥ १३ ॥

श्राद्ध करैं हैं वह श्राद्ध करोड श्राद्धके समान होय है जो मधुमासकी अमावस्याके दिन शाकसेभी श्राद्ध करैं हैं उनको गयामें कोटि श्राद्ध करनेका फल मिलै है इसमें संदेह नहीं है जलसे पूर्ण घट जिसमें कपूर और अगरुकी वासना होय ॥६-८॥ ऐसे घटका दान जो मधुमासकी अमावस्याको न करै वह पितृघाती है इसमें संदेह नहीं है जो मधुमासमें पानी सहित करीरका दान करै ॥९॥ और भक्ति पूर्वक श्राद्ध करै तो वह अपने कुलका उद्धार करता है पितृलोकमें कुंभदानसे अमृतवर्षिणी नदी बहती है जो श्राद्धदानके देनहारी है अन्न, दाल, घृत, अपूप, लेह्य, खीर, आदिका प्रसार करै है ॥ १० ॥ ११ ॥ अतएव तू अमावस्या होनेसे पहिले शीघ्र जा और श्राद्ध पिंडदान तथा घटदान कर ॥ १२ ॥ और सबके उपकारके

निमित्त गृहस्थाईका सेवन कर फिर धर्म अर्थ और कामसे संतुष्ट होय उत्तम संतान पाय फिर मुनिकी वृत्ति धारणकर सुखपूर्वक द्वीपमें विचरो जब पित्रीश्वरोंने ऐसे आज्ञा करी तब वह धर्मवण शीघ्रही पृथ्वीमें आता हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥ चैत्रमासमें मेषकी संक्रांतिके दिन प्रातःकाल स्नानकर पित्रीश्वर देवता और ऋषियोंका तर्पण करे ॥१५॥ उदकुंभसहित पापका नाश करनेवाला श्राद्धकरके अपने पितृवर्गको ऐसी मुक्ति देताहुआ जिससे

पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसञ्चर। इत्यादिष्टः पितृभिश्च तूर्णं भूमिं ययौ मुनिः ॥ १४ ॥ चैत्रे मासि मेषसंस्थे पुण्ये तस्मिन् दिवाकरे। प्रातः स्नात्वा च संतर्प्य पितॄन् देवानृषींस्तथा ॥ १५ ॥ सोदकुम्भं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम्। तेन दत्त्वा पितॄणां च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम् ॥ १६ ॥ स्वयं विवाहमकरोत्संततिं प्राप्य वै सतीम्। लोके प्रख्यापयामास तां तिथिं पापनाशिनीम् ॥ १७ ॥ स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गन्धमादनमाययौ। तस्मात्पुण्यतमश्चैष मधोर्दर्शः शुभावहः ॥ १८ ॥ नानेन सदृशी लोके तिथिर्दृष्टा श्रुतापि वा ॥ ११९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ छ ॥

अवागमन छूटजाय॥१६॥ फिर अपना विवाह किया जिससे सुन्दर संतान हुई और संसारमें उस पापनाशिनी तिथिको प्रख्यात करता हुआ॥१७॥ फिर आप प्रसन्न होय गंधमादनपर जाता हुआ इसीसे यह मधुमासकी अमावस्या बडी शुभ है ॥ १८ ॥ इसके समान संसारमें कोई तिथि न देखीगई है न सुनी गई है ॥११९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीश्रुतदेवजी बोले अब मैं पापके नाशकर्ता इस माहात्म्यका वर्णन करू हूं माधवमासमें शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीयाके दिन जो सूर्योदयपर प्रातःकाल स्नान करें वे संपूर्ण पापसे छूटकर विष्णुलोकको चले जांय हैं ॥ १ ॥ २ ॥ जो देवता पित्रीश्वर और ऋषियोंके निमित्त तर्पण करे उसने संपूर्ण वेदादि शास्त्र पढलिये उसने सब यज्ञ करलिये और सौ श्राद्ध करलिये ॥ ३ ॥ जो मधुसूदन भगवान्‌का पूजन कर कथा सुनें हैं अक्षयतृतीयाके दिन

श्रुतदेव उवाच ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् । अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे ॥ १ ॥ ये कुर्वन्ति च तस्यां वै प्रातःस्नानं भगोदये । ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ २ ॥ देवान् पितॄन्मुनीन्व यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम् । तेनाधीतं च तेनेष्टं तेन श्राद्धशतं कृतम् ॥ ३ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वन्ति ये नराः । अक्षय्यायां तृतीयायां ते नरा मुक्तिभागिनः ॥ ४ ॥ ये दानं तत्र कुर्वन्ति मधुद्विट्प्रीतये शुभम् । तदक्षय्यं फलत्येव मधुशासनशासनात् ॥ ५ ॥ देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा महाशुभा । त्रयाणां तृप्तिदात्री च कृते धर्मे सनातने ॥ ६ ॥ प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चासीत्तदप्यहम् । वक्ष्यामि नृपशार्दूल सावधानमनाः शृणु ॥ ७ ॥

वे मुक्ति पावें हैं ॥४॥ जो मधुसूदन भगवान्‌की प्रसन्नताके निमित्त दान करें हैं वे मधुसूदन भगवान्‌की आज्ञासे अक्षय फलके देनेवाले होंय हैं ॥५॥ यह तिथि देवता ऋषि और पित्रीश्वरोंकी है इसमें सनातन धर्म करनेपर देवता पित्रीश्वर और ऋषियोंकी तृप्ति होय है ॥६॥ इस तिथिकी प्रख्याति

कसे हुई सोभी मैं वर्णन करूं हुं हे राजन् । तू सावधान होय सुन ॥७॥ प्राचीन समयमें राजा बलिके संग इन्द्रका युद्ध हुआ और देवता और दैत्योंका भी आपसमें द्वन्द्वयुद्ध होता हुआ ॥ ८ ॥ इह पातालवासी बलिको जीतकर फिर पृथ्वीपर आय उतथ्यके आश्रममें जाता हुआ ॥ ९ ॥ वहां जाय मन्द मन्द चलनेवाली उसकी गर्भिणी पत्नीको देखता हुआ उसके कटिदेशमें सुवर्णके सूत्रमें बद्ध किंकिणी शोभा देरही ॥१०॥ उसके

पुरा पुरन्दरस्यासीद्युद्धं च बलिना सह । देवानां चैव दैत्यानां द्वंद्वयुद्धमभूत्ततः॥८॥ स निर्जित्य बलिं दैत्यं पातालतलवासिनम् । पुनर्भुवं समासाद्य चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥ ९ ॥ तत्रापश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणीं मन्दगामिनीम् । चलच्छ्रोणितटाबद्धकाञ्चीदाम्ना सुमण्डिताम् ॥ १० ॥ क्वणत्कङ्कणनिर्घोषजितमत्तालिकोकिलाम् । वल्गुचित्राम्बरां रामां मञ्जुवाचां शुचिस्मिताम् ॥११॥ लसत्कुम्भस्थलाभ्यां च कुचाभ्यामुपशोभिताम् । हसत्पद्ममुखीं दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥ १२ ॥ केतक्युदरपाण्डुभ्यां गण्डाभ्यां च मनोरमाम् । श्रमोच्छ्वसन्तीं दीनाक्षीं पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥ १३ ॥

कंकणोंकी झनकारने मदोन्मत्त भ्रमर और कोकिलाओंके शब्दको जीत लिया था अनेक प्रकारके वस्त्रधारण कर रक्खे मिष्ट वाणी और मन्द मन्द हास्यसे युक्त शोभा दे रही थी ॥११॥ कुंभके सदृश पीनकुचोसे जिसकी अपूर्व शोभा होरही थी विकसित कमलके समान उसका मुख था और नीलकमलके समान नेत्र थे॥१२॥ केतकीके उदरके समान पीत और मनोहर हैं गंडस्थल जिसके ऐसी परिश्रमसे श्वास भरतीहुई दीनाक्षी पर्ण

शालाकी ओर मुख किये बैठी ॥ १३ ॥ पर्यंकपर शयन करती हुई उसको देख इन्द्रको मोह उत्पन्न हुआ बलपूर्वक उस गुर्विणीस्त्रीसे भोग करनेमें प्रवृत्त होनेलगा ॥१४॥ तब गर्भस्थ पिंडने अपने गिरनेके भयसे दुःखी होय अपने पांवसे योनिमार्गका आच्छादनकर लिया ॥ १५ ॥ तबतो इन्द्रका वीर्य पृथ्वीही पर गिरपडा और गर्भस्थ शिशुपर इन्द्रको महान् क्रोध हुआ ॥१६॥ और रोषके मारे लाललाल नेत्रकर शाप देताहुआ हे

स्वपन्तीं शयने क्वापि तां दृष्ट्वा मोहमागतः । बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥ १४ ॥ गर्भस्थस्तु तदा पिण्डः स्वस्य पातविशङ्कया । छादयामास वै योनिद्वारं पादेन दुःखितः ॥ १५ ॥ ततश्चस्कन्द वीर्यं तद्भूमावेव बलद्विषः । गर्भस्थाय चुकोपासौ भगवान् पाकशासनः ॥ १६ ॥ तं शशाप च गर्भस्थं रुषा ताम्रान्तलोचनः । जात्यन्धो भव दुर्बुद्धे मावमंस्था यतः पदा ॥ १७ ॥ प्रच्छाद्य योनिद्वारं च ततो दीर्घतमाह्वयः । पदा प्रस्कन्दिताद्वीर्याज्जयन्तेन समोऽभवत् ॥ १८ ॥ पश्चादिन्द्रो ययौ शीघ्रमृषेः शापविशङ्कितः । पलायन्तं हरिं दृष्ट्वा जहसुर्बटवोऽखिलाः ॥१९॥ ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां शुभाम् । तत्र लीनश्चचारासौ दुस्तरं वै तपो महत् ॥ २० ॥

दुर्बुद्धे ! जो तैने पांवसे योनिद्वारको रोका है इससे तू जन्मांध हो तब दीर्घतमाह पांवोंसे वीर्यके संचरणसे जयन्तके समान होता हुआ॥१७॥१८॥ तब इन्द्र ऋषिके शापके डरके मारे शीघ्रही भागा उसे भागते हुएको देख संपूर्ण शिष्य हँसने लगे ॥१९॥ तब वो लज्जाके मारे मेरुकी कन्दरामें

जाय घुसा और वहां बैठकर उग्र तप करने लगा ॥२०॥ जब इन्द्र लज्जाके मारे मेरुमें जाय घुसा तब राजा बलि और संगी दैत्यगण गुप्तदूतों-द्वारा भेद लेकर ॥ २१ ॥ देवताओंपर आक्रमणकर अमरावतीपुरी दिक्पालोंकी विभूति और शंबरादिक तथा स्वामी रहित देवताओंके राज्यको बलपूर्वक भोगने लगे तब वो अग्निसे आदि लेकर सब देवता अपने रक्षकको न देखते भये और बृहस्पतिके पास जाय इन्द्रका वृत्तान्त पूछने लगे

मेरौ विलीय वसति देवेन्द्रे लज्जयान्विते । गूढैर्विज्ञाय तां वार्तां दैतेया बलिपूर्वकाः ॥ २१ ॥ सुरानाक्रम्य बुभुजुर्बलीन्द्राश्चामरावतीम् । दिक्पालानां विभूतीश्च शम्बराद्या बलीयसः ॥ २२ ॥ बलाद्बुभुजिरे हीननाथराष्ट्रं दिवौकसाम् । रक्षितारमजानन्तो देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥ २३ ॥ गत्वा तु धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम् । पप्रच्छुरिन्द्रवृत्तान्तं क्व च तिष्ठति नः प्रभुः ॥ २४ ॥ दैत्याक्रान्तमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम् । कुतो नायाति देवोऽसौ भूयान् कालो गतो विभो ॥ २५ ॥ तं यामो यत्र मघवा प्रार्थयामश्च तं विभुम् । इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाच ह ॥ २६ ॥ रसातले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याश्रमं ययौ । भुक्त्वा पत्नीं च धाष्ट्र्येन तच्छिष्यैरेव निन्दितः ॥ २७ ॥

कि हमारा स्वामी कहां है ॥ २२–२४ ॥ विना स्वामीके हमारे राज्यपर दैत्योंने आक्रमण किया है हे विभो ! बहुत दिन होगये इन्द्र क्यों नहीं आवै है ॥ २५ ॥ हे महाराज ! हमें बताओ जहां इन्द्र होय हम वहीं जांय और प्रार्थना करें जब देवताओंने ऐसे पूछा तब बृहस्पतिजी बोले ॥ २६ ॥ रसातलमें बलिको जीतकर इन्द्र उतथ्यके आश्रममें गया और वहां जाय उतथ्यकी स्त्रीसे बलपूर्वक संगम किया इसपर उसके

शिष्योंने बडी निन्दा की ॥ २७ ॥ लज्जाके मारे स्वर्गमें तो न आया और मेरुकी गुफामें घुसगया वहीं शचीके संग निवास करै है और अपने कियेहुए कर्मपर चिन्ता करै है ॥ २८ ॥ बृहस्पतिके ऐसे वाक्य सुनकर अग्निको आदि लेकर सब देवता इन्द्रको ढूंढने और प्रार्थना करनेकेलिये मेरुकी कन्दरामें पहुँचे ॥२९॥ कन्दरामें बैठेहुए इन्द्रको देख उसके बलवीर्यको प्रकाश करनेवाले लोकविख्यात स्वोत्रोंसे प्रसन्न करने लगे ॥३०॥

व्रीडितस्तु दिवं यातुं गुहां मेरोर्विवेश ह । तत्रैवास्ते शचीयुक्तः स्वकृतं चिन्तयन्विभुः ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः । गुहां मेरोर्ययुः शीघ्रं दृष्ट्वा प्रार्थयितुं विभुम् ॥ २९ ॥ तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेन्द्रं पाकशासनम् । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः ॥३०॥ इन्द्र तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाधिपाय ते । वयं दैत्यैरर्दिताश्च त्वया हीना भृशार्दिताः ॥३१॥ स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽङ्ग नानादेशेषु दुःखिताः । तस्मादागत्य देवेन्द्र जहि शत्रूनरिन्दम ॥ ३२ ॥ इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चकाम गुहामुखात् । लज्जयावनतो भूत्वा पश्यन् भूमिं च चक्षुषा ॥३३॥ न किञ्चिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः । तज्ज्ञात्वा धिषणः प्राह तं सुरेन्द्रं भयानतम् ॥ ३४ ॥

हे इन्द्र ! हे सब देवताओंके अधीश ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है तुम्हारे विना हमको दैत्योंने बडा क्लेश दिया है॥३१॥ हम स्थानभ्रष्ट हो होकर दुःखके मारे जगह जगह भ्रमें हैं इस लिये तुम चलकर शत्रुओंका दमन करो ॥३२॥ यह स्तुति सुन इन्द्र गुहासे बाहर आया लज्जाके मारे नेत्र पृथ्वीकी ओर कर राखे और कमर झुकाय रक्खी ॥३३॥ दुःखके मारे कंठ भर आये सो कुछभी मुखसे न कहसका यह दशा देख बृहस्पतिजी बोले ॥३४॥

हे इन्द्र ! तू शंका क्यों करै है यह संपूर्ण जगत् कर्माधीन मान अपमान सुख दुःख लाभ हानि हार जीत ॥ ३५ ॥ ये सब पूर्वजन्मार्जित कर्मोंके अनुरोधसे होंय हैं जीव कर्मके अनुसार चलै है और जो दुःख है सो दैवयोगसे काल पायकर अपने आप उपस्थित होय है ॥३६॥ बुद्धिमान् मनुष्य दुःख पडनेपर कुछ शोच नहीं करें हैं और सुखसे प्रसन्न नहीं होय हैं इसलिये हे प्रभो ! यह दुःख तुमको प्रारब्धसे मिला है ॥ ३७॥ हे इन्द्र ! इस

मा शङ्का ते सुरपते कर्माधीनमिदं जगत्। मानामानौ सुखं दुःखं लाभालाभौ जयाजयौ ॥ ३५ ॥ पूर्वकर्मानुरोधेन भवन्त्येव न संशयः। जीवः कर्मानुगो दुःखं दिष्ट दैवेन कालतः ॥ ३६ ॥ प्राज्ञाः प्राप्य न शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति वै सुखात्। तस्मात्प्रारब्धतः प्राप्त दुःखं चेदं तव प्रभो ॥ ३७ ॥ तत्प्राप्य मघवन् दुःखं नैव शोचितुमर्हसि। इत्युक्तो गुरुणा चाह मघवानमराधिपः ॥ ३८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ परस्त्रीसङ्गदोषेण बलं वीर्यं यशो मम। मंत्रशक्तिः शास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्च मानद ॥ ३९ ॥ अभवं नष्टवीर्योऽहं तूष्णीं तेन वसाम्यहम्। पाकशासनवाक्यं तु श्रुत्वा स्वाचार्यसंयुताः ॥ ४० ॥

दुःखको पाकर तुम शोच करने योग्य नहीं हो गुरुकी बात सुन इन्द्रने कहा ॥३८॥ हे मानद ! परस्त्रीगमनके दोषसे मेरी बल वीर्य यश मंत्रशक्ति शास्त्रशक्ति विद्याशक्ति ॥३९॥ सब नष्ट होयगई इन सबको खोयकर मैं यहां गुप्तनिवास करूं हूं इन्द्रकी यह बात सुन बृहस्पतिजी समेत ॥ ४० ॥

सब आपसमें उसको फिर बल देनेके लिये विचार करने लगे तब बृहस्पतिजी कहने लगे यह मधुसूदन भगवान्‌का प्रिय वैशाखमास है इस मासमें संपूर्ण तिथि बडी पुण्यरूप हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसमें शुक्लपक्षकी तृतीया अक्षयतृतीया है जो इस तिथिमें श्रद्धापूर्वक स्नान दानादि करै है॥४३॥ उसके निस्संदेह सहस्रों पाप नष्ट होजाते हैं तथा बहुत बल धैर्य और ऐश्वर्य बढे हैं ॥ ४४ ॥ अतएव अक्षयतृतीयाके दिन बलिके वैरी इन्द्रद्वारा

मन्त्रयामासुरेकान्ते पुनस्तस्य बलाप्तये । तदा गुरुश्च तान् प्राह करुणं च विदुत्तमः ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ मासो वैशाखनामायं प्रियो वै मधुघातिनः । सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥४२॥ तत्रापि च सिते पक्षे तृतीया चाक्षयाह्वया । यस्तस्यां स्नानदानादि श्रद्धया च करोति वै॥४३॥ तस्य पापसहस्राणि नश्यन्त्येव न संशयः । अनवद्यं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवन्ति च ॥४४॥ तस्मात्तस्यां तृतीयायां हरिणा बलिविद्विषा । स्नानदानादिसद्धर्मान् कारयामो हिताप्तये ॥४५॥ भविष्यति च सा शक्तिर्विद्यायां मंत्रशास्त्रयोः। बलं धैर्यं यशश्चैव यथापूर्वं भविष्यति ॥४६॥इत्येवं तु विचार्याथ गुरुर्देवैः समाहितः । इन्द्रेण कारयामास धर्मानेतान् हरिप्रियान् ॥ ४७ ॥

स्नान दानादिक सद्धर्म कराने चाहिये जिससे उसका हित साधन होय ॥४५॥ इसके प्रतापसे विद्या और मंत्रशास्त्रमें पूर्ववत् शक्ति होय जायगी बल धैर्य और यशभी पूर्ववत् बढ जायगा ॥४६॥ ऐसे देवताओंसमेत बृहस्पतिने विचार कर इन्द्रसे वैशाखमासके धर्म कराये ॥ ४७ ॥

अक्षयतृतीयाके दिन भुक्ति और मुक्तिके देनेहारे धर्मोंसे पूर्ववत् बल और धैर्यादि बढगये ॥४८॥ और परस्त्री गमनका दोषभी तत्काल नष्ट होयगया उस कर्मसे इन्द्र अपने पापकर्मोंसे ऐसे छूटगया जैसे चन्द्रमा राहुसे छूटै है ॥४९॥ और देवताओंके मध्यमें पूर्ववत् शोभाको प्राप्त हुआ इन्द्र देवताओंको संग ले असुरोंको जीत ॥५०॥ अक्षयतृतीयाके माहात्म्यसे सब वैभवोंसे युक्त होय अमरावती पुरीमें प्रवेश करता हुआ आगे शंख तूर्यादि

अक्षयायां तृतीयायां भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम्। तेन पूर्ववदेवासीद्बलं धैर्यादिकं विभोः ॥४८॥ परस्त्रीसङ्गदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत। पश्चाद्धताशुभः शक्रो राहोर्मुक्त इवोडुपः ॥ ४९ ॥ देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा । पश्चाद्देवैः समायुक्तो विनिर्जित्य तथासुरान् ॥ ५० ॥ तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् । विवेश विभवैः सार्द्धं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥ ५१ ॥ अनुज्ञाताश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः । ततस्ते यज्ञभागांश्च लेभिरे च यथा पुरा ॥ ५२ ॥ पिण्डभागांश्च पितरो यथापूर्वं प्रपेदिरे । स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानां च पराजये ॥ ५३ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् तृतीया चाक्षयाह्वया । प्रख्याता सर्वलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा ॥ ५४ ॥

बाजे बजते चले हैं॥५१॥फिर इन्द्रसे आज्ञा मांग सब देवता अपने अपने घर गये और पूर्ववत् यज्ञादिकमें अपना अपना भाग लेने लगे ॥५२॥ और पित्रीश्वर पूर्ववत् पिंडभाग प्राप्त करते हुए मुनि स्वाध्यायमें तुष्टहुए राक्षसोंके पराजित होनेपर ॥ ५३ ॥ तबहीसे इस लोकमें अक्षयतृतीया

प्रख्यात है यह देवता ऋषि पितृगण सबको संतोष देनेवाली है इससे यह सब कर्मोंके काटनेवाली सबसे पुण्यतम है यह अक्षयतृतीया मनुष्योंकी भुक्ति और मुक्ति देनेवाली है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे अक्षयतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ श्रुतदेवजी बोले—हे राजन् ! इस सब पुण्यवर्द्धिनी तिथियोंमें वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी संपूर्ण पापोंको नाश करनेवाली

तस्मात्पुण्यतमा चैषा सर्वकर्मनिकृन्तनी । भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाख माहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे अक्षयतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ छ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ तिथिष्वतासु पुण्यासु द्वादशी सितपक्षिणी । वैशाखमासे राजेन्द्र सर्वाघौघावनाशिनी ॥ १ ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् । किमिष्टैश्चव पूर्तैश्च द्वादशी यैर्न सेविता ॥ २ ॥ गङ्गायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् । द्वादश्यां माधवे मासि योग्याय ब्रह्मणेऽर्पणात् ॥ ३ ॥ गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात् । तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात् ॥ ४ ॥

है ॥१॥ जिसने इस द्वादशीका सेवन नहीं किया उसके दान तप और उपोषण व्रतादिके करनेसे क्या फल है इष्टापूर्तसे क्या फल है॥२॥जो गंगापर ग्रहणके समय सहस्र गौदान करनेसे फल मिलै है वही फल वैशाखमासमें द्वादशीके दिन योग्य ब्राह्मणको अर्पण करनेसे होता है ॥ ३ ॥ गंगामें दुर्भिक्षके समय प्रति दिन करोडोंको भोजन करनेसे जो फल मिलता है वही फल द्वादशीके दिन एकको भोजन देनेसे मिलै है ॥ ४ ॥

जो शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन एक एक चुटकी अन्न योग्यके लिये देय है उसे कोटि ब्राह्मणभोजनका फल मिलै है ॥५॥ जो मधुसहित तिलके पात्रका दान द्वादशीके दिन करै वह संपूर्ण बन्धनोंसे छूटकर विष्णुलोकको चला जाय है ॥ ६ ॥ शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन रात्रिको जागरण करै वह जीवे जीही मुक्ति पावै है और उसपर सब देवता प्रसन्न होय हैं ॥ ७ ॥ करोडन सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें जो तीर्थोंमें स्नानादि करनेसे फल

यद्दत्तं चार्हते चान्नं द्वादश्यां च सिते शुभे। सिक्थे सिक्थे भवेत्तस्य कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥५ ॥ यो दद्यात्तिलपात्रं तु द्वादश्यां मधुसंयुतम्। निर्धूताखिलबन्धस्तु विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे कुर्याज्जागरणं हरेः। स जीवन्नेव मुक्तः स्यात्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥७॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्युपप्लाव्य यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने ॥८॥ तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत्। स सप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाधिपो भवेत् ॥९॥ द्वादश्यां माधवे मासि यो दद्याद्गां सवत्सकाम्। स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णोर्लोकाधिपो भवेत ॥ १० ॥ यमं पितॄन् गुरून् देवान् विष्णुमुद्दिश्य मानवः। माधवे शुक्लद्वादश्यां सोदकुम्भं सदक्षिणम् ॥ ११ ॥

मिले है सो एकादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करनेसे मिले है ॥८॥ द्वादशीके दिन तुलसीके कोमल पत्रोंसे विष्णुभगवान्का पूजन करै वह अपने सात कुलोंका उद्धार करके विष्णुलोकको चलाजाय है ॥ ९ ॥ जो कोई वैशाखमें द्वादशीके दिन बछासहित गौका दान करै वह अपने कोटि कुलोंका उद्धार करके विष्णुलोकका अधिकारी होय है ॥ १० ॥ जो कोई शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन यम, पितृगण, गुरु, देवता और विष्णुके निमित्त

दक्षिणासहित जलका घडा दान करै दही और अन्नका भी दानकरै उसका फल सुनो उसको जो पुण्य प्रयागराजमें प्रतिदिन करोड मनुष्योंको एक वर्षपर्य्यन्त पट्रसयुक्त सुन्दर भोजन करानेसे होता है वही फल उसे मधुसूदन भगवान्‌की आज्ञासे मिलै है ॥११-१३॥ जो द्वादशीके दिन शालिग्राम का दानकरै वह संपूर्ण पापोंसे छूट जाय है ॥१४॥ जो गंगामें ग्रहणके समय सप्तद्वीपवती पृथ्वीका कोटिवार दानकरै उसके समान फल मिलताहै॥१५॥

दध्यन्नं चैव यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु । प्रयागे प्रत्यहं चैव कुर्याद्यः कोटिभोजनम् ॥ १२ ॥ यावत्संवत्सरं पुण्यं षड्रसान्नैर्मनोरमैः । तत्फलं समवाप्नोति मधुसूदनशासनात् ॥ १३ ॥ शालिग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने । वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायां च रविग्रहे । यो दद्यात्कोटिवारं तु तेन तुल्यं फलं विदुः ॥ १५ ॥ द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां यत्फलं परिजायते ॥१६॥ तत्फलं समवाप्नोति गङ्गायां नात्र संशयः । त्रयोदश्यां यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः ॥१७॥ शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये । पञ्चामृतैश्च यो विष्णु भक्त्या संस्नापयेद्विभुम् ॥ १८ ॥ स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते । यो दद्यात् पानकं द्वास्यां सायाह्ने प्रीतये हरेः ॥ १९ ॥

द्वादशीके दिन जो मधुसूदन भगवान्‌को दूधसे स्नान करावै उसको राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करनेके समान फल मिलताहै ॥१६॥ सोई फल गंगाके मिलै है इसमें सन्देह नहीं है, त्रयोदशीके दिन जो दूध और दही मिलाकर विष्णुभगवान्‌का पजन करै ॥ १७ ॥ उसीमें शर्करा मधु और घृत मिलाय मधुसूदन भगवान्‌की प्रसन्नताके निमित्त भक्तिपूर्वक पंचामृतसे विष्णुभगवान्‌को स्नान करावै ॥ १८ ॥ वह अपने सब कुलोंका उद्धारकर

विष्णुलोकको चला जाय है, जो सायंकालके समय विष्णुभगवान्‌की प्रसन्नताके निमित्त शर्वत दानकरै ॥ १९ ॥ उसके प्राचीन पाप ऐसे दूर होय जांयहै जैसे सर्प अपनी पुरानी काचलीको छोड देय है सायंकालके समय जो रसीली काकडीका दान करै ॥ २० ॥ वह उसके रसके प्रतापसे कर्म-बन्धनोंसे मुक्ति पावा है जो कोई ईख अथवा आमके फलोंका दान करै उसके कुटुंबमें सौ पीढीतक बराबर सन्तान होतीहीरहै जो द्वादशीके दिन

जीर्णं पापं जहात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः । सायाह्ने चैव यो दद्यादुर्वारुकरसायनम् ॥ २० ॥ भवेन्मुक्तः कर्मबन्धादुर्वारुक रसायनात् । इक्षुदण्डं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च ॥ २१ ॥ न विच्छित्तिः सन्ततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम् । यो दद्या द्गन्धलेपं तु सायाह्ने द्वादशीदिने ॥ २२ ॥ बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः । यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं द्वादश्यां राजसत्तम ॥ २३ ॥ माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्यफलं भवेत् । प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामि केन जातेति भूमिप ॥ २४ ॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नीं सर्वमङ्गलदायिनीम् । पुरा काश्मीरदेशे तु द्विजो देवव्रताह्वयः ॥ २५ ॥

सायंकालके समय चन्दनादिका दान करै ॥२१॥२२॥ वह आगंतुक व्याधियोंसे सदैव निर्मुक्त रहता है हे राजन् ! द्वादशीके शुक्लपक्षमें जो कुछभी पुण्य किया जाय सो अक्षय फलका दाता होय है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इसकी प्रख्याति क्यों हुई है सो मैं तेरे सामने कहूं हूं ॥ २४ ॥ इसके श्रवण करनेसे संपूर्ण पाप दूर होय हैं और अत्यंत मंगलकारी है प्राचीन समयमें काश्मीरदेशमें एक देवव्रतनामब्राह्मण होता हुआ ॥२५॥

इसकी मालिनीनाम एक पापरूपी पुत्री भई वह कन्या सत्यशीलनाम बडे विद्वान् ब्राह्मणसे व्याहीगई उससे विवाह करके वहअपने यवननाम देशको जाता हुआ वह रूप यौवन करके संयुक्त कभी भी उसकी प्यारी न भई ॥ २६ ॥ २७॥ और वह निष्ठुर उससे सदा द्वेष रक्खे और उसके सिवाय किसीसे भी कुछ द्वेष नहीं रक्खै॥२८॥ उसअपने पतिपर क्रोधकर वशीकरणकरनेकी इच्छासे उन अन्यस्त्रियोसे पूछतीहुई जिनको पहिले उनके पति

तस्यासीन्मालिनी नाम तनया पापरूपिणी । ददौ तां सत्यशीलाय विप्रवर्याय धीमते ॥ २६ ॥ तामुद्वाह्य ययौ धीमान् स्वदेशं यवनाह्वयम् । रूपयौवनसंपन्ना तस्य नैव प्रियाऽभवत् ॥ २७ ॥ सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः । नान्यस्य कस्यचि द्वेषी तां विना नृपते पतिः ॥ २८ ॥ तस्मिन् सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलम्पटा । आपृच्छत्प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा ॥ २९ ॥ ताभिरुक्ता तु सा भूप वश्यो भर्ता भविष्यति । अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमानिनाम् ॥ ३० ॥ प्रयुज्य भेषजं वश्यं नीता हि पतयः पुरा। योगिनीं त्वं तु गच्छाद्य दास्ये ते भेषजं शुभम् ॥ ३१ ॥ न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत्पतिः । योगिनीमन्दिरे गत्वा तासां वाक्येन भूपते ॥ ३२ ॥

त्याग देवे हुये ॥२९॥ तब वे बोलीं, तेरा पति वशीभूत होजाइगा हमको अच्छी तरह विश्वास है॥३०॥ हमने तौ वशीकरण औषध देकर अपने पति वश करलिये,तू योगिनीके पास जा वह सुन्दर औषध दे देयगी॥३१॥तू सोच विचार मत करे तेरा पति दासके समानहोय जायगा,तबतौ हे राजन्

वह उनके वाक्यके अनुसार योगिनीके मन्दिरमें जाय ॥३२॥ योगिनीको अत्यन्त प्रसन्न करती हुई और वह दुराचारिणी बहुत शीघ्रही उस कुटीमें पहुंची जहां सौ खंभ लग रहे॥३३॥ वह कुटी बहुत लम्बी चौडी कांतिमान् थी जिसके चारों ओर झालरदार कपडा लग रहे जिनमें गोटा किनारी लग रहे ॥३४॥ बडी बडी भीत जिनमें चारोंओर सफेदी होय रही दीपक जगर मगर कर रहे ऐसे शोभायमान स्थानमें विराजित जो

प्रसादमतुलं तस्या लेभे दुश्चारिणी सती। शतस्तम्भसमायुक्तां कुटीं भेजे त्वरान्विता ॥ ३३ ॥ सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवापातपालिकाम्। प्रावृतां दीर्घवस्त्रेण सन्धितेनाजवन्तिना ॥३४॥ दीर्घाभिः शुभ्रभित्तिभिः प्रावृता दीप्तिसंयुता। परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैः शनैः ॥३५॥ अक्षसूत्रकरा सा तु जपन्ती प्रार्थिता तया। ददौ वश्यकरं मन्त्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम्॥३६॥ ततः सा प्रणता भूत्वा पद्भ्यां दत्त्वाङ्गुलीयकम्। वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरिक्तप्रभान्वितम् ॥३७॥ मृदुकाञ्चनसंयुक्तं भानुरश्मिसमद्युति। ततो दृष्ट्वा तु सन्तुष्टा पादस्थ चाङ्गुलीयकम् ॥ ३८ ॥

सेवा करनेको आवें तिन्हें देखरही॥३५॥ और रुद्राक्षकी मालासे जपकर रही ऐसी योगिनीके जप वा स्त्रीने प्रार्थना करी तबतो वह योगिनी प्रसन्न होय मनको क्षोभ करावनहारी वशीकरण मंत्र बतावती भई॥३६॥ तब उसने नमस्कार कर पांवनसे हीरा जडभई अंगूठी जो बडी चमक रही भेट धरी और जिसमें सुन्दर सुवर्ण जडाहुआ सूर्यकी कान्तिके समान प्रकाश मान दीनी इस पाँवकी अंगूठीको देख अत्यंत प्रसन्न होय ॥३७॥३८॥

पतिके अपमानसे व्यथितहृदयका वृत्तांत जान वह योगिनी हितकी बात कहने लगी ॥३९॥ यह रक्षाका चूर्ण संपूर्ण प्राणियोंको वश करनेवाला है यह चूर्ण अपने पतिको देय उसकी ग्रीवाकी रक्षा करिये ॥४०॥ तब तेरा पति तेरे वश होयजायगा और किसीके पास नहीं जायगा और तेरे दुश्चरित्रोंकोभी देख कुछ नहीं कहेगा ॥४१॥ उस चूर्णोंको लेय फिर वह अपने घर आई और संध्याके समय दूधमें मिलाय वह चूर्ण देतीहुई ॥४२॥

हृदयं च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् । तदोक्ता हि तया भूप तापस्या हितयुक्तया ॥ ३९ ॥ चूर्णो रक्षान्वितो ह्येष सर्वभूतवशंकरः । चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु ॥ ४० ॥ भविष्यति पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुन्दरीम् । नाप्रियं वदति क्वापि दुश्चारिण्यास्तवापि च ॥ ४१ ॥ चूर्णरक्षां गृहीत्वा सा प्राप्ता भर्तृगृहं पुनः । प्रदोषे पयसा युक्तश्चूर्णो भर्तरि योजितः ॥ ४२ ॥ ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया । तदा स पीतचूर्णस्तु भर्त्ता नृपवरोत्तम ॥ ४३ ॥ तच्चूर्णात्क्षयरोगोभूत्पतिः क्षीणो दिने दिने । गुह्ये तु कृमयो जाता घोरा दुष्टव्रणोद्भवाः ॥ ४४ ॥ दिनैः कतिपयै राजन् पत्यावेवं व्यवस्थिते । उवास स्वेच्छया सापि पुंश्चली दुष्टचारिणी ॥ ४५ ॥

ग्रीवाके रक्षा करदीनी कुछ विचार न किया तब हे राजन्! उस चूर्णके पीनेसे उसको क्षयरोग होगया और दिन दिन क्षीण होने लगा और गुह्यस्थानमें दुष्ट घाव होनेसे कृमी पडगये ॥४३॥४४॥ जब कुछ दिनमें पतिकी ऐसी दशा होयगई तब वह दुष्ट पुंश्चली इच्छापूर्वक विचरने लगी॥४५॥

तेजके क्षीण होजानेसे व्याकुल होयगई इन्द्री जिसकी वह पति रातदिन 'त्राहित्राहि' पुकारने लगा और बोला हे शोभने मैं तेरा दास हूं ॥ ४६ ॥ मैं तेरी शरण हूं, तू मेरी रक्षा कर मैं परस्त्रीकी इच्छा नहीं करूं हूं हे राजन्! ऐसे अपने पतिके वृत्तान्तको जानकर बहुत घबडाई॥४७॥ और सोचने लगी कि पति जीवित रहेगा तो मैं गहने कपडा पहरती रहूंगी सोई दौडकर योगिनीके पास गई और उससे सब वृत्तान्त कहती हुई ॥ ४८ ॥

हततेजास्ततो भर्त्ता तामुवाचाकुलेन्द्रियः। क्रन्दमानो दिवारात्रं दासोऽस्मि तव शोभने ॥ ४६ ॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं नेच्छेऽहमपरां स्त्रियम्। तत्तस्य विदितं ज्ञात्वा भीता सा मेदिनीपते ॥४७॥ अलङ्कारकृते पत्युर्जीवनेच्छुर्न वै हि सा। योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४८ ॥ तया च भेषजं दत्तं द्वितीयं दाहशान्तये। दत्ते च भेषजे तस्मिन् स्वस्थोऽभूत् तत्क्षणात्पतिः ॥ ४९ ॥ पूर्वचूर्णोद्भवो दाहः शान्तस्तेनाभवत्तदा। ततःप्रभृति भर्त्ता च वश्योभूद्देश्मसंस्थितः ॥ ५० ॥ तिष्ठन्त्युपपतिर्गेहे गृहकृत्यापदेशतः। सर्ववर्णसमुद्भूता जातस्तिष्ठन्ति वै गृहे ॥ ५१ ॥ न किञ्चिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथंचन। ततस्तेनैव दोषेण सर्वाङ्गेषु च जज्ञिरे ॥ ५२ ॥

तब उसने पहिली औषधिके दाह शान्त करनेके निमित्त दूसरी औषध दीनी औषधके देतेही तत्क्षण उसका पति आरोग्य होगया॥४९॥ पहिले चूर्णसे उत्पन्न हुआ दाह इससे शान्त हुआ तबसे वह पति घरहीमें रहें और उसके वशीभूत होयगया ॥ ५० ॥ घरके कामके बहानेसे उपपति घरमें आयकर निवास करै और सब जातिके व्यभिचारी मनुष्य घरमें रहें ॥ ५१ ॥ परन्तु उसके भर्ताके मुखमें कुछ कहनेकी शक्ति न रही तब इसी

पापके कारणसे प्राणनाशक बडे भयंकर कीडा उसके सब देहमें पडगये इन कीडाओंने उसके नाक जिह्वा और दोनों कानमें छेद करदिये ॥५२॥५३॥ स्तन कटगये उंगलियोंकी टोंट बंधगई पांवोंसे लुली होय गयी ऐसे ऐसे कष्ट भोग देह त्याग नरक भोगने लगी॥५४॥ और पन्द्रह सहस्र वर्षपर्यंत ताम्रभांड नाम नरकमें दग्ध होती रही ॥ ५५ ॥ फिर बारंबार सौ जन्मतक कुत्ताकी योनिमें पडी नाक कटरही है कान फट रहे हैं मस्तकमें कीडा

कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालान्तकयमोपमाः। तैर्नासाजिह्वयोश्चासीच्छेदः कर्णद्वयस्य च ॥ ५३ ॥ स्तनयोश्चाङ्गुलीनां च पङ्गुत्वं चापि चागतम्। तेन पञ्चत्वमापन्ना गता नरकयातनाम् ॥ ५४ ॥ ताम्रभाण्डे च सा दग्धाऽयुतानि दशपञ्च च। श्वानयोनिषु सञ्जाता शतवारं पुनः पुनः ॥ ५५ ॥ छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिमूर्धा निरन्तरम्। छिन्नपुच्छा भग्नपादा ताडिता च गृहे गृहे ॥ ५६ ॥ पश्चात्सौवीरदेशेषु पद्मबन्धोर्द्विजस्य च। दास्या गृहे शुनी जाता बहुदुःखसमाकुला ॥ ५७ ॥ छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छाङ्घ्रिरातुरा। कृमिपूर्णशिरा नित्यं कृमियोनिश्च तिष्ठति ॥५८॥ एवं क्लेशं सह्यमाना तस्मिन् जन्मनि भूमिप। दैवात् कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥ ५९ ॥

पड रहे हैं पूछ कटगई है टांग लँगडी होयगई है ऐसे घरघरमें पीटती डोले है ॥ ५६ ॥ पीछे सौवीरदेशमें पद्मबन्धुनाम ब्राह्मणकी दासीके घर कुतिया बनी अत्यन्त दुःखसे व्याकुल ॥५७॥ कान टूटे रहे नाक कट फट रही और पूंछ छिन्न होयरहे मस्तकमें कीडा भर रहे योनिमें भी कीडा पड रहे ॥ ५८ ॥ ऐसे उस जन्ममें अनेक क्लेशोंको सहन करती दैवयोगसे जब कर्मफल पूरे होय गये। वैशाखमासमें मेषकी संक्रान्तिमें ॥ ५९ ॥

शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन पद्मबन्धुका पुत्र नदीमें स्नानकर पवित्र होय गीले वस्त्रोंसे घर जाता हुआ ॥ ६० ॥ वहाँ जाय तुलसी थांभलेके पास उसने अपने चरण धोये उसी थांभलेके नीचे वह कुत्ती सोय रही ॥ ६१ ॥ सूर्य उदयसे पहिले वह कुतिया उस चरणधोयेके जलमें लोटगई सोई तत्काल उसके सब अशुभ कर्म नष्ट होयगये पूर्वजन्मकी याद होय आई ॥ ६२ ॥ तब अपने पूर्वजन्मके लिये हुए कर्मोंको सोच सोच तापसे

शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबन्धोस्तनूद्भवः। नद्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रो गृहं ययौ ॥ ६० ॥ तुलसीवेदिकां प्राप्य पादाववनिनेज ह। वेदिकायामधोदेशे सा शुनी स्वापमागता ॥ ६१ ॥ प्राक्सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता। सद्यो ध्वस्ताशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत्क्षणात् ॥ ६२ ॥ स्मृत्वा कर्मकृतं पूर्वं सा शुनी तापसंयुत। चुक्रोश करुणं दीना मुने त्राहीति वै पुनः ॥ ६३ ॥ स्वकर्म च मुनीन्द्राय स्मृत्वाचख्यौ भयाकुला। भर्तुर्विषप्रयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥ ६४ ॥ यान्यापि युवती ब्रह्मन् भर्तुर्वश्यं समाचरेत्। वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्रभाजने ॥ ६५ ॥ भर्त्ता नाथो गुरुर्भर्त्ता भर्त्ता दैवतमुत्तमम्। विक्रियां कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात् ॥ ६६ ॥

व्याकुल होती भई और दीन होय करुणस्वरसे त्राहि त्राहि करनेलगी ॥ ६३ ॥ और भयसे व्याकुल होय उस मुनिसे अपने कर्म कहने लगी कि, मैंने अपने पतिको विष दिया फिर अनेक प्रकारके दुश्चरित्र किये ॥६४॥ हे ब्रह्मन्! जो कोई धर्महीना दुराचारिणी स्त्री अपने पतिको वशमें करै वह मेरीही नाईं तांम्रभांड नामक नरकमें गेरके तपाई जाय है ॥ ६५ ॥ भर्ताही नाथ है भर्ताही स्वामी है भर्ताही देवता है उसके संगमें अनर्थ

करके सुख कैसे पावै ॥६६॥ जो कोई अपने पतिको दुःख देय वह सौ जन्मपर्यंत कुत्ताकी योनि पावै और शरीरमें असंख्य कीडा पड जांय हैं।
हे ब्रह्मन्! अतएव स्त्रीको उचित है कि सदा अपने पतिकी आज्ञा माने ॥६७॥ मैं तेरे सन्मुख खडी हूं जो तुम आज मेरा उद्धार करो, तौ फिर मुझे
नीच योनि न मिलैगी ॥ ६० ॥ हे ब्रह्मन्! मैं बडी दुष्टा दुराचारिणी और खोटी हू अपना सुकृत मेरे लिये देकर मेरा उद्धार करौ, वैशाख-

तिर्य्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानि च। तस्माद्भूसुर कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तुर्वचः सदा ॥ ६७ ॥ नाहं पश्ये पुनर्योनिं कुत्सितां
यातनान्विताम्। यदि चोद्धरसे ब्रह्मन्नद्य त्वद्दृष्टिसंमुखाम् ॥ ६८ ॥ तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन् दुष्कृतां पापचारिणीम् ॥ सुकृतस्य
प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ ६९ ॥ या कृता तु त्वया ब्रह्मन् द्वादशी पुण्यवर्द्धिनी। तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभो
जनैः ॥ ७० ॥ दुश्चारिण्या अपि ब्रह्मन् तेन मुक्तिर्भविष्यति। यस्यां तु भूसुरः स्नातः स्वगृहे मनुजः किल ॥७१॥ सर्वतीर्थ
फलावाप्तिं लभते नात्र संशयः। तप्तं दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत् ॥ ७२ ॥ तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने।
एवंविधं फलं यत्स्यात्तद्देहि सकलं मम ॥ ७३ ॥

शुक्लपक्षमें पुण्योंको बढानेहारी द्वादशीके दिन स्नान दानादि अन्न भोजन आदिसे जो सुकृत कियाहै सो मेरे लिये देउ ॥६९॥७०॥ हे ब्रह्मन्! इस
सुकृतके प्रभावसे मेरी मुक्ति होयजायगी हे ब्राह्मण! द्वादशीके दिन जो मनुष्य घरमें भी स्नान करलेय उसको संपूर्ण तीर्थोंका फल मिलजाता है
इसमें सन्देह नहीं है द्वादशीके दिन जो तप दान यज्ञ होम देवादिपूजन किया जाय॥७१॥७२॥ उसका अक्षय फल मिलताहै ऐसा जो फल है सो

सब तुम मेरे लिये देहु ॥७३॥ द्वादशीके दिन उपवास करैं और त्रयोदशीके दिन पारणकरे उस फलसे अवश्यही मोक्ष मिलैहै॥७४॥हे महाभाग! हे दीनवत्सल ! मैं दीन हूं मेरे ऊपर दयाकरौ जनार्दन भगवान् दीनोंके नाथहै जगत्के पतिहैं और तुम्हारे भी नाथहैं॥७५॥ऐसे भगवान्केजनभीवैसेही होयहैं जैसे राजा वैसेही प्रजा होय हैं। हे यमलोकमार्गको नाश करनेवाले! मैं अत्यंत दुःखी हूं मेरी रक्षा करौ॥७६॥हे दीनवत्सल ! मैं तुम्हारे द्वारपर

द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात् । यत्फलं स्यात्तदप्यद्धा तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ ७४ ॥ दयां कुरु महाभाग दीनानां दीनवत्सल । दीननाथो जगन्नाथो युष्मन्नाथो जनार्दनः ॥ ७५ ॥ तदीयास्तादृशा एव यथा राजा तथा प्रजाः । वैवस्वतपदध्वंसिन्परित्राहि सुदुःखिताम् ॥ ७६ ॥ त्वद्द्वारवासिनीं दीनां शुनीं मां दीनवत्सल । ब्रह्महत्यासहस्रं वा गोहत्यानां सहस्रकम् ॥७७॥ अगम्यानां च कोटयश्च दहत्येषा शुभा तिथिः । तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यं दत्त्वा महामुने ॥ ७८ ॥ मामुद्धर समुद्विग्नां दीनां नाथ समुद्धर । अन्ते तुभ्यं जितेन्द्राय नम उक्तिं वदाम्यहम् ॥ ७९ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शुनीमाह मुनेः सुतः । स्वकृतं जन्तवोऽश्नन्ति सुखदुःखात्मकं शुनि ॥ ८० ॥

रहनेवाली दीन कुतिया हूं, सहस्र ब्रह्महत्या सहस्र गोहत्या और करोडन अगम्यागमनसे उत्पन्नहुए दोषोंका यह तिथि नष्ट कर देय है हे महामुने! इस तिथीमें जो आपने महापुण्य किया है वह मुझे देकर ॥७७॥७८॥ मेरा उद्धार करौ मैं बडी दीनहूं व्याकुलहूं मेरी रक्षाकरौ और हे द्विजवर ! अन्तमें मैं तुमको नमस्कार करूं हूं ॥७९॥ऐसे वचन सुन वह मुनिपुत्र कुत्तीसे कहने लगे कि, हे कुत्ती! प्राणी अपने कियेहुए कर्मोंके सुख दुःखरूपी फलोंको

भोगे है ॥८०॥ तू दुराचारिणी क्षुद्र कहा करैगी जिनने रक्षाचूर्णादिद्वारा अपना पति वशीभूत किया ॥८१॥ साधुके लिये जो पाप करे हैं वह उन्हींको दुःखदाई है। और जो वे पुण्य करें हैं उन्हींके दुःखको हरण करै हैं ॥८२॥ और पापीके लिये मनुष्य जो कुछ करै है वह पाप और पुण्य दोनोंके नष्ट करै है जैसे मिश्रीमिलित दूध सर्पको पान करानेसे केवल विष बढ़ताहै ऐसीही पापकर्म है जब मुनिपुत्रने ऐसे कही तब कुतिया अत्यंत

तस्मात् किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया। यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्वृतः ॥८१॥ साधुभ्यो यत्कृतं पापं स्वस्य दुःखकरं भवेत्। साधुभ्यो यत्कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरं भवेत् ॥ ८२ ॥ उभयभ्रंशतामेति पापेभ्यो यत्कृतं भवेत्। शर्करा-मिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम् ॥ ८३ ॥ विषवृद्धिकरं दुष्टमेवं पापकृतं भवेत्। वदत्येवं मुनिसुते शुनी दुःखैकरूपिणी ॥ ८४ ॥ पुनश्चुक्रोशोर्ध्वमुखी तत्पित्रे बहुभाषिणी। पद्मबन्धो परित्राहि शुनीं त्वद्द्वारवासिनीम् ॥८५॥ त्वदुच्छिष्टाशनीं नित्यं त्वं पाहीति पुनः पुनः। स्वपोष्या ये हि वर्तन्ते गृहस्थस्य महात्मनः ॥ ८६ ॥ तेषामुद्धरणं कार्यमिति वेदविदां मतम्। चाण्डाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः ॥ ८७ ॥

दुःख पाय ऊँचेको मुखकर चीत्कार करने लगी और उसके पितासे कहने लगी ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ हे पद्मबन्धो ! तुम्हारे द्वारपर पडी हुई जो मैं कुतिया हूं सो मेरी रक्षा करो ॥८५॥ मैं तुम्हारे उच्छिष्ट रोटी नित्य खाऊं हूं सो मेरी रक्षा करो। गृहस्थी महात्माओंके घरमें जो पडे हैं ॥८६॥ उनका उद्धार करना अवश्य कर्तव्य है, यह वेदवेत्ताओंका मत है। चांडाल, कौआ, कुत्ता ये गृहस्थियोंके दयापात्र हैं और बलिभुक् हैं

ऐसे अपने पाले भये असमर्थका रोगसे पीडितका उद्धार नहीं करें हैं वे अवश्यही नरकमें पडें हैं इसमें संदेह नहीं है यह वेदवेत्ताओंका मत है ॥८७॥८८॥ सब संसारका कर्ता एकही परमात्माहै वह सबको रचकर स्वयं सब जीवोंको दारादिरूप व्यपदेशसे पालन करे है अतएव अपने पालेभयेकी रक्षा करना भगवान्‌की आज्ञा है ॥ ८९ ॥ उस पोष्य रक्षारूप भगवान्‌की आज्ञाको उल्लंघन कर जो अज्ञानी बने है वह भगवत्‌के कोपसे अपने सर्वस्वको नष्ट

गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहं बलिभोजिनः । अशक्तं नोद्धरेत्पोष्यं रोगाद्युपहतं यदि । सोऽधः पतेन्न संदेह इति वेद विदां मतम्॥८८॥ कर्त्तारमेकं जगतां हि कर्त्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजन्तून् । दारादिरूपव्यपदेशतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥८९॥ तां पोष्यरक्षां परिहृत्य जन्तुर्दैवेन वल्हतां यदि वर्ततेऽन्यधीः। स देवकोपात सकलस्य हन्ता कीनाशलोकं नितरां प्रयाति॥९०॥ कर्त्तव्यत्वाद्दयालुत्वाद्दीनाम्रुद्धर दुर्मतिम् ॥९१॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दुःखार्त्ताया गृहे स तु । निश्चक्राम गृहात्तूर्णं पद्मबन्धु-र्दयानिधिः ॥ ९२ ॥ किमेतदिति तां प्राह पुत्रः सर्वं न्यवेदयत् । स तु पुत्रवचः श्रुत्वा तमेवं प्राह विस्मितः ॥९३॥ पद्मबन्धु-रुवाच ॥ ममात्मज कथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं त्वया । न साधूनामिदं वाक्यं भवतीह वरानन ॥ ९४ ॥

कर अंतमें नरकगामी होय हैं ॥ ९० ॥ यह कर्म कर्त्तव्य है और तुम दयालु हो अतएव मुझ दुर्बुद्धिका उद्धार करिये ॥ ९१ ॥ ऐसे घरके भीतर दुःखसे आर्त कुतियाके वाक्य सुनकर पद्मबन्धु शीघ्रही घरसे बाहर आये ॥ ९२ ॥ और कुतियासे पूछने लगे, यह क्या है ? तब पुत्रने सब कथा वर्णन करी तब तो अपने पुत्रके वचन सुन विस्मित होय कहने लगे ॥ ९३ ॥ तैंने मेरा पुत्र होकर यह क्या कहा है पुत्र ! साधुओंको ऐसा वाक्य

कहना अनुचित हैं ॥ ९४ ॥ अपनी आत्माहीको सुख देनेवाले पापी औरोंसो तिरस्कार किये जांय हैं हे पुत्र ! देखो सम्पूर्ण प्राणी परोपकारहीके लिये हैं ॥९५॥ चन्द्रमा सूर्य पवन पृथ्वी अग्नि जल चन्दन वृक्ष और महात्मा लोग परोपकारमें स्थित हैं ॥९६॥ हे पुत्र ! दधीचिने देवताओंके उपकारके लिये दैत्योंको महाबली जान अपनी हड्डी निकालके देय दीनी ॥ ९७ ॥ राजा शिविने कबूतरके निमित्त अपना मांस काटकर देय दिया

आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परिभाविताः । पश्य पुत्र जनाः सर्वे परोपकरणाय वै ॥ ९५ ॥ शशी सूर्योऽथ पवनो मेदिनी हुतभुग्जलम् । चन्दनं पादपाः सन्तः परोपकरणे स्थिताः ॥९६॥ अस्थिदानं कृतं पुत्र कृपया हि दधीचिना । देवानामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान्महाबलान्॥९७॥ कपोतार्थं स्वमांसानि शिबिना भूभुजा पुरा । प्रदत्तानि महाभाग श्येनाय क्षुधिताय वै ॥९८॥ जीमूतवाहनो राजा पुरासीत्क्षितिमण्डले । तेनापि जीवितं दत्तं गरुडाय महात्मने ॥ ९९ ॥ तस्माद्दयालुना भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता । शुद्धे वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति ॥१००॥ किं न दीपयते चन्द्रश्चाण्डालानां गृहं सदा । तस्मादहं शुनीमेतां याचन्तीं च पुनः पुनः ॥ १ ॥

जब भूखे श्येनने कबूतरके ऊपर छलांग मारी ॥ ९८ ॥ जीमूतवाहन नामकरके एक राजा पृथ्वी मंडलमें होता हुआ उनने भी गरुडके निमित्त अपना जीवन दिया ॥ ९९ ॥ अतएव विद्वान् ब्राह्मणको तौ सदा दया करनीही चाहिये । मेघ शुद्ध स्थानपर बरसै है तो कहा अशुद्ध स्थानपर नहीं बरसै है ? ॥ १०० ॥ कहा चन्द्रमा चांडालके घरमें प्रकाश नहीं करै है ? अतएव बारंबार प्रार्थना करती हुई इस कुतियाके दुःखको अपने

पुण्यके प्रभावसे दूर करूंगा ॥ १ ॥ जैसे कीचडमें फसी हुई गौको निकालें हैं ऐसे पुत्रका निराकरणकर स्वयं प्रतिज्ञा करता हुआ ॥ २ ॥ हे कुत्ती ! मैं तेरे निमित्त द्वादशीके दिनका करा हुआ पुण्य देता हूं तूं अपने सब पापोंसे छूट विष्णुलोकको चली जा ॥ ३ ॥ इतनी कहतेही हे राजन् ! अपने जीर्ण शरीरको त्याग दिव्यरूप धारणकर व दिव्यवस्त्र आभूषण पहर ॥४ ॥ शतादित्यके सदृश प्रभावाली सावित्रीके समान होके

उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पङ्कमग्नां च गां यथा। इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः ॥ २ ॥ दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसंभवम् । शुनि गच्छ हरेर्धाम निर्धूताखिलकल्मषा ॥ ३ ॥ तद्वाक्यात्सहसा भूप दिव्याभरणभूषिता । विमुच्य देहं जीर्णं तु दिव्यरूपधरा शुभा ॥ ४ ॥ शतादित्यप्रभा जाता सावित्रीप्रतिमा यथा । जगामामन्त्र्य तं विप्रं द्योतयन्ती दिशो दश ॥५॥ भुक्त्वा दिवि महाभोगान् पश्चाज्जाता महीतले । नरनारायणादेवादुर्वशी नाम नामतः ॥ ६ ॥ वैशाखशुक्लद्वादश्याः प्रभावेण वराङ्गना । देवानां च प्रिया जाता अप्सरस्त्वं च सा ययौ ॥७॥ यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् । यत्प्राप्य सन्तोऽपि हि यान्ति मोहं तत्प्राप रूपं च शुनीह देवी ॥ ८ ॥

ब्राह्मणसे आज्ञा मांग दशों दिशानमें प्रकाश करती चली गई ॥ ५ ॥ वहां स्वर्गमें अनेक प्रकारके महा भोगोंको भोग पृथ्वीमें नरनारायण भगवान्के अनुग्रहसे उर्वशीनाम ॥६॥ वरांगना वैशाख शुक्ला द्वादशीके प्रभावसे देवताओंको प्यारी अप्सरा होती हुई॥७॥ जिसे योगिजन योगद्वारा प्राप्त करें हैं ऐसे अग्निके समान प्रकाशित श्रेष्ठ परमार्थरूपको प्राप्तकर सन्तजन भी मोह पावें हैं उसीरूपको वह कुतिया प्राप्त करती हुई ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् वह पद्मबन्धुमधुसूदन भगवान्‌की प्यारी पुण्यके बढावनहारी इस तिथिको संसारमें प्रख्यात करता हुआ ॥ ९ ॥ करोडों सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणसे भी अधिक पुण्यरूप और सब यज्ञोंसे अधिक ऐसी यह तिथि ब्राह्मणने तीनों लोकमें प्रख्यात करदीनी ॥११०॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४ ॥ श्रुतदेवजी कहने लगे–हे राजन्‌ ! वैशाखमें शुक्लपक्षके अंतका जो

पश्चात्स पद्मबन्धुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्द्धिनीम्‌ । लोके प्रख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम्‌ ॥ ९ ॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा । यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ छ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अन्तिमाः शुक्लपक्षके । वैशाखमासि राजेन्द्र पूर्णिमान्ताः शुभावहाः ॥१॥ अन्त्याः पुष्करिणीसंज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः । माधवे मासि यः पूर्णं स्नानं कर्तुं न च क्षमः ॥ २ ॥ तिथिष्वेतासु यः स्नायात्पूर्णमेव फलं लभेत्‌ । सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जन्तून्‌ पुनन्ति हि ॥ ३ ॥ पूर्णायां पर्वतीर्थैश्च विष्णुना सह संस्थिताः । चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा एतान्पुनन्ति हि ॥ ४ ॥

तीन तिथि पूर्णमासीपर्य्यन्त हैं ये बडी शुभ फल देनेहारी हैं ॥ १ ॥ ये तीनों तिथि पुष्करिणी कहावें हैं ये संपूर्ण पापोंके दूर करनेहारी हैं जो कोई वैशाखमासमें महीनाभरतक स्नान नहीं करसके हैं ॥२॥ तौ इन तीन तिथिमें स्नान करनेसे संपूर्ण फल मिलजाय हैं संपूर्ण देवता त्रयोदशीके दिन इकट्ठे होयके जीवोंको पवित्र करें हैं ॥ ३ ॥ पूर्णमासीमें विष्णुभगवान्‌के संग संपूर्ण तीर्थ इकट्ठे होंय हैं चतुर्दशीके दिन यज्ञसहित ये देवता उन्हें

पवित्र करें हैं ॥ ४ ॥ कोई कैसाही ब्रह्मघाती अथवा मद्यपानकर्त्ता हो ये सबको पवित्र कर देंय हैं प्राचीनकालमें वैशाखकी एकादशीके दिन विष्णुभगवान् अमृत उत्पन्न करके द्वादशीकेदिन उसकी रक्षा करते हुए त्रयोदशीके दिन देवताओंको अमृतपान कराते हुए ॥ ५ ॥ ६ ॥ और चतुर्दशीके दिन देवताओंके विरोधी दैत्योंका नाश करते हुए और पूर्णमासीके दिन देवता अपने राज्यको प्राप्त करते हुए ॥ ७ ॥ तब देवताओंने

ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान्पुनन्ति हि। एकादश्यां पुरा जज्ञे वैशाख्याममृतं शुभम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां पालितं तच्च विष्णुना प्रभविष्णुना। त्रयोदश्यां सुधां देवान् पाययामास वै हरिः ॥ ६ ॥ जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान् देवविरोधिनः। पूर्णायां सर्व-देवानां साम्राज्याप्तिर्बभूव ह ॥ ७ ॥ ततो देवाः सुसन्तुष्टा एतासां च वरं ददुः। तिसृणां च तिथीनां वै प्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः ॥ ८ ॥ एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयः शुभाः। पुत्रपौत्रादिफलदा नराणां पापहानिदाः ॥ ९ ॥ यो माधवे त्वसंपूर्णे न स्नातो मनुजाधमः। तिथित्रये तु स स्नात्वा पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ १० ॥ तिथित्रयेप्यकुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः। चाण्डालीं योनिमासाद्य पश्चाद्रौरवमश्नुते ॥ ११ ॥

प्रसन्न होय इन तीनों तिथियोंको प्रीतिपूर्वक प्रफुल्लितचित्तसे वर दिया ॥ ८ ॥ वैशाखमासकी ये तीनों तिथि शुभ हैं पुत्रपौत्रादि फलकी देनेवाली और मनुष्योंके पापोंको दूर करनेहारी हैं ॥९॥ जो मनुष्योंमें अधम संपूर्ण वैशाखमासमें स्नान नहीं करसके है वह इन तीन तिथिमें स्नान करनेसे पूर्ण फल प्राप्त करै है ॥ १० ॥ जो मनुष्य इन तितियोंमें भी स्नानदानादिक नहीं करें हैं वे चांडालकी योनि पावें हैं और फिर रौरव नरकमें

जायकर पडें हैं ॥११॥ जो इन तीनों तिथियोंमें गरम जलसे स्नान करें हैं वे चौदह मन्वन्तरपर्य्यंत रौरव नरकमें निवास करें हैं॥ १२ ॥ पित्रीश्वर और देवताओंके निमित्त दही और अन्नका दान नहीं करें हैं वे पिशाचकी योनिको प्रलयकालतक भोगे हैं ॥ १३ ॥ जो वैशाखमासमें नियमपूर्वक कर्त्तव्य कर्मोंमें प्रवृत्त होंय हैं वे विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्त होय हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥१४॥ वैशाखके संपूर्ण महीनामें नियमपूर्वक न रहकर इन

उष्णोदकेन यः स्नाति माधवे च तिथित्रये। रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १२ ॥ पितॄन् देवान् समुद्दिश्य दध्यन्नं न ददाति यः। पैशाचीं योनिमासाद्य तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम् ॥१३॥ प्रवृत्तानां च कामानां माधवे नियमे कृते। अवश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यते नात्र संशयः ॥ १४ ॥ आमासं नियमासक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये। तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ १५ ॥ यो वै देवान् पितॄन् विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः। न स्नानादि करोत्यद्धाऽमुष्य शापप्रदा वयम् ॥ १६ ॥ निःसन्तानो निरायुश्च निःश्रेयस्को भवेदिति। इति देवा वरं दत्त्वा स्वधामानि ययुः पुरा ॥ १७ ॥ तस्मात्तिथित्रयं पुण्यं सर्वाघौघविनाशनम्। अन्त्यं पुष्करिणीसंज्ञं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥ १८ ॥

तीन तिथियोंमें जो शास्त्रविहित कर्म करे है वे पूर्ण फल पायकर विष्णुलोकमें निवास करें हैं॥१५॥ जो मनुष्य देवता, पित्रीश्वर, गुरु, और विष्णुभगवान्‌के निमित्त स्नान दान नहीं करें हैं उन्हें हम शाप देय हैं ॥ १६ ॥ वे मनुष्य निःसन्तान, आयुहीन और दुःखी होंयगे ऐसे देवता वर देयकर अपने अपने धामको चले गये ॥१७॥ अतएव वे तीनों तिथि बडी पुण्यकारिणी और संपूर्ण पापोंको नाश करनेवाली हैं तथा ये तीनों पुष्करिणी

कहावै हैं पुत्र और पौत्रके बढानेवाली हैं जो स्त्री पूर्णमासीके दिन ब्राह्मणको मालपुआ खीरका भोजन करावै तौ कीर्तिमान् पुत्रको पावै ॥१८॥१९॥ पिछले इन्ही तीन दिनमें जो कोई गीताका पाठ करै उसे प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिलै इसमें कोई संदेह नहीं ॥२०॥ जो कोई इन्ही तीन तिथियोंमें विष्णुसहस्रनामका पाठ करै है उसके पुण्यके फलको कहनेके लिये तौ किसीमेंभी स्वर्ग अथवा पृथ्वीमें सामर्थ्य

या नारी सुभगाऽपूपपायसं पूर्णिमादिने । ब्राह्मणाय सकृद्दत्त्वा कीर्तिमन्तं सुतं लभेत् ॥ १९ ॥ गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये । दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ २० ॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्याच्च दिनत्रये । तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥२१॥ सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् । पयसा स्नाप्य वै याति विष्णुलोकमकल्मषम् ॥२२॥ समस्त विभवैर्यस्तु पूजयेन्मधुसूदनम् । न तस्य लोकाः क्षीयन्ते युगकल्पादिव्यत्यये ॥२३॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखश्च गतो यदि ॥ स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥ २४ ॥

नहीं है ॥ २१ ॥ पूर्णमासीके दिन जो कोई सहस्रनामका पाठ करै और मधुसूदन भगवान्‌को एक एक नामपर दूधसे स्नान करावै तौ उसके सब पाप दूर होय जाय और वह विष्णुलोकको जाय है ॥२२॥ जो संपूर्ण उत्तम उत्तम पदार्थद्वारा मधुसूदन भगवान्‌का पूजन करै तौ कल्पान्तमेंभी उसके लोक क्षीणताको प्राप्त नहीं होय हैं ॥ २३ ॥ जो कोई मनुष्य वैशाखमें न स्नान करै न दान करै वह ब्रह्महत्यारा, गुरुघाती और पित्रीश्वरोंका

नाश करनेवाला होता है ॥२४॥ जो कोई नित्यप्रति श्रीमद्भागवतके एक श्लोक अर्द्ध श्लोक वा चौथाई श्लोक पढै सो ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ॥२५॥ जो इन तीन दिनमें श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण करै वह कभीभी पापसे लिप्त नहीं होय है जैसे कमलके पत्रपर जल नहीं ठहरे है॥२६॥ इनतीन तिथियोंमें भगवत्पूजा, स्नान, दान आदि विधिपूर्वक करनेसे बहुतसे मनुष्य देवता होय गये हैं कितनेही सिद्ध बन गये हैं, कितनेही ब्रह्मभावको प्राप्त

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्। वैशाखे च पठन्मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते ॥२५॥ यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्-दिनत्रये। न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ २६ ॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥२७॥ ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा। अथवा मासि वैशाखे नियमेन जलाप्लुतः ॥२८॥ नीलं वृषं समुत्सृज्य वैशाख्यां च जलाप्लुतः। समस्तबन्धनिर्मुक्तः पुमर्थान्याति सर्वथा ॥ २९ ॥ गां दत्त्वा यो द्विजेन्द्राय सीदते च कुटुम्बिने। इहापमृत्युनिर्मुक्तः परत्र च परं व्रजेत् ॥ ३० ॥ स्नानदानविहीनस्तु वैशाखीं चैव यो नयेत्। श्वानयोनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३१ ॥

हुए हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानसे अथवा प्रयागराजमें मरनेसे मोक्ष मिलै अथवा वैशाखमासमें नियमपूर्वक स्नान करनेसे मोक्ष मिलै है ॥ २८ ॥ वैशाखकी पूर्णमासीके दिन स्नान करके नीले वृषभको छोडे तो समस्त बंधनसे छूटकर धर्म अर्थ काम मोक्षकी प्राप्ति होय है ॥ २९ ॥ जो गरीब कुटुम्बी ब्राह्मणके लिये गौ दान देय है वह यहां अकालमृत्युसे छूटकर परलोकमें परमपद पावै है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य वैशाखकी पूर्णमासीको

विना स्नान दान किये व्यतीत करदेय हैं वह सौजन्मतक कुत्ताकी योनिमें पडकर विष्ठामें कीडा होय है ॥ ३१ ॥ तीनों भुवनमें साढे तीन करोड तीर्थ हैं ये सब इकट्ठे होयके पापोंके समूहके डरसे सलाह करने लगे ॥३२॥ कि पापी मनुष्य अपने किये भये पाप हमारे बीचमें त्याग देय हैं सो हमारे पाप कैसे दूर होयंगे ऐसे चिन्ता करते ॥३३॥ पाद तीर्थपाद हरि भगवान्‌की शरणमें जाते भये और अनेकों स्तोत्रद्वारा स्तुतिकरके प्रार्थना करते

तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानि भुवनत्रये॥ संभूय मंत्रयांचक्रुः पापसङ्घातशङ्किताः ॥३२॥ जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजन्ति स्वकं मलम्। तदस्माकं कथं गच्छेदिति चिन्तासमन्विताः ॥ ३३ ॥ तीर्थपादं हरिं जग्मुः शरण्यं शरणं विभुम्। स्तुत्वा च बहुभिः स्तोत्रैः प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ३४ ॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन ॥ जना अस्मासु पापिष्ठाः स्नात्वा पापानि सर्वशः ॥ ३५ ॥ विसृज्य त्वत्पदं यान्ति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि। अस्माकं चैव तत्पापं कथं गच्छेज्जनार्दन ॥ ३६ ॥ तदुपायं वदार्तानां त्वत्पादशरणैषिणाम। इति तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान्भूतभावनः ॥ ३७ ॥

हुए ॥ ३४ ॥ हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे संपूर्णपापोंके नाश करनहारे! पापी मनुष्य हममें स्नान कर करके ॥ ३५ ॥ पापाको हमारे बीचमें छोड आपके धामको चले जाय हैं सो हे प्रभो! हम तो आपके आज्ञाकारी हैं ये पाप हे जनार्दन! हमसे कैसे दूर होयंगे ॥ ३६ ॥ हे प्रभो! हम आपके चरणकी शरणके अभिलाषी हैं सो यह उपाय हमारे सामने कहिये जब तीर्थनने ऐसे प्रार्थना करी तब तो भूतभावन भगवान् ॥ ३७ ॥

हंसते भये मेघकीसी गंभीरवाणीद्वारा बोले, वैशाखके महीनामें मेषकी संक्रांतिमें शुक्लपक्षमें जो अन्त्यके तीन दिनमें ॥ ३८ ॥ कैसे तीन दिन हैं सर्व तीर्थमय पुण्यरूप हैं और मेरे प्राणप्यारे हैं इनमें सूर्योदयसे पहले स्नानकर जलसे बाहर आयजाओ जासे सब प्रकारके पापनसे छूट पुण्यरूप और निर्मल होउ उन तीन दिवसके बीचमें जो कोई स्नान न करै उन मनुष्योंमें वह पाप स्थित रहै जो पाप तुम्हारे बीचमेंसे निकल इकठ्ठा हुआ

प्रहसन्प्राह तीर्थानि मेघगम्भीरया गिरा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखान्ते दिनत्रये ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थमये पुण्ये ममापि प्राणवल्लभे । यूयं भगोदयात्पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः ॥३९॥ विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवन्त्वाशु सुनिर्मलाः । भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्यै न स्नाता दिनत्रये ॥ ४० ॥ तेषु तिष्ठतु तत्पापं जनैर्युष्मद्विरेचितम् । इति तीर्थपदो विष्णुस्तीर्थानां च वरं ददौ ॥ ४१ ॥ अनुज्ञाप्य च तान्योगात्तत्रैवान्तरधीयत । स्वधामानि पुनः प्राप्य तानि तीर्थानि नित्यशः ॥४२॥ प्रतिवर्षं तु वैशाखे तथैवान्त्यदिनत्रये । तेनाघौघं विमुच्यैव यान्ति निर्मलतामहो ॥४३॥ ये तु स्नानं न कुर्वन्ति वैशाखान्त्यदिनत्रये । तेभवन्तु समस्तानां जनानां पातकाश्रयाः ॥ ४४ ॥

है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ऐसे जो मनुष्य पाप तुम्हारे बीचमें छोड गये हैं सो उनमें रहेंगे ऐसे तीर्थ हैं चरण जिनके ऐसे विष्णु भगवान् तीर्थोंको वर देतेहुए ॥४१॥ और ऐसे आज्ञा देय योगबलसे वहीं अंतर्धान होगये और सब तीर्थ अपने अपने धामको प्राप्त होय ॥४२॥ प्रतिवर्ष वैशाखके महीनामें अन्त्यके तीन दिनमें संपूर्ण अपने अपने पापोंको छोड निर्मल होयहैं ॥ ४३ ॥ जो वैशाखके अन्त्यके तीन दिनमें स्नान नहीं करे हैं उन्हींके

ऊपर सब मनुष्योंके पाप आयके ठहरेंहैं ॥४४॥ ऐसे स्नान न करनेवाले मनुष्योंको तीर्थ शाप देयहैं जो इन तीन दिनमें स्नान करै तौ इसके समान कोई पाप नहीं है ॥४५॥ किसीभी शास्त्रमें याके समान पाप न देखो है न सुनो अतएव पिछले तीन दिवसमें स्नान दान और मधुसूदन भगवान्की पूजा न करै तौ इसके समान पाप नहीं है ॥ ४६ ॥ और जो इन कर्मनकूं न करै तौ चौदह मन्वन्तर पर्य्यन्त नरकमें पडै ऐसे सम्पूर्ण वैशाखको

इति शापं च तीर्थानि ह्यस्नातानां ददाति च। न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥४५॥ विचारितेषु शास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः। तस्माद्दिनत्रये कार्यं स्नानदानार्चनादिकम् ॥ ४६ ॥ अन्यथा नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश। इत्येतत्सर्वमाख्यातं श्रुतकीर्ते महामते ॥४७॥ पृष्टं वैशाखमामात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। महात्म्यस्य च लेशोऽयं माधवस्य च वर्णितः ॥ ४८ ॥ कात्स्न्र्याद्वक्तुं ब्रह्मणापि नालं वर्षशतैरपि। पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शङ्करः स्वयम् ॥४९॥ प्राह माधवमाहात्म्यं पृच्छत्यै शतवत्सरम्। तच्चापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह ॥ ५० ॥ कोऽनुवर्णयितुं शक्तः कात्स्न्र्यान्माहात्म्यमुत्तमम्। विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ ५१ ॥

माहात्म्य महाबुद्धिमान् श्रुतिकीर्तिके सम्मुख कह्योगयो जैसे जैसे सुना वा देखा तदनुसारही माधवमासकी कथा वर्णन करी गई है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इस माहात्म्यको पूरी पूरी रीतिसे वर्णन करनेको तौ ब्रह्माकोभी सौवर्षमेंभी सामर्थ्य नहीं है ॥ पहिले कैलासकी शिखरपर बैठके पार्वतीजी महादेवसे पूछती भई सो महादेवजी सौवर्षतक यह कथा कहते रहै तौ भी पूरी न भई तब असमर्थ होयके चुप होय गये ॥४९॥५०॥ विष्णुभगवान् जगन्नाथ बीना

रायणके विना कोई भी पूर्णवया वैशाखमासको वर्णन कर सकैहै ॥ ५१ ॥ पहिले सब ऋषियोंने मनुष्योंके हितकी इच्छासे थोडा थोडा वैशाखमाहात्म्य वर्णन कियाहै ॥ ५२ ॥ परन्तु हे राजन् ! किसीने अन्त नहीं पाया असमर्थ्य होयके चुप बैठ रहै तू वैशाखमासमें दानादि सत्कर्मोंको कर इसीसे निश्चयही भुक्ति और मुक्ति अवश्य मिलैगी ॥ ५३ ॥ ऐसे मिथिलापति राजा जनकको समझायकर श्रुतदेवजी राजासे पूछके जानेको विचार करने

पुरा सर्वेऽपि ऋषयो माहात्म्यं पापनाशनम् । लेशं च लेशं व्याचख्युर्जनानां हितकाम्यया ॥५२॥ नान्तः केनापि व्याख्यातो ह्यशक्तत्वान्महीपते । त्वं च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥ ५३ ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च संप्राप्नोषि न संशयः । इति तं बोधयित्वा च मैथिलं जनकाह्वयम् ॥ ५४ ॥ श्रुतदेवस्तमामन्त्र्य गन्तुं चक्रे मनोगतिम् । जाताह्लादः स राजर्षिर्गल-द्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ ५५ ॥ उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनोरमम् । ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिबिकामधिरोप्य तम् ॥ ५६ ॥ चतुरङ्गबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथान्वगात् । पुनश्चान्तःपुरं प्राप्य सकलैर्विभवैरपि ॥ ५७ ॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः । प्रणम्य च परिक्रम्य तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५८ ॥

लगे ॥५४॥ तब तौ एकसंग राजाके आह्लाद उत्पन्न होय गया नेत्रनसे जल टपकता हुआ ॥५५॥ तब उत्सव करनेमें प्रवृत्त हुआ और अपनी वृद्धिके निमित्त श्रुतदेवजीको पालकीमें बैठाय ग्रामकी प्रदक्षिणा कर॥५६॥ चतुरंगिणी सेनाके संग भेजता हुआ और पीछे पीछे आपभी जाता हुआ पीछे अन्तःपुरमें लेजाय वस्त्र, आभूषण, गौ, पृथ्वी, तिल, सुवर्ण आदि सब प्रकारके वैभव आगे रख नमस्कार कर हाथ जोड सम्मुख आय खडा हुआ ॥५७॥५८॥

तब तौ महातेजस्वी महायशस्वी श्रुतदेवजी अत्यंत संतुष्ट होय प्रसन्नतापूर्वक अपने धामको पधारे ॥ ५९ ॥ तब तौ नारदजी कहनेलगे हे राजा अंबरीष ! यह परम अद्भुत आख्यान मैंने तुम्हारे सन्मुख वर्णन किया इसके श्रवणमात्रसे संपूर्ण पाप नष्ट होय जाय हैं और सब प्रकारकी संपत्ति मिलैहैं॥६०॥ इसीसे भुक्ति मुक्ति ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होय है ऐसे नारदजीके वचन सुन महायशस्वी राजा अम्बरीष॥६१॥मनमें ऐसा प्रसन्न

ततस्तं तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः । सन्तुष्टः परमप्रीतो ययौ धाम स्वकं मुनिः ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ इत्येतत्पर-माख्यानमम्बरीष तवोदितम् । श्रवणात्सर्वपापघ्नं सर्वसंपद्विधायकम् ॥ ६० ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च ज्ञानं मोक्षं च विन्दति । इति तस्य वचः श्रुत्वा अंबरीषो महायशाः ॥६१॥ प्रहृष्टान्तरवृत्तिश्च बाह्यव्यापारवर्जितः । प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दण्डवत्पतितो भुवि ॥ ६२ ॥ विभवैरखिलैश्चापि पूजयामास तं पुनः । संपूजितस्तमामन्त्र्य नारदो भगवान्मुनिः ॥ ६३ ॥ लोकान्तरं ययौ धीमाञ्छापान्नैकत्र संस्थितिः । अंबरीषोऽपि राजर्षिर्नारदोक्तानिमान् शुभान् ॥ ६४ ॥ धर्मान् कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे ॥ ६५ ॥

होता हुआ कि बाहरके जितने व्यापार हैं सो सब छोडदिये और दंडकी तरह पृथ्वीपै गिरके शिरसे प्रणाम करता हुआ ॥६२॥ तथा सब प्रकारके ऐश्वर्यवान् पदार्थोंसे नारदजीकी पूजा करता हुआ,पूजा हुए पीछे भगवान् नारदमुनि राजासे पूछ ॥६३॥अन्य लोककूं चलेगये क्योंकि शापके मारे वे एक जगह नहीं रहसकें हैं राजर्षि अम्बरीषभी नारदजीके कहे भये इन शुभ धर्मोंको आचरण करते निर्गुण परब्रह्ममें लीन होयगये ॥६४॥६५॥

सूतजी बोले जो कोई पापके नाश कर्चा और पुण्यके बढावनहारे इस परम अद्भुत आख्यानका श्रवण करै अथवा पाठकरै सो परमगतिकोप्राप्त होय है और जाके घरमें हाथकी लिखी पुस्तक होयहै उसके तौ हाथहीमें मुक्ति होय है श्रवणसेभी कुछ नहीं हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाख

सूत उवाच ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् । शृणुयाद्वा पठेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ६६ ॥ लिखितं पुस्तकं येषां गृहे तिष्ठति मानद । तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रवणात्मनाम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे फलश्रुतिकथनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ७ इति श्रीवैशाखमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥

माहात्म्ये नारदाम्बरीससंवादे फलश्रुतिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ इति वैशाखमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

इति

वैशाख माहात्म्य

(हिन्दी टीका सहित)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS